



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री
सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव



सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971

* मुनिदीक्षा-11-05-1989

* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सम्मत्तिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)



अष्टपाहुड-वचनिका

ग्रन्थकार

परम पूज्य आचार्यश्री कुन्दकुन्द जी महाराज

वचनिकाकार

पण्डितप्रवरश्री जयचन्द्र जी छाबड़ा

प्रकाशक

मुनिश्री अनन्तकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला

मुम्बई (महाराष्ट्र)

(परम्परानायक)



परम पूज्य चरित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)



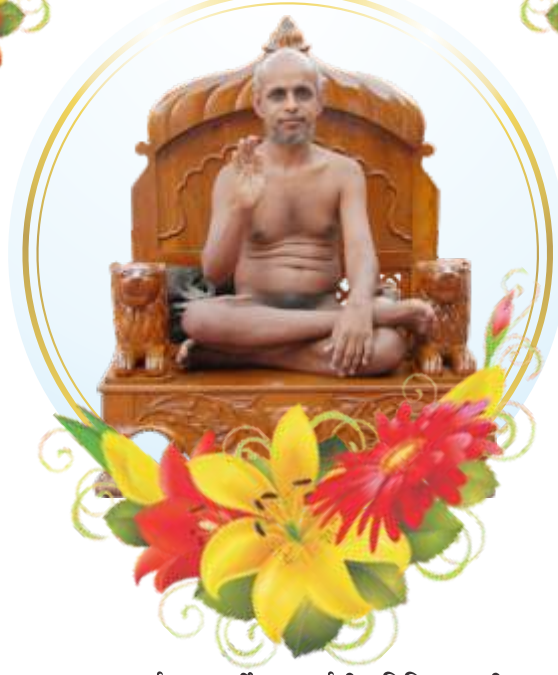
परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

23



स्वामि कुन्दकुन्दाचार्य रचित

अष्टपाहुड

मुनि श्रीजन्म कीर्ति दि०

जैन-ग्रन्थमाला



भाषाव्यवस्थाकार

स्व० पं० जयचन्द्रजी छावड़ा ।



। नमः सिद्धिभ्यः ।

अथ अष्टपाहुड ग्रंथकी पंडित जयचंद्रजी
छावड़ा विरचित
देशभाषामय वचनिका ।

(दोहा.)

श्रीमत वीरजिनेशरवि मिथ्यातम हरतार ।
विघनहरन मंगलकरन वंदूं वृषकर्तार ॥ १ ॥
वानी वंदूं हितकरी जिनमुखनभनै गाजि ।
गणधरगणश्रुतभूझरी वंदूं वर्णपद साजि ॥ २ ॥
गुरु गौतम वंदूं सुविधि संयमतपधर और ।
जिनितैं पंचमकालमें वरत्यो जिनमत दौर ॥ ३ ॥
कुन्दकुन्दमुनिहूं नमूं कुमतध्वांतहर भान
पाहुड ग्रंथ रचे जिनहिं प्राकृत वचन महान ॥ ४ ॥
तिनिमें कई प्रसिद्ध लखि करूं सुगम सुविचार ।
देशवचनिकामय लिखूं भव्यजीवहितधार ॥ ५ ॥

वीर

पंडित जयचंद्रजी छावड़ा विरचित—

अंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृतगाथा-
ग्रंथ हैं तिनिमैंसू केईकनिकी देशभापामय वचनिका लिखिये

तहां प्रयोजन ऐसा है जो इस हुंदावसर्पिणी काल विषैं मोक्षमार्गकूं
अन्यथा प्ररूपण करनहारे अनेक मत प्रवर्तैं हैं तहां भी इस पंचमका-
लमैं केवली श्रुतकेवलीका व्युच्छेद होनेतैं जिनमतमैं भी जड वक्र जीव-
निके निमित्त करि परंपरामार्गकूं उल्टंघि बुद्धिकल्पित मत श्वेताम्बर
आदिक भये हैं, तिनिका निराकरण करि यथार्थ स्वरूप स्थापनेकै अर्थ
दिगंबर आम्नाय मूलसंघमैं आचार्य भये तिनिनैं सर्वज्ञकी परंपराका
अव्युच्छेदरूप प्ररूपणाके अनेक ग्रंथ रचे हैं, तिनिमैं दिगंबर संप्रदाय
मूलसंघ नंदिआम्नाय सरस्वतीगच्छमैं श्रीकुन्दकुन्द मुनि भये तिनिनैं
पाहुड ग्रंथ रचे तिनिनैं संस्कृतभाषामैं प्राभूतनाम कहिये, ते प्राकृत
गाथाबंध हैं सो कालदोपतैं जीवनिकी बुद्धि मंद होय है सो अर्थ
समझ्या जाता नाहीं, तातैं देशभापामय वचनिका होय तौ सर्व ही
वांचैं अर्थ समझैं श्रद्धान दृढ़ होय, यह प्रयोजन विचारि वचनिका
रच्ये है, अन्य किछू ख्याति बड़ाई लाभका प्रयोजन है नाहीं । यातैं
जीव ताकूं वांचि अर्थ समझि चित्तमैं धारण करि यथार्थमतका
हलिंग तथा तत्त्वार्थका दृढ़ श्रद्धान करियो । यामैं किछू बुद्धिकी
मंदतातैं तथा प्रमादके वशतैं अर्थ अन्यथा लिखूं तौ बड़े बुद्धिवान मूल
ग्रंथ देखि शुद्धकरि वांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जानि क्षमा कीजियो ।

अब इहा प्रथम ही दर्शनपाहुडकी वचनिका लिखिये है;—

(दोहा)

बंदूं श्रीअरहंतकूं मन वच तन इकतान ।

मिथ्याभाव निवारिकैं करैं सुदर्शन ज्ञान ॥

सामर्थ्यतैं जाननां । बहुरि तीर्थकर सर्वज्ञ बीत रागकूं तौ परमगुरु कहिये, अर इनिकी परिपाटीतैं चले आए गौतमादिक मुनि भये तिनिका नाम । ^{जन्मो} वृषभ इस विशेषणमें जनाया तिनिकूं अपरगुरु कहिये; ऐसैं परापर गुरुका प्रवाह जाननां ते शास्त्रकी उत्पात्ति तथा ज्ञानकूं कारण हैं । तिनिकूं ग्रंथकी आदिविषै नमस्कार किया ॥ १ ॥

आगैं धर्मका मूल दर्शन है तातैं दर्शनतैं रहित होय ताकूं नहीं वंदनां, ऐसैं कहैं हैं;—

गाथा—दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरैहिं सिस्साणं ।

तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिब्बो ॥ २ ॥

छाया—दर्शनमूलो धर्मः उपदिष्टः जिनवरैः शिष्याणाम् ।

तं श्रुत्वा स्वकर्णे दर्शनहीनो न वन्दितव्यः ॥ २ ॥

अर्थ—जिनवर जे सर्वज्ञदेव तिननैं शिष्य जे गणधर आदिक तिनिकूं धर्म उपदेश्या है सो कैसा उपदेश्या है, दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म उपदेश्या है । सो मूल कहां कहिए—जैसैं मन्दिरकै नींव अथवा वृक्षकै जड़ तैसैं धर्मका मूल दर्शन है । तातैं आचार्य उपदेश करैं हैं—जो हे सकर्णा ! कहिये पंडित सतपुरुषहौ ! तिस सर्वज्ञके कहे दर्शन मूल रूप धर्मकूं अपने काननिविषै सुनिकरि, अर जो दर्शनकरि रहित है सो बंदिबे योग्य नांही है, दर्शनहीनकूं मति बंदौ । जाकैं दर्शन नांही ताकैं धर्म भी नांही, मूल बिना वृक्षकै स्कंध शाखा पुष्प फलादिक कहांतैं होय, तातैं यह उपदेश है—जाकैं धर्म नांही तिसतैं धर्मकी प्राप्ति नांही, ताकूं धर्मनिमित्त काहेकूं बन्दिए, ऐसा जाननां ।

अब ग्रंथकर्ता श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ग्रंथकी आदि विषै ग्रंथकी उत्पत्ति अर ताका ज्ञानकू कारण जो परंपरा गुरुका प्रवाह ताकू मंगलकै अर्थ नमस्कार करै हैं;—

गाथा—काऊण णमुकारं जिणवरवसहस्स वड्डमाणस्स ।

देसणमगं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण ॥ १ ॥

छाया—कृत्वा नमस्कारं जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य ।

दर्शनमार्गं वक्ष्यामि यथाक्रमं समासेन ॥ १ ॥

याका देशभाषामय अर्थ—आचार्य कहैं हैं जो मैं जिनवर वृषभ ऐसा जो आदि तीर्थकर श्री ऋषभदेव बहुरि वर्द्धमान नाम अंतिम तीर्थकर ताहि नमस्कार करि अर दर्शन कहिये मत ताका मार्ग जो है ताहि यथा अनुक्रम संक्षेपकरि कहूंगा । भावार्थ—इहां जिनवर वृषभ ऐसा विशेषण है, ताका ऐसा अर्थ हैं जो जिन ऐसा शब्दका तौ यह अर्थ हैं—जो कर्म शत्रुकू जीतै सो जिन, सो सम्यदृष्टी अवतांसूं लगाय कर्मकी गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सर्वही जिन हैं, तिनमैं वर कहिये श्रेष्ठ, ऐसे जिनवर नाम गणधर आदिक मुनिनिक्कू कहिये, तिनमैं वृषभ कहिये प्रधान ऐसे भगवान तीर्थकर परमदेव हैं । तिनमैं आदि तौ श्रीऋषभदेव भए, अर इस पंचमकालकी आदि अर चतुर्थकालके अन्तमैं अंतिम तीर्थकर श्रीवर्द्धमानस्वामी भये तिनिका विशेषण भया । बहुरि जिनवर वृषभ ऐसे सर्वही तीर्थकर भये, तिनिकू नमस्कार भया, तहां वर्द्धमान ऐसा विशेषण सर्वहीका जाननां, सर्व ही अन्तरंग बाह्य लक्ष्मीकरि वर्द्धमान हैं । अथवा जिनवर वृषभ शब्द करि तौ आदि तीर्थकर श्रीऋषभदेव लेने अर वर्द्धमान शब्दकरि अन्तिम तीर्थकर लेने, ऐसैं आदि अंत तीर्थकरकू नमस्कार करनेतैं मध्यकेकू नमस्कार

अब इहां धर्मका तथा दर्शनका स्वरूप जान्या चाहिये, सो स्वरूप तौ संक्षेपकरि ग्रंथकार ही आगैं कहसी तथापि किछुक अन्य ग्रंथानिकै अनुसार इहां भी लिखिए है;—तहां 'धर्म' ऐसा शब्दका अर्थ यह, जो आत्माकूं संसार तैं उद्धारि मुखस्थानविषैं स्थापै सो धर्म है । बहुरि दर्शन नाम देखनेका है । ऐसैं धर्मकी मूर्ति देखनेमें आवै सो दर्शन है सो प्रसिद्धतामें जामैं धर्मका ग्रहण होय ऐसा मतकूं 'दर्शन' ऐसा नाम कहिए है । सो लोकमें धर्मकी तथा दर्शनकी सामान्य पणैं मान्यता तौ सर्वकैं है परन्तु सर्वज्ञ विना यथार्थ स्वरूपका जाननां होय नांही, अर छद्मस्थ प्राणी अपनी बुद्धितैं अनेक स्वरूप कल्पनां करि अन्यथा स्वरूप स्थापि तिसकी प्रवृत्ति करैं हैं । सो जिनमत सर्वज्ञकी परंपरायतैं प्रवर्तैं है सो यामैं यथार्थ स्वरूपका प्ररूपण है । तहां धर्म निश्चय व्यवहार करि दोय प्रकार करि साध्या है । ताकी च्यार प्रकार प्ररूपणा है—प्रथम तौ वस्तुस्वभाव, तथा उत्तम क्षमादिक दश प्रकार, तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप, तथा जीवनिकी रक्षारूप, ऐसैं च्यार प्रकार है । तहां निश्चय करि साधिए तब तौ सर्वमें एक ही प्रकार है जातैं वस्तुस्वभाव कहनेतैं जो जीवनामा वस्तुका परमार्थरूप दर्शन ज्ञान परिणाममयी चेतना है, सो यह चेतना सर्व विकारनितैं रहित शुद्ध भाव रूप परिणमै सो ही याका धर्म है । बहुरि उत्तमक्षमादिक प्रकार कहनेतैं क्रोधादिककषायरूप आत्मा न होय अपने स्वभावमें स्थिर होय सो ही धर्म है, यह भी शुद्धचेतनारूपही भया । बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र कहनेतैं तीनों एक ज्ञानचेतनाहीके परिणाम हैं, सो ज्ञानस्वभावरूप धर्म है । बहुरि जीवनिकी रक्षा कहनेतैं जीवकैं आपकैं तथा परकैं क्रोधादि कषायनिके वशतैं पर्यायका विनाशरूप रण तथा दुःख संक्लेश परिणाम न करनां ऐसा अपना स्वभाव, सो

ही धर्म है। ऐसैं शुद्ध द्रव्यार्थिक रूप निश्चय नय करि साध्या हुवा धर्म एकही प्रकार है। बहुरि व्यवहारनय है सो पर्यायाश्रित है सो यह भेद-रूप है, सो याकरि विचारिए तब जीवके पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार हैं तातैं धर्म भी अनेक प्रकार करि वर्णन किया है। तहां एक-देशकूं प्रयोजनके वशतैं सर्वदेश करि कहिए सो व्यवहार है। बहुरि अन्य वस्तुविषैं अन्यका आरोपण अन्यके निमित्ततैं तथा प्रयोजनके वशतैं करिये सो भी व्यवहार है। तहां वस्तुस्वभाव कहनेमें तौ जे निर्विकार चेतनाके शुद्ध परिणामके साधकरूप मंदकपायरूप शुद्ध परिणाम हैं तथा बाह्य क्रिया हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिये हैं। बहुरि तैसैंही स्तत्रय कहनेतैं स्वरूपके भेद दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तिनिके कारण बाह्यक्रियादिक हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिए हैं। तथा तैसैंही जीवनकी दया कहनेतैं क्रोधादि कपाय मंद होनेतैं अपने वा परके मरण दुःख क्लेश आदि न करना, तिसके साधक बाह्यक्रियादिक ते सर्वही धर्मकरि कहिए हैं। ऐसैं निश्चय व्यवहार नय करि साध्या हुवा जिनमतमें धर्म कहिए है। तहां एक स्वरूप अनेकस्वरूप कहनेतैं स्याद्वादकरि विरोध नांही आवै है, कथंचित् विवक्षातैं सर्व प्रमाणसिद्ध है। बहुरि ऐसे धर्मका मूल दर्शन कह्या सो ऐसे धर्मका श्रद्धा प्रतीति रुचि सहित आचरण करनां सो ही दर्शन है, यह धर्मकी मूर्ति है, याहीकूं मत कहिए सो यह ही धर्मका मूल है। बहुरि ऐसे धर्मकी पहलै श्रद्धा प्रतीति रुचि न हो तौ धर्मका आचरण भी न होय, जैसे वृक्षकै मूल बिना स्कंधादिक होय तैसैं सो दर्शनकूं धर्मका मूल कहना युक्त है। सो ऐसे दर्शनकूं जैसैं सिद्धांतनिमें वर्णन है तैसैं किट्ठक लिखिए है।

तहां अन्तरंग सम्यग्दर्शन है सो तौ जीवका भाव है सो निश्चय करि उपाधितैं रहित शुद्धजीवका साक्षात् अनुभव होनां ऐसा एक

प्रकार है । सो ऐसा अनुभव अनादिकालतैं मिथ्यादर्शन नामा कर्मके उदयतैं अन्यथा होय रहा है । या मिथ्यात्वकी सादि मिथ्यादृष्टीकैं तीन प्रकृति सत्तामैं होय है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति ऐसैं । अर याकी सहकारिणी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ भेदकरि च्यार कपाय नामा प्रकृति हैं । ऐसैं ये सात प्रकृति ही सम्यग्दर्शनके घात करनेवाली हैं; सो इनि सातानिका उपशम भये पहले तौ इस जीवकैं उपशम सम्यक्त्व होय है । इनि प्रकृतितिनिके उपशम होनेके बाह्य कारण सामान्यकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव हैं, तिनिमैं प्रधान द्रव्यमैं तौ साक्षात् तीर्थंकरका देखना आदिक हैं, क्षेत्रमैं प्रधान समवसरणादिक हैं, कालमैं अर्द्ध पुद्गल पगवर्त्तन संसारका भ्रमण वाकी रहै सो, भावमैं अधःप्रवृत्त करण आदिक हैं । बहुरि विशेषकरि अनेक हैं, तिनिमैं केई-कनिकैं तौ अरहंतके बिचका देखना है, अर केईकनिकैं जिनेन्द्रके कल्याण आदिकी महिमाका देखना है, केईकनिकैं जातिस्मरण है, अर केईकनिकैं वेदनाका अनुभव है, अर केईकनिकैं धर्मश्रवण है, अर केई-कनिकैं देवनिकी ऋद्धिका देखना है, इत्यादिक बाह्य कारणनितैं मिथ्या-त्वकर्मका उपशम भये उपशमसम्यक्त्व होय है । बहुरि इनि सात प्रकृ-तिनिमैं छहका तौ उपशम अथवा क्षय होय अर एक सम्यक्त्व प्रकृ-तिका उदय होय तत्र क्षयोपशम सम्यक्त्व होय है, इंतं प्रकृतिके उदयतैं किछू अतीचार मल लागै । बहुरि इनि सात प्रकृतितिनिका सत्तामैंसुं नाश होय तत्र क्षायिक सम्यक्त्व होय है । सो ऐसैं उपशम आदिक भये जीवका परिणाम भेदकरि तीन प्रकार होय है, ते परिणाम होंय सो अतिसूक्ष्म हैं केवलज्ञानगम्य हैं जातैं इनि प्रकृतितिनिका द्रव्य पुद्गल पर-माणूनिके स्क्व हैं ते अतिसूक्ष्म हैं, अर तिनिमैं फल देनेकी शक्तिरूप अनुभाग है सो अतिसूक्ष्म है सो छद्मस्थके ज्ञान गम्य नाही । अर इनिका

उपशमादिक होतैं जीवके परिणाम भी सम्यक्स्वरूप होय ते भी अति-सूक्ष्म हैं ते भी केवलज्ञानगम्य हैं । तथापि किछू छद्मस्थके ज्ञानमें आवर्ने योग्य जीवका परिणाम होय हैं ते ताके जनावर्नेके बाह्यचिह्न हैं तिनिकी परीक्षाकरि निश्चय करनेका व्यवहार है, ऐसैं नहीं होग तौ छद्मस्थ व्यवहारी जीवकें सम्यक्त्वका निश्चय नहीं होय तब आस्तिक्यका अभाव ठहरै, व्यवहारका लोप होय यह बड़ा दोष आवै । तातैं बाह्य चिह्ननिका आगम अनुमान स्वानुभवतैं परीक्षाकरि निश्चय करनां ।

ते चिह्न कौन, सो लिखिये है;—तहां मुख्य चिह्नतौ यह है जो उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान चेतनास्वरूप आत्माकी अनुभूति है सो यद्यपि यह अनुभूति ज्ञानका विशेष है तथापि सम्यक्त्व भये यह होय है तातैं याकूं बाह्यचिह्न कहिए है । ज्ञान है सो आपका आपके स्वसंवेदनरूप है ताका रागादि विकाररहित शुद्ध ज्ञानमात्रका आपके आस्वाद होय “जो यह शुद्धज्ञान है सो मैं हूं अर ज्ञानमें रागादि विकार हैं ते कर्मके निमित्ततैं उपजै हैं ते मेरा रूप नांही हैं” ऐसैं भेदज्ञान करि ज्ञानमात्रका आस्वादकूं ज्ञानकी अनुभूति कहिये यह ही आत्मा अनुभूति है शुद्धनयका यहही विषय है । ऐसी अनुभूतितैं शुद्धनयकै द्वारै ऐसा भी श्रद्धान होय है जो सर्व कर्मजनित रागादिक भावतैं रहित अनंत चतुष्टय मेरा रूप है, अन्य भाव सर्व संयोग जनित हैं, ऐसी आत्माकी अनुभूति सो सम्यक्त्वका मुख्यचिह्न है । यह मिथ्यात्व अनंतानुबंधीका अभावकरि सम्यक्त्व होय ताका चिह्न है, सो चिह्नकूं ही सम्यक्त्व कहनां यह व्यवहार है । बहुरि याकी परीक्षा सर्वज्ञके आगम-करि तथा अनुमानकरि तथा स्वानुभव प्रत्यक्षकरि इनि प्रमाणनिकरि कीजिये है । बहुरि याहीकूं निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहिए है । तहां आपके तौ आपका स्वसंवेदनकूं प्रधानकरि होय है, अर परकैं परकी

परीक्षा परके वचन कायकी क्रियाकी परीक्षातैं अंतरंगमें भयेकी परीक्षा होय है, यह व्यवहार है, परमार्थ सर्वज्ञ जानै है । व्यवहारी जीवकै सर्वज्ञनै भी व्यवहारहीका शरणां उपदेश्या है । केई कहै हैं—जो सम्यक्त्व तौ केवलीगम्य है यातैं आपकैं सम्यक्त्व भयेका निश्चय नहीं होय तातैं आपकूं सम्यग्दृष्टी नहीं माननां ? । सो ऐसैं सर्वथा एकान्त करि कहनां तौ मिथ्या दृष्टि है, सर्वथा ऐसैं कहे व्यवहारका लोप होय, सर्व मुनि श्रावककी प्रवृत्ति मिथ्यात्वसहित ठहरै । तब सर्वही मिथ्या-दृष्टी आपकूं मानै तब व्यवहार काहेका रखा, तातैं परीक्षा भये पीछैं यह श्रद्धान नांही राखणां जो मैं मिथ्यादृष्टीहीहूं, मिथ्यादृष्टी तौ अन्य-मतीकूं कहिए है तब तिस समान आप भी ठहरै, तातैं सर्वथा एकान्त-पक्ष ग्रहण नहीं करनां । बहुरि तत्त्वार्थका श्रद्धान है सो बाह्य चिह्न है, तहां तत्त्वार्थ तौ जीव अजीव आत्मव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ऐसैं सात हैं, बहुरि इनिमें पुण्य पापका विशेष करिए तब नव पदार्थ होय हैं, सो इनिकी श्रद्धा कहिये इनिकैं सन्मुख बुद्धि अरु रुचि कहिए इनि रूप अपना भाव करनां बहुरि प्रतीति कहिये जैसैं सर्वज्ञ भापे तैसैं ही हैं ऐसैं अंगीकार करनां, बहुरि इनिका आचरणरूप क्रिया, ऐसैं श्रद्धानादिक होनां सो सम्यक्त्वका बाह्य चिह्न है । बहुरि प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न हैं । तहां अनंतानुबंधी क्रोधादिक कषायका उदयका अभाव सो प्रशम है; ताका बाह्य चिह्न ऐसा—जो सर्वथा एकान्त तत्त्वार्थके कहनेवाले जे अन्यमत जिनका श्रद्धान तथा बाह्यभेष ताविषैं सत्यार्थपणांका अभिमान करनां तथा पर्यायनिविषैं एकान्ततैं आत्मबुद्धिकरि अभिमान तथा प्रीति करनी ये अनंतानुबंधीका कार्य है, सो ये जाकै न होय तथा अपनां काहूँनै बुरा किया ताका घात करनां आदि विकारबुद्धि मिथ्यादृष्टिकी ज्यौं आपकैं

नहीं उपजै । अर ऐसे विचारै जो मेरा बुरा करनेवाला मेरा परिणामकरि मैं वांध्याथा जो कर्म, सो है, अन्य तौ निमित्तमात्र हैं, ऐसी बुद्धि आपकै उपजै, ऐसे मंदकपाय होय । अर अनंतानुबंधीविना अन्य चारित्रमोहकी प्रकृतिनिके उदयतैं आरंभादिक क्रियामैं हिंसादिक होय है तिनिंकुं भी भला नहीं जानै है यातैं निससैं प्रशमका अभाव नहीं कहिए । बहुरि धर्मविपै अर धर्मका फलविपै परम उत्साह होय सो संवेग है, तथा साधर्मनितैं अनुराग तथा परमेष्टीनिविपै प्रीति सो भी संवेगही है । अर इस धर्मविपै अर धर्मका फलविपै अनुरागकूं अभिलाप न कहनां जातैं अभिलाष तौ इन्द्रियनिके विषयनिविपै चाह होय ताकूं कहिये है, अपनां स्वरूपकी प्राप्तिविपै अनुरागकूं अभिलाप नहीं कहिये । बहुरि इस संवेगहीमैं निर्वेद भी भया जाननां जातैं अपने स्वरूपरूप धर्मकी प्राप्तिविपै अनुराग भया तब अन्यत्र सर्वही अभिलाषका त्याग भया सर्व परद्रव्यानिंसूं वैराग्य भया, सो ही निर्वेद है । बहुरि सर्व प्राणीनिविपै उपकारकी बुद्धि तथा भैत्रीभाव सो अनुकंपा है तथा माध्यस्थ्यभाव होय तातैं सम्यग्दृष्टिकैं शल्य नांही है काहूमूं धैरभाव न होय है, मुख दुःख मरण जीवन आपकै परकरि अर परकै आपकरि नांही श्रद्धे है । बहुरि जो परविपै अनुकंपा है सो आपहीविपै अनुकंपा है जातैं परका बुरा करनां विचारै तब अपने कपायभावतैं अपनां बुरा स्वयमेव भया, परका बुरा न विचारै तब अपने कपायभाव न भये तब अपनी अनुकंपाही भई । बहुरि जीव आदि पदार्थनिविपै अस्तित्वभाव सो आस्तिक्यभाव है सो जीव आदिका स्वरूप सर्वज्ञके आगमतैं जानि तिनिविपै ऐसी बुद्धि होय जो ये जैसें सर्वज्ञ भापे तैसेंही हैं अन्यथा नांही है, ऐसा अस्तिक्यभाव होय है । ऐसें ये सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न हैं ।

बहुरि सम्यक्त्वके आठ गुण हैं;—संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकंपा । सो ये प्रशमादिक चार हीमैं

आगये । संवेगमैं तौ निर्वेद, वात्सल्य, अर भक्ति ये आगये । बहुरि प्रशममैं निन्दा, गर्हा आगई ।

बहुरि सम्पददर्शनके आठ अंग कहे हैं तिनिकूं लक्षण भी कहिये गुण भी कहिये, तिनिके नाम—निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचि-
कित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य, प्रभावना ऐसैं आठ ।

तहां शंका नाम संशयका भी है अर भयका भी है । तहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालाणुद्रव्य परमाणु इत्यादि तौ सूक्ष्म वस्तु हैं, बहुरि द्वीप समुद्र मेरु पर्वत आदि दूरवर्ती पदार्थ हैं, बहुरि तीर्थकर चक्रवर्ती आदि अंतरित पदार्थ हैं; ते सर्वज्ञके आगमविषैं जैसैं कहे हैं तैसैं हैं कि नाही हैं ? अथवा सर्वज्ञदेवनैं वस्तुका स्वरूप अनेकान्तात्मक कब्या है सो सत्य है कि असत्य है ? ऐसैं संदेह करनां सो शंका कहिये । यह न होय तौ ताकूं निःशंकित अंग कहिये । बहुरि यह शंका होय है सो मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं होय है, ताका परविषैं आत्मबुद्धि होना कार्य है । सो यह परविषैं आत्मबुद्धि है सो पर्यायबुद्धि है, यह पर्यायबुद्धि भय भी उपजावै है । शंका नाम भयका भी है, ताके सात भेद हैं;—इस लोकका भय, परलोकका भय, मरणका भय, अनरक्षाका भय, अगुतिभय, वेदनाका भय, अकस्मात् भय । ऐसैं ये भय होय तत्र जानिये याकै मिथ्यात्व-कर्मका उदय है; सम्यग्दृष्टि भये ये होय नाहीं । इहां प्रश्न—जो भय प्रकृतिका उदय तौ आठमा गुणस्थान ताई है ताके निमित्ततैं सम्यग्दृ-ष्टीकैं भय होय ही है, भयका अभाव कैसैं ? ताका समाधानः—जो यद्यपि सम्यग्दृष्टीकैं चारित्रमोहके भेदरूप भयप्रकृतिके उदयतैं भय होय है तथापि ताकूं निर्भय ही कहिये जातैं याकै कर्मके उदयका स्वामी-पणां नाहीं है अर परद्रव्यतैं अपनां द्रव्यत्वभावका नाश नहीं मानैं है,

पर्यायका स्वभाव विनाशीक मानै है, तातैं भय होतैं भी निर्भय ही कहिये । भय होतैं ताका इलाज भागनां इत्यादि करै है, तहां वर्तमानकी पीडा नहीं सही जाय तातैं इलाज करै है यह निबलाईका दोष है । ऐसैं संदेह अर भयरहित सम्यग्दृष्टी होय ताकैं निःशक्ति अंग होय है ॥ १ ॥

बहुरि कांक्षा नाम भोगनिकी इच्छा अभिलाषका है । तहां पूर्व किये भोग तिनिकी वांछा तथा तिनि भोगनिकी मुख्य क्रिया विषैं वांछा तथा कर्म अर कर्मके फलविषैं वांछा तथा मिथ्यादृष्टीनिकैं भोगनिकी प्राप्ति देखि तिनिकूं अपने मनमें भला जाननां, अथवा इंद्रियनिकूं नहीं रुचै ऐसे विषयनिविषैं उद्वेग होनां; ये भोगाभिलाषके चिह्न हैं । सो यह भोगाभिलाष मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं होय है । सो यह जाकैं नहीं होय सो निःकांक्षित अंगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है । यह सम्यग्दृष्टी यद्यपि शुभक्रिया व्रतादिक आचरण करै हैं ताका फल शुभकर्मबंध है ताकूं भी नांही वांछै है व्रतादिककूं स्वरूपके साधक जानि आचरै है कर्मके फलकां वांछा नांही करै है । ऐसैं निःकांक्षित अंग है ॥ २ ॥

बहुरि आपविषैं अपने गुणकी महंतताकी बुद्धिकरि आपकूं श्रेष्ठ मानि परविषैं हीनताकी बुद्धि होय ताकूं विचिकित्सा कहिये, यह जाकैं नहीं होय सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है । याके चिह्न ऐसैं—जो कोई पुरुष पापके उदयतैं दुःखी होय, असाताके उदयतैं ग्लानियुक्त शरीर होय ताविषैं ग्लानिबुद्धि नहीं करै । ऐसी बुद्धि नहीं करै—जो मैं संपदावान हूं सुन्दरशरीरवान हूं, यह दीन रांक मेरी बराबरी नांही करि सकै । उलटा ऐसैं विचारै जो प्राणीनिकै कर्मउदयतैं विचित्र अनेक अवस्था होय है, भेर कर्मका उदय ऐसा आवै तब मैं भी ऐसा ही होजाऊं । ऐसैं विचारतैं निर्विचिकित्सा अंग होय है ॥ ३ ॥

बहुिर अतत्त्वविषै तत्त्वपणांका श्रद्धान सो मूढदृष्टि है । ऐसै मूढदृष्टि जाकै नहीं होय सो अमूढदृष्टि है । तहां मिथ्यादृष्टीनिकरि खोटे हेतु दृष्टान्तकरि साध्या पदार्थ है सो सम्यग्दृष्टीकूं प्रीति नांही उपजावै है । बहुिर लौकिक रूढी अनेक प्रकार है सो यह निःसार है, निःसार पुरुषनिकरि ही आचरिण है, अनिष्ट फलकी देनहारी हैं तथा निष्फल है तथा जाका खोटा फल है तथा ताका किछु हेतु नांही ताका किछु अर्थ नांही, जो किछु लोक रूढ़ि चलिपड़ै सो लोक आदरिले फेरि ताका त्यजनां कठिन होय जाय इत्यादि लोकरूढ़ि हैं । बहुिर अदेव-विषै तौ देवबुद्धि अधर्मविषै धर्मबुद्धि, अगुरुविषै गुरुबुद्धि इत्यादि देवा-दिक मूढता हैं सो यह कल्याणकारी नांही । सदोष देवकूं देव माननां, बहुिर तिनिके निमित्त हिंसादिकरि अधर्मकूं धर्म माननां, बहुिर खोटा आचारवान शल्यवान परिग्रहवान सम्यक्वचनतरहितकूं गुरु माननां इत्यादि मूढ दृष्टिके चिह्न हैं । अब इहां देव धर्म गुरु कैसै होय तिनिका स्वरूप जान्या चाहिये, सो ही कहिये है—तहां रागादिक दोष अर ज्ञानावरणादिक कर्म सो ही आवरण, ये दोऊ जाकै नांही सो देव है; ताकै केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतमुख अनंतवर्षिये ये अनंतचतुष्टय होय हैं । सो सामान्यतैं तौ देव ऐसा एक है अर विशेषकरि अरहंत सिद्ध ऐसै दोय भेद हैं, बहुिर इनिके नामभेदके भेदकरि भेद करिये तब हजारों नाम हैं । बहुिर गुणभेद करिण तब अनंत गुण हैं । तहां परम औदारिक देह विषै तिष्ठया घातियाकर्मरहित अनंतचतुष्टयसहित धर्मका उपदेश करनहारा ऐसा तौ अरहंत देव है । बहुिर पुद्गलमयी देहसूरहित लोकके शिखर निष्ठया सम्यक्त्वादिक अष्टगुणमंडित अष्टकर्मरहित ऐसा सिद्ध देव है, इनिके अनेक नाम हैं—अरहंत, जिन, सिद्ध, परमात्मा, महादेव, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, हरि, बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग परमात्मा

इत्यादि अर्थसहित अनेक नाम हैं; ऐसा तौ देव जानना । बहुरि गुरु भी अर्थ धकी विचारीये तौ अरहंत देवही है जातैं मोक्षमार्गका उपदेश करनहारा अरहंतही है साक्षात् मोक्षमार्ग यहही प्रवर्त्तावै है, बहुरि अरहंतकै पीछे छद्मस्थ ज्ञानके धारक तिनिहीका निर्ध्रुव दिगंबर रूप धारनेवाले मुनि हैं ते गुरु हैं जातैं अरहंतका एकदेशशुद्धपणां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका तिनिं पाइये सोही संवर निर्जरा मोक्षके कारण हैं तातैं अरहंतकी ज्यों एकदेशपणैं निर्दोष हैं ते मुनि भी गुरु हैं, मोक्षमार्गके उपदेश करनहारे हैं । बहुरि ऐसा मुनिपणां सामान्यकरि एकप्रकार है, बहुरि विशेषकरि सो ही तीन प्रकार हैं—आचार्य, उपाध्याय, साधु । ऐसैं यह पदवीका विशेष है, तिनिं मुनिपणांकी क्रिया एकही है, बाह्य लिंग भी समान है, पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुति ऐसैं तेरह प्रकारका चारित्र भी समानही है, तप भी शक्तिसात्त्व समानही है, साम्यभाव भी समान हैं, मूलगुण उत्तरगुण भी समान हैं, परीपह उपसर्गनिका सहना भी समान है, आहार आदिकी विधि भी समान है, चर्या स्थान आसन आदि भी समान हैं, मोक्षमार्गका साधनां सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र भी समान हैं । ध्याता ध्यान ध्येयपणां भी समान है, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयपणां भी समान हैं, चार आराधनांका आराधना क्रोधादिक कपायनिका जीतनां इत्यादि मुनिनिकी प्रवृत्ति है सो सर्व समान है । इहां विशेष यहु है—जो आचार्य है सो तौ पंच आचार अन्यकूं अंगीकार करावै है, बहुरि अन्यकूं दोष लागैं ताका प्रायश्चित्तकी विधि बतावै है, धर्मोपदेश दीक्षा शिक्षा दे सो तौ आचार्य होय है सो ऐसा आचार्य गुरु बंदने योग्य है । बहुरि उपाध्याय है सो वादित्व वाग्वित्व कवित्व गमकत्व ये चार विद्या हैं तिनिमें प्रवीण होय हैं, इस विषैं शास्त्रका अभ्यास प्रधान कारण है आप शास्त्र पढ़ै अन्यकूं पढ़ावै, ऐसा उपाध्याय गुरु बंदने

है, याकै अन्य मुनिव्रत मूलगुण उत्तरगुणकी क्रिया आचार्यसमान
 ही है । बहुरि साधु हैं सो रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गकूं साथै सो साधु
 याकै दीक्षा शिक्षा उपदेशादिक देनेकी प्रधानता नाहीं अपने स्वरू-
 साधनविषै ही तत्पर होय है, निग्रंथ दिगंबर मुनिकी प्रवृत्ति जैसी
 नागममें वर्णन करी है तैसी सर्वही होय है; ऐसा साधु बंदनेयोग्य है ।
 यलिंगी भेपी व्रतादिकतै रहित परिग्रहवान विषयनिमै आसक्त गुरु नाम
 तै ते बंदनेयोग्य नाहीं हैं । इस पंचकालमै भेपी जिनमतमै भी भये हैं
 श्वेतांबर, यापनीयसंघ, गोपुच्छपिच्छसंघ, निःपिच्छसंघ, द्राविडसंघ
 प्रादि लेय अनेक भये हैं सो ये सर्वही बंदनेयोग्य नाहीं हैं । मूलसंघ, नप-
 देगंबर, अट्टईस मूलगुणनिके धारक, मयूरपिच्छक कर्मडलु दयाका अर
 शौचका उपकरण धारै यथाक्तविधि आहार करनेवाले गुरु बंदनेयोग्य
 हैं जातै तीर्थकर देव दीक्षा धारै हैं तब ऐसाही रूप धारै हैं अन्य भेष
 नाहीं धारै हैं, याहीकूं जिनदर्शन कहिए हैं । बहुरि धर्म जाकूं कहिए
 जो जीवकूं संसारके दुःखरूप नीचा पदतै मोक्षका सुखरूप ऊंचा पदमै
 धारै, ऐसा धर्म मुनिश्रावकके भेदकरि दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक एकदेश
 । विदेशरूप निश्चय व्यवहार करि दोय प्रकार कहा है ताका मूल
 । सम्यग्दर्शन है या बिनां धर्मकी उत्पत्ति नाहीं है । ऐसैं देव गुरु धर्म
 विषै अर लोकविषै यथार्थ दृष्टि होय अर नूढता नहीं होय सो
 अमूढ दृष्टि अंग है ॥ ४ ॥

बहुरि अपने आत्माकी शक्तिका वधावना सो उपबृंहण अंग है सो
 सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका अपनां पौरुषकरि वधावनां सो ही उपबृंहण
 है । याकूं उपगूहन भी कहिये है, तहां ऐसा अर्थ जाननां जो स्वयं-
 सिद्ध जिनमार्ग है ताकै बालकके तथा असमर्थ जनके आश्रयतै जो
 यत्नता होय ताकूं अपनी बुद्धितै गोप्यकरि दूरिही करै सो उपगूहन
 है ॥ ५ ॥

बहुिर धर्मतैं जो च्युत होता होय ताकूं दृढ करनां सो स्थिती अंग है सो जो आप कर्मके उदयके वशतैं कदाचित् श्रद्धानतैं क्रिया आचारतैं छूटै तौ आपकूं फेरि पौरुष करि श्रद्धानमें दृढ करि बहुरि तैसैं ही अन्य धर्मात्मा धर्मतैं च्युत होता होय तौ ताकूं उपदेस दिक् करि धर्म विषैं स्थापनां, ऐसैं स्थितीकरण अंग होय है ॥ ६ ॥

बहुरि अरहंत सिद्ध तथा तिनिके बिब तथा चैत्यालय तथा चतुर्विधसंघ तथा शास्त्र इनिविषैं दासपणां होय जैसैं स्वामीका भृत्य दास होय तैसैं, सो वात्सल्य अंग है । तहां धर्मके स्थानकनिकैं उपसर्गादिक आवै ताकूं अपनी शक्तिसारू भेंटै अपनी शक्तिकूं छिपावै नांही, यह धर्मतैं अतिप्रीति होय तब होय है ॥ ७ ॥

बहुरि धर्मका उद्योत करनां सो प्रभावना अंग है । तहां अपने आत्माका रत्नत्रयकरि उद्योत करनां अर्पण दान तप पूजा विधानकरि तथा विद्या अतिशय चमत्कारादिककरि जिनधर्मका उद्योत करनां, ऐसैं प्रभावना अंग होय है ॥ ८ ॥

ऐसैं ये आठ अंग सम्यक्त्वके हैं जाकैं ये प्रकट होय ताकैं जानिये सम्यक्त्व है । इहां प्रश्न—जो ये सम्यक्त्वके चिह्न कहे तैसैंही मिथ्या-दृष्टीकैं भी देखैं तब सम्यक् मिथ्याका विभाग कैसैं होय ? । ताका समाधान—जो जैसैं सम्यक्त्वकी होय तैसैं तौ मिथ्यात्वकी कभीही नहीं होय है तौ हू अपरीक्षककूं समान दीखैं तहां परीक्षा किये भेद जान्या जाय है । बहुरि परीक्षाविषैं अपना स्वानुभव प्रधान है सर्वज्ञके आगममें जैसा आत्माका अनुभव होना कहा है तैसा आपकैं होय तब ताके होतैं अपनी वचन कायकी प्रवृत्ति भी तिस अनुसार होय है, तिस प्रवृत्तिके अनुसार अन्यकी भी वचन कायकी प्रवृत्ति पहचानिये आप

ऐसै परीक्षा किये विभाग होय है । बहुरि यह व्यवहार मार्ग है, व्यवहारी छद्मस्थ जीवनिक्कै अपने ज्ञानकै अनुसार प्रवृत्ति है, यथार्थ भेददेव जानै हैं, व्यवहारीकू सर्वज्ञदेव व्यवहारहीका आश्रय बताया । यह अंतरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है सो ही सम्यग्दर्शन है, बहुरि बाह्यदर्शन व्रत समिति गुप्तिरूप चारित्र अर तपसहित अट्टाईस गुणगुणसहित नम्र दिगंबर मुद्रा याकी मूर्ति है ताकू जिन दर्शन कहिये । ऐसै धर्मका मूल सम्यग्दर्शन जानि जे सम्यग्दर्शनरहित हैं तिनिका वंदना पूजनां निषेध्या है, सो भव्य जीवनिक्कू यह उपदेश अंगीकार करने योग्य है ॥ २ ॥

आगै अंतरंग सम्यग्दर्शनविना बाह्य चारित्रतैं निर्वाण नांही है, ऐसै कहै हैं,—

गाथा—दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं ।

सिज्झंति चरियभट्टां दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥ ३ ॥

छाया—दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम् ।

सिध्यन्ति चारित्रभ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनतैं भ्रष्ट हैं ते भ्रष्ट हैं जे दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तिनिकै निर्वाण नांही होय है जातैं यह प्रसिद्ध है जे चारित्रतैं भ्रष्ट हैं ते तौ सिद्धिकू प्राप्त होय हैं अर दर्शन भ्रष्ट हैं ते सिद्धिकू प्राप्त नांही होय हैं ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं तिनिकू भ्रष्ट कहिये अर श्रद्धातैं भ्रष्ट नांही है अर कदाचित् चारित्रभ्रष्ट कर्मके उदयतैं भये हैं तिनिकू भ्रष्ट नहीं कहिये जातैं जो दर्शनतैं भ्रष्ट है ताकै निर्वाणकी प्राप्ति नांही होय है, जे चारित्रतैं भ्रष्ट होय हैं अर श्रद्धानदृढ रहै हैं

तिनिकै तौ शीघ्रही फेरि चारित्रका ग्रहण होय है मोक्ष होय है, व
दर्शन श्रद्धातैं भ्रष्ट होय है तिनिकै फेरि चारित्रका ग्रहण कइ उन ह
है तातैं निर्वाणकी प्राप्ति दुर्लभ होय है, जैसे वृक्षका स्कंधादिक का
जाय अर मूल वण्ण्य रहै तौ स्कंधादिक शीघ्रही फेरि होय फल लगे
अर मूल उपडि जाय तब स्कंधादिक कैसे होय; तैसे धर्मका मूल दर्श
जाननां ॥ ३ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनतैं भ्रष्ट हैं अर शास्त्रनिकूं बहोत प्रकार जानै हैं त
हू संसारमें भ्रमै हैं, ऐसे ज्ञानतैं भी दर्शनकूं अधिक कहैं हैं;—

गाथा—सम्मत्तरयणभट्टा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।

आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥ ४ ॥

छाया—सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।

आराधनाविरहिताः भ्रमंति तत्रैव तत्रैव ॥ ४ ॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्नकरि भ्रष्ट हैं अर बहुत प्रकारके
शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौऊ ते आराधनाकरि रहित भये संते जिन संसार-
विषैही भ्रमैं हैं । दोय वार कहनेतैं बहुत भ्रमणां जनाया, हैं ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं अर शब्द न्याय छंद
अलंकार आदि अनेक प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौ हू सम्यग्दर्शन
ज्ञान चारित्र तपरूप आराधनां तिनिकैं नांही होय है यातैं कुमरणकरि
चतुर्गतिरूप संसारविषै ही भ्रमण करैं हैं मोक्ष नांही पावै हैं आतैं
सम्यक्त्व विना ज्ञानकूं आराधना नाम नहीं कहिये ॥ ४ ॥

आगैं कहैं हैं, तप हू करै अर सम्यक्त्वरहित होय तौ तिनिकैं स्व-
रूपका लाभ नहीं होय;—

गाथा—सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठ वि उगं तवं चरंता णं ।

ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥ ५ ॥

छाया—सम्यक्त्वविरहिता णं सुष्ठु अपि उग्रं तपः चरंतो णं ।

न रुन्त्ये नोपिलामं अपि वर्षसहस्रकोटिमिः ॥ ५ ॥

अर्थः—जे पुरुष सम्यक्त्वकरि विरोह हैं ते सुष्ठु कहिये भले प्रकार उग्र तपकूं आचरते हैं तौऊ ते बोधि कोष्टे पश्यन्निज्ञानचारित्रमयी अपनां स्वरूप ताका लाभकूं नांही पावैं हैं, जे जार कोडि वर्ष ताई तप करै तौऊ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होय । इहां मूलमें 'णं' ऐसा शब्द दोय जायगां है सो प्राकृतमें अव्यय है, याका अर्थ वाक् अलंकार है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व विना हजार कोडि वर्ष तप करै तौऊ मोक्ष-मार्गकी प्राप्ति नांही । इहां हजार कोडि कहनेतैं एतेही वर्ष नहीं जाननें, कालका बहुतपणां जणाया है । तप मनुष्यपर्यायहीमें होय है तातैं मनुष्यकालभी थोडा है तातैं तप कहनेतैं ये भी वर्ष बहुतही कहिये ॥ ५ ॥

आगे ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व विना चारित्र तप निष्फल कहे, अब सम्यक्त्वसहित सर्वही प्रवृत्ति सफल है ऐसैं कहैं हैं;—

गाथा—सम्मत्तणाणदंसणवलवीरियवड्डमाण जे सव्वे ।

कलिकलुसपावरहिया वरणाणीं होंति अइरेण ॥ ६ ॥

छाया—सम्यक्त्वज्ञानदर्शनवलवीर्यवर्द्धमानाः ये सर्वे ।

कलिकलुषपापरहिताः वरज्ञानिनः भवंति अचिरेण ॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वल वीर्य इनि करि वर्द्धमान हैं अर कलिकलुषपाप कहिए इस पंचमकालके मलिन पापकरि

रहित हैं ते सर्व ही थोड़े ही कालमें वरज्ञानी कहिये केवल ज्ञानी होय हैं ॥

भावार्थ—इस पंचमकालमें जब भक्त जीवनिके प्रिमित करि यथार्थ मार्ग अपभ्रंश भया है तिसकी बाग़रतै रहित भये जे जीव यथार्थ जिनमार्गके श्रद्धान्तर सम्यक्त्वसहित ज्ञान दर्शन अपना पराक्रम बलकू न छिपाय कैं अपनां वीर्य जो शक्ति ताकरि वर्द्धमान भये संते प्रवर्तै ते थोड़े ही कालमें केवलज्ञानी होय मोक्ष पावैं हैं ॥ ६ ॥

आगैं कहैं हैं, जो सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह आत्माकैं कर्मरज नाही लागने दे है;—

गाथा—सम्मत्तसलिलपवहो णिचं हियए पवट्टए जस्स ।

कम्मं वालुयवरणं बंधुच्चिय णासए तस्स ॥ ७ ॥

छाया—सम्यक्त्वसलिलप्रवाहः नित्यं हृदये प्रवर्तते यस्य ।

कर्म वालुकावरणं बद्धमपि नश्यति तस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जा पुरुषका हृदयकै विपैं सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह निरन्तर प्रवर्तै है तापुरुषकैं कर्म सो ही भया बाद्धरजका आवरण सो नाही लागै है, बहुरि ताकै पूवैं लग्या कर्मका बंध सो भी नाशकूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व सहित पुरुषकै कर्मके उदयतैं भये जे रागादिक भाव तिनिका स्वामीपणां नाही है तातैं कषायनिकी तीव्र कलुषतातैं रहित परिणाम उज्ज्वल होय हैं, ताकूं जलकी उपमा हैं । जैसैं जलका प्रवाह जहां निरन्तर वहै तहां बाढ़ रेत रज लागै नाही जैसैं सम्यक्त्ववान जीव कर्मके उदयकूं भोगता भी कर्मतैं नाही लिपै है । अर बाह्य व्यवहार अपेक्षा ऐसा भी भावार्थ जाननां—जाकै निरन्तर हृदयमें

सम्यक्त्वरूप जलप्रवाह वहै है सो सम्यक्त्ववान पुरुष इस कलिकाल-संबंधी वासना जो कुदेव कुशास्त्र कुगुरु इनके नमस्कारादिरूप अती-चाररूप रज भी नांही लगावै है, अर ताकै मिथ्यात्वसंबंधी प्रकृतिनिका आगामी बंध भी नांही होय है ॥ ७ ॥

आगै कहैं हैं, जे दर्शनभ्रष्ट हैं अर ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते आप तौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु अन्यकूं भ्रष्ट करैं हैं, यह अनर्थ है,—

गाथा—जे दंसणेषु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य ।

एदे भट्ट वि भट्टा सेसं पि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

छाया—ये दर्शनेषु भ्रष्टाः ज्ञाने भ्रष्टाः चारित्रभ्रष्टाः च ।

एते भ्रष्टात् अपि भ्रष्टाः शेषं अपि जनं विनाशयंति ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं बहुरि ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते पुरुष भ्रष्टनिविषैं भी विशेष भ्रष्ट हैं । केई तौ दर्शनसहित हैं अर ज्ञान चारित्र जिनकै नांही है, बहुरि केई अंतरंग दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तौऊ ज्ञान चारित्र नीकैं पाळै हैं, अर जे दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननितैं भ्रष्ट हैं ते तौ अत्यंत भ्रष्ट हैं, ते आपतौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु शेष कहिये आप सिवाय अन्य जन हैं तिनिकूं भी नष्ट करैं हैं ॥

भावार्थ—इहां सामान्य वचन है तातैं ऐसा भी आशय सूचै है जो सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान चारित्र तौ दूरिही रहौ जो अपने मतकी श्रद्धा ज्ञान आचरणतैं भी भ्रष्ट हैं ते तौ निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं ते आप भ्रष्ट हैं तैसैं ही अन्य लोककूं उपदेशादिक करि भ्रष्ट करै हैं तथा तिनिकी प्रवृत्ति देखि स्वयमेव लोक भ्रष्ट होय हैं तातैं ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं तिनिकी संगति करनां भी उचित नाहीं ॥ ८ ॥

आगै. कहैं है, जो ऐसे भ्रष्ट पुरुष आप भ्रष्ट हैं ते धर्मात्मा पुरुष-
निकू दोष लगाय भ्रष्ट बतावैं हैं;—

गाथा—जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोयगुणधारी ।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति ॥ ९ ॥

छाया—यः कोऽपि धर्मशीलः संयमतपोनियमयोगगुणधारी ।
तस्य च दोषान् कथयंतः भग्ना भग्नत्वं ददति ॥ ९ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष धर्मशील कहिये अपनां स्वरूपरूप धर्म
साधनेका जाका स्वभाव है तथा संयम कहिये इन्द्रिय मनका निग्रह
षट् कायके जीवनिकी रक्षा, अर तप कहिये बाह्य आभ्यंतर भेदकरि
बारह प्रकार तप, नियम कहिये आवश्यक आदि नित्य कर्म, योग
कहिए समाधि ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग, गुण कहिये मूल-
गुण उत्तरगुण, इनिका धारनेवाला है ताकै केई मततैं भ्रष्ट जीव दोष-
निका आरोपण करि कहैं हैं—जो ये भ्रष्ट हैं दोषनिसहित हैं ते पापात्मा
जीव आप भ्रष्ट हैं तातैं अपना अभिमान पोषनेकूं अन्य धर्मात्मा पुरु-
षनिकूं भ्रष्टपणां दे हैं ॥

भावार्थ—पापीनिका ऐसा ही स्वभाव होय है जो आप पापी है
तैसें ही धर्मात्मामैं दोष बताय आप समान किया चाहै है, ऐसे पापी-
निकी संगति नहीं करनी ॥ ९ ॥

आगै कहैं हैं—जो दर्शनभ्रष्ट है सो मूलभ्रष्ट है ताकै फलकी प्राप्ति
नाही;—

गाथा—जह मूलम्मि विणट्टे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्डी ।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति ॥ १० ॥

यथा—यथा मूले विनष्टे द्रुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धिः ।

तथा जिनदर्शनभ्रष्टाः मूलविनष्टाः न सिद्ध्यन्ति ॥ १० ॥

अर्थ—जैसे वृक्षका मूल विनष्ट होतै संतै ताके परिवार कहिये कव शाखा पत्र पुष्प फल ताकी वृद्धि नहीं होय है तैसे जे जिनदर्श-
न भ्रष्ट हैं बाह्य तौ निर्भय लिंग नम्र दिगंबर यथाजातरूप मूलगुणका
धारण मयूरपुच्छिकापीछी अर कमंडलु धारनां यथाविधि दोष टालि
शुद्ध खडा भोजन करनां इत्यादि बाह्य शुद्ध भेष धारनां अर अंतरंग
जीवादे षट् द्रव्य नव पदार्थ सप्त तत्वका यथार्थ श्रद्धान तथा भेदवि-
ज्ञानकरि आत्मस्वरूपका अनुभवन ऐसा जो दर्शन मत तातै बाह्य हैं
रे मूलविनष्ट हैं तिनिकै सिद्धि नांही होय है, मोक्षफलकूं नांही पावै
॥ १० ॥

आगैं कहैं हैं, जो जिनदर्शन है सो ही मूल मोक्षमार्ग है;—

तथा—जह मूलाओ खंधो, साहापरिवार बहुगुणो होइ ।

तह जिणदंसण मूलो णिहिटो मोक्षमगगस्स ॥ ११ ॥

जाया—यथा मूलात् स्कंधः शाखापरिवारः बहुगुणः भवति ।

तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे वृक्षकै मूलतै स्कंध होय है, सो कैसाक स्कंध होय
है—शाखा आदि परिवार बहुत हैं गुण जाकै, इहां गुण शब्द बहुतका
वाचक है तैसे ही मोक्षमार्गका मूल जिनदर्शन गणवर देवादिकनै
कहा है ॥

भावार्थ—इहां जिनदर्शन कहिये जो भगवान तीर्थकरपरमदेव-
दर्शन ग्रहण किया सो ही उपदेश्या सो ऐसा मूलसंघ है अट्ठाईस मूल-
गुणसहित कहा है । पंच महाव्रत, पंच समिति, षट् आवश्यक पांच
इंद्रियनिका वश करनां, स्नान न करनां, वस्त्रादिकका त्याग, दिगम्बर

मुद्रा, केशलौच करनां, एक बार भोजन करनां, खड़ा भोजन करनां, दंतधावन न करनां ये अट्टाईस मूलगुण हैं। बहुरि छियालीस दोष टालि आहार करनां सो एषणा समितिमें आगया। ईर्यापथ सोधि चालनां सो ईर्यासमितिमें आय गया। अर दयाका उपकरण तौ मोर पुच्छकी पीछी अर शौचका उपकरण कमंडलुका धारण ऐसा तौ बाह्य भेष है। बहुरि अंतरंग जीवादिक षट् द्रव्य पंचास्ति काय सप्त तत्त्व नव पदार्थनिकू यथोक्त जानि श्रद्धान करनां अर भेदविज्ञानकरि अपनां आत्मस्वरूपका चितवन करनां अनुभव करनां, ऐसा दर्शन जो मत सो मूलसंघका है। ऐसा जिनदर्शन है सो मोक्षमार्गका मूल है, इस मूलतैं मोक्षमार्गकी सर्व प्रवृत्ति सफल होय है। बहुरि जे इसतैं भ्रष्ट भये हैं ते इस पंचमकालके दोषतैं जैनाभास भये हैं, ते श्वेतांबर द्वाविड यापनीय गोपुच्छपिच्छ निपिच्छ पांच संघ भये हैं तिनिनैं सूत्र सिद्धांत अपभ्रंश किये हैं बाह्य भेष पलटि बिगाड्या है आचरण जिनूनैं ते जिनमतके मूलसंघतैं भ्रष्ट हैं तिनिकैं मोक्षमार्गकी प्राप्ति नांही है। मोक्षमार्गकी प्राप्ति मूलसंघके श्रद्धान ज्ञान आचरणहीतैं है ऐसा नियम जाननां ॥ ११ ॥

आगैं कहैं हैं जो, जे यथार्थ दर्शनतैं भ्रष्ट हैं अर दर्शनके धारक-नितैं आप विनय कराया चाहै है ते दुर्गति पावैं हैं;—

गाथा—^१जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं ।

ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लह्हा तेसिं ॥ १२ ॥

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस गाथाका पूर्वाद ईस प्रकार है जिसका यह अर्थ है कि “जो दर्शन भ्रष्ट पुरुष दर्शन धारियोंके चरणोंमें नहीं गिरते है”—

“जे दंसणेसु भट्टा पाए न पडंति दंसणधराणं”—

उत्तरार्द्ध समान है।

छाया—ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयन्ति दर्शनधरान् ।

ते भवन्ति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम् ॥१२

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषै भ्रष्ट हैं अर अन्य जे दर्शनके धारक हैं तिनिकू अपनै पगनि पढावै हैं नमस्कारादि करावै हैं ते परभव विषै छला मूका होय हैं अर तिनिकै बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रकी प्राप्ति सो दुर्लभ होय है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जे दर्शनभ्रष्ट हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं अर दर्शनके धारक हैं ते सम्यग्दृष्टी हैं, सो मिथ्यादृष्टी होय करि सम्यग्दृष्टीनितै नमस्कार चाहै हैं ते तीव्र मिथ्यात्वके उदयसहित हैं ते परभवविषै छला मूका होय हैं, भावार्थ—एकेंद्रिय होय हैं तिनिकै पग नांही ते परमार्थतै छला मूका हैं ऐसै एकेंद्रियस्थावर होय निगोदमें वास करै हैं तहां अनंतकाल रहै हैं, तिनिके दर्शन ज्ञान चरित्रका प्राप्ति दुर्लभ होय है, मिथ्यात्वका फल निगोदही कह्या है । इस पंचम कालमें मिथ्या मतके आचार्य बनि लोकनितै विनयादिक पूजा चाहै हैं तिनिकै जानिये है कि त्रस-राशिका काल पूरा हुआ अब एकेंद्रिय होय निगोदमें वास करैगे, ऐसै जान्या जाय है ॥ १२ ॥

आगे कहै है जो जे दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकै लज्जादिकतै भी पगां पढै हैं ते भी तिन सारिखे ही हैं;—

गाथा—जे वि पडन्ति च तेसिं जाणन्ता लज्जागरवभयेण ।

तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणानं ॥ १३॥

संस्कृत—येऽपि पतन्ति च तेषां जानंतः लज्जागरवभयेन ।

तेषामपि नास्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानाम् ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनसहित हैं ते भी दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकू मिथ्या-दृष्टी जानते संते भी तिनिके पगां पढै हैं तिनिका लज्जा भयगरव करि

विनयादि करै हैं तिनिकै भी बोधि कहिके दर्शन ज्ञान चरित्र ताकी प्राप्ति नांही है जातैं ते भी पाप जो मिथ्यात्व ताकी अनुमोदन करते हैं, करनां करावनां अनुमोदनां करनां समान कह्या है । इहां लज्जा तौ ऐसैं— जो हम काहूका विनय नांहीं करैंगे तौ लोक कहैंगे ये उद्धत है मानी हैं तातैं हमकूं तौ सर्वका साधन करनां, ऐसैं लज्जाकरि दर्शनभ्रष्टका भी विनयादिक करै । बहुरि भय ऐसैं—जो ये राज्यमान्य है तथा मंत्र विद्यादिककी सामर्थ्ययुक्त है याका विनय नहीं करैंगे तौ कछु हमारे ऊपरि उपद्रव करैगा, ऐसैं भय करि विनय करै । बहुरि गारव तीन प्रकार कह्या है; रसगारव ऋद्धिगारव सातगारव । तहां रसगारव तो ऐसा जो मिष्ट इष्ट पुष्ट भोजनादि मिलिबो करै तब ताकरि प्रमादी रहै । बहुरि ऋद्धिगारव ऐसा जो कछु तपके प्रभाव आदिकरि ऋद्धिकी प्राप्ति होय, ताका गौरव आय जाय, ताकरि उद्धत प्रमादी रहै । बहुरि सात-गौरव ऐसा जो शरीर नीरोग होय कछु क्लेशका कारण नहीं आवै तब सुखियापणां आय जाय, ताकरि मग्न रहै । इत्यादिक गारवभाव मस्ता-ईतैं किछु भले बुरेका विचार नहीं करै तब दर्शनभ्रष्टका भी विनय करिबा लगिजाय इत्यादि निमित्ततैं दर्शनभ्रष्टका विनय करै तौ यामैं ध्यात्वकी अनुमोदना आवै ताकूं भला जानैं तब आप भी ता समान ग्या तब ताकै बोधि काहेकी कहिये ? ऐसै जाननां ॥ १३ ॥

गाथा—दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि ।

णाणम्मिः करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होई ॥ १४ ॥

संस्कृत—द्विविधः अपि ग्रंथत्यागः त्रिषु अपि योगेषु संयमः तिष्ठति ।

ज्ञाने करणशुद्धे उद्भोजने दर्शनं भवति ॥ १४ ॥

अर्थ—जहां बाह्य आभ्यंतर भेदकरि दीय प्रकार परिग्रहका त्याग होय अर मन वचन काय ऐसैं तीनू योगनिविषैं संयम तिष्ठै बहुरि कृत कारित अनुमोदना ऐसैं तीन करण जामैं शुद्ध होय ऐसा ज्ञान होय बहुरि निर्दोष जामैं कृत कारित अनुमोदना आपका नहीं लागै ऐसा खडा पाणिपात्र आहार करै, ऐसैं मूर्तिमंत दर्शन होय है ॥

भावार्थ—इहां दर्शन नाम मतका है तहां बाह्य भेप शुद्ध दीखै सो दर्शन सो ही ताके अंतरंग भावकू जनावै, तहां बाह्य परिग्रह तौ धनधान्यादिक अर अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व कषायादिक सो जहां नहीं होय यथाजात दिगंबर मूर्ति होय, बहुरि इन्द्रिय मनका वश करनां त्रस थावर जीवनिकी दया करनी ऐसा संयम मन वचन काय करि शुद्ध पालनां जहां होय, अर ज्ञान विषैं विकार करनां करावनां अनुमोदनां ऐसैं तीन करणनिकरि विकार नहीं होय, अर निर्दोष पाणिपात्र खडा-रहि भोजन करनां, ऐसैं दर्शनकी मूर्ति है सो जिनदेवका मत है सो ही वंदने पूजने योग्य है, अन्य पाखंड भेप वंदने पूजने योग्य नाहीं हैं ॥ १४ ॥

आगै कहैं हैं जो इस सम्यग्दर्शनतैं ही कल्याण अकल्याणका निश्चय होय है;—

गाथा—सम्मत्तादो णाणं णाणादो सच्चभावउवलद्धी ।

उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ॥ १५ ॥

संस्कृत—सम्यक्त्वात् ज्ञानं ज्ञानात् सर्वभावोपलब्धिः ।

उपलब्धपदार्थे पुनः श्रेयोऽश्रेयो विजानाति॥१५॥

अर्थ—सम्यक्त्वतैं तौ ज्ञान सम्यक् होय है, बहुरि सम्यक् ज्ञानतैं सर्व पदार्थनिकी उपलब्धि कहिये प्राप्ति तथा जाननां होय है, बहुरि

पदार्थनिकी उपलब्धि होतैं श्रेय कहिये कल्याण अर अश्रेय कहिये अकल्याण इनि दोऊनिकूं जानिये हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना ज्ञानकूं मिथ्याज्ञान कहा है तातैं सम्यग्दर्शन भये ही सम्यग्ज्ञान होय है अर सम्यग्ज्ञानतैं जीव आदि पदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जानिये है, बहुरि जब पदार्थनिका यथार्थ स्वरूप जानिये तब भला बुरा मार्ग जानिये है । ऐसैं मार्गके जाननेमें भी सम्यग्दर्शनही प्रधान है ॥ १५ ॥

आगैं कल्याण अकल्याणकूं जाने कहा होय है, सो कहैं हैं;—

गाथा—सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि ।

सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ॥ १६ ॥

संस्कृत—श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्धृतदुःशीलः शीलवानपि ।

शीलफलेनाभ्युदयं ततः पुनः लभते निर्वाणम् १६

अर्थ—कल्याण अर अकल्याण मार्गका जाननेवाला पुरुष है सो 'उद्धुददुस्सील' कहिये उड़ाया है मिथ्यात्वस्वभाव जाने ऐसा होय है, बहुरि 'सीलवंतो वि' कहिये सम्यक् स्वभावयुक्त भी होय हैं, बहुरि तिस सम्यक् स्वभावका फलकरि अभ्युदय पावै है तीर्थकर आदि पद पावै है, बहुरि अभ्युदय भये पीछैं निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—भला बुरा मार्ग जानैं तब अनादि संसारतैं लगाय मिथ्याभावरूप प्रकृति है सो पलटि सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होय, तिस प्रकृतितैं विशिष्ट पुण्य बांधे तब अभ्युदयरूप पदवी तीर्थकर आदिकी पाय निर्वाण पावै है ॥ १६ ॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा सम्यक्त्व जिनवचनतैं पाइये है तातैं ते ही सर्व दुःखके हरण हारे हैं;—

गाथा—जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं ।

जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ १७ ॥

संस्कृत—जिनवचनमौषधमिदं विषयसुखविरेचनममृतभूतम् ।

जरामरणव्याधिहरणं क्षयकरणं सर्वदुःखानाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—यह जिनवचन है सो औषध है, सो कैसा औषध है विषय जो इंद्रियनिके विषय तिनतैं मान्या सुख ताका विरेचन कहिये दूर करन हारा है, बढ़ुरि कैसा है—अमृतभूत कहिये अमृतसारिखा है याहीतैं जरा मरण रूप रोग ताका हरन हारा है, बढ़ुरि सर्व दुःख-निका क्षय करन हारा है ॥

भावार्थ—या अमृतविषै प्राणी विषयसुख, सेवै है तिसतैं कर्म बंधैं हैं तिसतैं जन्म मरणरूप रोगानिकरि पीडित होय है, तहां जिनवचनरूप औषध ऐसा है जो विषयसुखतैं अरुचि उपजाय तिसका विरेचन करै है । जैसें गरिष्ठ आहारतैं मल बधै तब ज्वर आदि रोग उपजै तब ताके विरेचनकूं हरइ आदिक औषधि उपकारी होय तैसें है । सो विषयनितां वैराग्य होय तब कर्मबंध नहीं होय तब जन्म जरा मरण रोग नहीं होय तब संसारका दुःखका अभाव होय । ऐसें जिनवचनकूं अमृत सारिखे जानि अंगीकार करने ॥ १७ ॥

आगैं जिनवचनविषै दर्शनका लिंग जो भेष सो कै प्रकार कहा है, सो कहैं हैं;—

गाथा—एगं जिणस्स रूपं वीयं उक्किट्ठावयाणं तु ।

अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥ १८ ॥

संस्कृत—एक जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्टश्रावकाणां तु ।

अवरस्थितानां तृतीयं चतुर्थं पुनः लिंगदर्शनं नास्ति ॥

अर्थ—दर्शनविषै एक तौ जिनका स्वरूप है सो जैसा लिंग जिन-
देव धान्या सो लिंग है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावकनिका लिंग है,
बहुरि तीजा 'अवरद्विय' कहिये जघन्य पद विषै स्थित ऐसी आर्थिका-
निका लिंग है, बहुरि चौथा लिंग दर्शन विषै नाहीं है ॥

भावार्थ—जिनमत विषै तीन ही लिंग कहिये भेष कहैं हैं । एक
तौ यथाजातरूप जिनदेव धान्या सो है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावक
ग्यारमी प्रतिमा धारकका है, बहुरि तीजा स्त्री आर्थिका होय ताका
है, बहुरि चौथा अन्य प्रकारका भप जिनमतमें नाहीं है जे मानैं हैं ते
मूलसंधतैं बाह्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहैं हैं—ऐसा बाह्य लिंग होय ताकै अणों श्रद्धान ऐसा होय
है सो सम्यग्दृष्टी है;—

ज्ञान

गाथा—छह द्रव्य णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिदिट्ठा ।

सदहइ ताण रुवं सो साद्वट्ठी मुणेयव्वो ॥ १९ ॥

संस्कृत—षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्त

तत्त्वानि निर्दिष्टानि ।

श्रद्धधाति तेषां रूपं सः सदृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

अर्थ—छह द्रव्य नव पदार्थ पांच अस्तिकाय सप्त तत्व ये जिनव-
चनमें कहे हैं तिनिका स्वरूपकूं जो श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी
जाननां ॥ १९ ॥

भावार्थ—जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये तो छह द्रव्य
हैं, बहुरि जीव अजीव अश्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये
नव पदार्थ हैं, छह द्रव्य काल बिना पंचास्तिकाय हैं । पुण्य पाप बिना
नव पदार्थ सप्त तत्व हैं । इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा—जो जीवन तौ

चेतनास्वरूप है सो चेतना दर्शनज्ञानमयी है; पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण गुणमयी मूर्त्तीक है, याके परमाणु अर स्कंध ऐसैं दोय भेद हैं; बहुरि स्कंधके भेद शब्द बंध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इत्यादि अनेक प्रकार है; धर्मद्रव्य प्रधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य ये एक एक हैं अमूर्त्तीक हैं निष्क्रिय है, अर कालाणुअसंख्यात द्रव्य है । काल बिना पांच द्रव्यनिकै बहुप्रदेशीपणां है यातैं पांच अस्तिकाय हैं काल द्रव्य बहुप्रदेशी नाहीं तातैं अस्तिकाय नाहीं; इत्यादिक इनिका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जाननां । बहुरि एक तौ जीव पदार्थ है अर अजीव पदार्थ पांच हैं, बहुरि जीवकै कर्मबंध योग्य पुद्गल होय सो आश्रव है बहुरि कर्म बंधे सो बंध है, बहुरि आश्रव रूकै सो संवर है, कर्मबंध झड़ै सो निर्जरा है संपूर्ण कर्मका नाश होय सो मोक्ष है जीवनिक्कं सुखका निमित्त सो पुण्य है, बहुरि दुःखका निमित्त सो पाप है; ऐसैं सप्त तत्व नव पदार्थ हैं । इनिका आगमकै अनुसार स्वरूप जानि श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी होय है ॥ १९ ॥

आगैं व्यवहार निश्चय करि सम्यक्त्व दोय प्रकार करि कहैं हैं;—

गाथा—जीवादी सदृहणं सम्मत्त जिणवरोहिं पण्णत्तं ।

ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥ २० ॥

संस्कृत—जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम् ।

व्यवहारात् निश्चयतः आत्मैव भवति सम्यक्त्वम् ॥

अर्थ—जीव आदि कहे ज पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो तौ व्यवहार-
रतैं सम्यक्त्व जिनभगवाननैं कहा हैं, बहुरि निश्चयतैं अपनां आत्मा-
हीका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है ॥ २० ॥

भावार्थ—तत्त्वार्थका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व है, बहुरि अपना आत्मस्वरूपका अनुभव करि तिसकी श्रद्धा प्रतीति रुचि आचरण सो निश्चयतैं सम्यक्त्व है, सो यह सम्यक्त्व आत्मातैं जुदा वस्तु नाहीं है आत्माहीका परिणाम है सो आत्माही है । ऐसै सम्यक्त्व अर आत्मा एकही वस्तुहै यह निश्चयका आशय जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहैं हैं जो यह सम्यग्दर्शन है सो सर्व गुणनिभैं सार है ताहि धारण करो;—

गाथा—एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण ।

सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥ २१ ॥

संस्कृत—एवं जिनप्रणीतं दर्शनरत्नं धरत भावेन ।

सारं गुणरत्नत्रये सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देवनैं कहा दर्शन है सो गुण-निविषैं अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीन रत्ननिविषैं सार है उत्तम है, बहुरि मोक्षमंदिरके चढ़नेकूं प्रथम पैडी है, सो आचार्य कहैं हैं—हे भव्य जीव हो ! तुम याकूं अंतरंग भावकरि धारण करो, बाह्य क्रिया-दिक करि धारण किया तौ परमार्थ नाहीं अंतरंगकी रुचिकरि धारणां मोक्षका कारण है ॥ २१ ॥

आगैं कहैं हैं—जो श्रद्धान करै ताहीकै सम्यक्त्व होय है;—

गाथा—जं सकइ तं कीरइ जं च ण सकेइ तं च सदहणं ।

केवलजिणेहिं भणियं सदहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

संस्कृत—यत् शक्नोति तत् क्रियते यत् च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धानम् ।

केवलजिनैः भणितं श्रद्धानस्य सम्यक्त्वम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जो करनेकूं समर्थ हूजे सो तौ कीजिये बहुरि जो करनेकूं नहीं समर्थ हूजिये सो श्रद्धि ए जातैं केवली भगवाननैं श्रद्धान करनेवालेकैं सम्यक्त्व कहाहै ॥ २२ ॥

भावार्थ—इहां आशय ऐसा है जो कोऊ कहै सम्यक्त्व भये पीछैं तौ सर्व परद्रव्य संसारकूं हेय जानियेहैं सो जाकूं हेय जानैं ताकूं छोड़ै मुनि होय चारित्र आचरै तब सम्यक्त्व भया जानिये, ताका समाधानरूप यह गाथा है जो सर्व परद्रव्यकूं हेय जानि निज स्वरूपकूं उपादेय जान्यां श्रद्धान किया तब मिथ्याभावतौ मिथ्या परंतु चारित्रमोह-कर्मका उदय प्रबल होय जेतैं चारित्र अंगीकार करनेकी सामर्थ्य नहीं होय तेतैं जेती सामर्थ्य होय तेता तौ करै तिस सिवायका श्रद्धान-करै, ऐसैं श्रद्धान करनेवालाहीकैं भगवाननैं सम्यक्त्व कहा है ॥२२॥

आगैं कहैं हैं, जो ऐसैं दर्शन, ज्ञान चारित्र विषैं तिष्ठैं है ते वंदिवे योग्य हैं;—

गाथा—दंसणणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था ।

एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं ॥ २३ ॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये नित्यकालसुप्रसत्थाः ।

एते तु वन्दनीया ये गुणवादिनः गुणधराणाम् २३

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तप विनय इनिविषैं जे भले प्रकार तिष्ठैं है ते प्रशस्तहैं सराहने योग्य है अथवा भलै प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं, बहुरि गणधर आचार्य हैं तिनिके गुणानुवाद करनेवाले हैं ते वन्दने योग्य हैं । अन्य जे दर्शनादिक तैं भ्रष्ट हैं अर. गुणवाननितैं मत्सरभाव राखि विनयरूप नहीं प्रवर्तैं हैं ते वन्दिवेयोग्य नाहीहैं ॥२३॥

आगैं कहैं हैं जो याथाजात रूपकूं देखि मत्सरभाव करि बन्दना नहीं करैं हैं ते मिथ्या दृष्टी ही हैं;—

गाथा—सहजुप्पणं रूपं ददुं जो मण्णएण मच्छरिओ ।

सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइटी हवइ एसो ॥ २४ ॥

संस्कृत—सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरी ।

सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिः भवति एषः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो सहजोत्पन्न यथाजात रूपकूं देखि करि न मानै है तिसका विनय सत्कार प्रीति नाहीं करैहै अर मत्सरभाव करै है सो संयमप्रतिपन्न है दीक्षाग्रहण करी है तौऊ प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टीहै ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो यथाजातरूपकूं देखि मत्सरभावकरि ताका विनय नहीं करै तौ जानिये याकै इस रूपकी श्रद्धा रुचि नाहीं ऐसैं श्रद्धा रुचि बिना तौ मिथ्यादृष्टीही होय । इहां आशय ऐसा जो श्वेतांबरादिक भये ते दिगम्बररूपतैं मत्सरभाव राखैं अर तिसका विनय नहीं करैं तिनिका निषेध है ॥ २४ ॥

आगैं याहीकूं दृढ़ करैं हैं;—

गाथा—अमराण वंदियाणं रूपं ददूण शीलसहियाणं ।

जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥ २५ ॥

संस्कृत—अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानाम् ।

ये गौरवं कुर्वन्ति च सम्यक्त्वविवर्जिताः भवन्ति ॥

अर्थ—शीलकरि सहित देवनिकरि वंदनेयोग्य जो जिनेश्वर देवका यथाजात रूपकूं देखिकरि गौरव करैं हैं विनयादिक नहीं करैं हैं ते सम्यक्त्वकरि वर्जित हैं ॥

भावार्थ—जा रूपकं आणिमादिक ऋद्धिनिके धारी देवभी पगां पड़ैं ताकूं देखि मत्सरभावकरि नहीं बंदैं हैं तिनिकै सम्यक्त्व काहेका ? ते सम्यक्त्वतैं रहितही हैं ॥ २५ ॥

आगैं कहैं हैं जो असंयमी बंदवे योग्य नाहीं हैं;—

गाथा—अस्संजदं ण वंदे वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज ।

दोणिण वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि २६

छाया—असंयतं न वन्देत वस्त्रविहीनोऽपि स न वन्द्येत ।

द्वौ अपि भवतः समानौ एकः अपि न संयतः

भवति ॥ २६ ॥

अर्थ—असंयमीकूं नाहीं बंदिये बहुरि भावसंयम नहीं होय अर बाह्य वस्त्ररहित होय सो भी बंदिये योग्य नाहीं जातैं ये दोऊ ही संयमरहित समान हैं, इनिमें एकभी संयमी नाहीं ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ भेष धान्या है सो तौ असंयमी है ही, बहुरि जो बाह्य नग्नरूप धारण किया अर अंतरंग भावसंयम नाहीं हैं तौ वह भी असंयमीही है, तातैं ये दोऊही असंयमी है, तातैं दोऊ ही बंदवे योग्य नाहीं । इहां आशय ऐसा है जो ऐसै मति जानियो—जो आचार्य यथाजातरूपकूं दर्शन कहते आर्थ हैं सो केवल नग्नरूपही यथाजातरूप होगा, जातैं आचार्य तौ बाह्य अभ्यंतर सर्थ परिग्रहसूं रहित होय ताकूं यथाजातरूप कहैं हैं । अभ्यंतर भावसंयम बिना बाह्य नग्न भये तौ कित्ठ संयमी होयहैं नाहीं ऐसैं जानानां । इहां कोई पूछै—बाह्य भेष शुद्ध होय आचार निर्दोष पालताकैं अभ्यंतर भावमें कपट होय ताका निश्चय कैसें होय, तथा सूक्ष्म भाव केवलीगम्यहैं, भिध्यात्व होय ताका निश्चय कैसें होय, निश्चयबिना बंदनेकी कहा रीति ? ताका समाधान

ऐसा जो कपटका जैतै निश्चय नहीं होय तेतैं आचार शुद्ध देखि वंदै तामैं दोष नांही, अर कपटका कोई कारणतैं निश्चय होजाय तब नहों वंदै, बहुरि केवलीगम्य मिथ्यात्वकी व्यवहारमें चर्चा नांही छद्मस्थके ज्ञान गम्यकी चर्चा है । जो अपने ज्ञानका विषयही नांही ताका वाय निर्वोध करनेका व्यवहार नांही सर्वज्ञ भगवानकी भी यह ही आज्ञाहै, व्यवहारी जीवकूं व्यवहारकाही शरणहै ॥ २६ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करता संता कहैं हैं;—

गाथा—णवि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य

जाइसंजुत्तो ।

को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥२७॥

संस्कृत—नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापि च जातिसंयुक्तः ।

कः वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति २७

अर्थ—देहकूं भी नांही वंदियेहै बहुरि कुलकूं भी नांही वंदियेहै बहु-
रि जातियुक्तकूं भी नांही वंदियेहै जातैं गुणरहित होय ताकूं कौन वंदे
गुण विना प्रकट मुनि नहीं श्रावक भी नाहीं है ॥

भावार्थ—लोकमें भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन होय ताकूं कोऊ
श्रेष्ठ मानैं नांही, देह रूपवान होय तौ कहा, कुल बड़ा होय तौ कहा,
जाति बड़ी होय तौ कहा, जातैं मोक्षमार्गमें तौ दर्शन ज्ञान चारित्र गुण
हैं इनिविनां जाति कुल रूप आदिक वंदनीक नांही हैं, इनि तैं मुनि-
श्रावकपणां आवै नांही, मुनिश्रावकपणां तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र
तैं होय है, तातैं इनिके धारक हैं तेही वंदिये योग्य हैं जाति कुल
आदि वंदिये योग्य नांही हैं ॥ २७ ॥

आगैं कहैं हैं जे तप आदिकरि संयुक्त हैं नितिकूं वंदूं हूं;

१ 'कं वन्देगुणहीनं' षट्पाहुडमें ऐसी है ।

गाथा—वंदमि त्वसावण्णा सीलं च गुणं च वंभचेरं च ।

सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण ॥ २४ ॥

संस्कृत—वन्दे तपःश्रमणान् शीलं च गुणं च ब्रह्मचर्यं च ।

सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन शुद्धभावेन ॥ २७ ॥

अर्थ—आचार्य कहैं हैं जो—जे तपकरि सहित श्रमणपणां धारैं हैं तिनिक्कू तथा तिनिक्के शीलक्कू बहुरि तिनिक्के गुणक्कू बहुरि ब्रह्मचर्यक्कू मै सम्यक्त्वसहित शुद्धभावकरि वंदूंहुं जातैं तिनिक्के तिनि गुणनिकरि सम्यक्त्वसहित शुद्धभावकरि सिद्धि कहिये मोक्ष ता प्रति गमन होय है ॥

भावार्थ—पहलैं कहा जौ—देहादिक वंदिवे योग्य नांही, गुण वंदिवे योग्य हैं । अब इहां गुणसहितक्कू वंदना करी है तहां जे तप धारि गृहस्थपणां छोड़ि मुनि भये हैं तिनिक्कू तथा तिनिक्के शीलगुण ब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभावकरि संयुक्त होय तिनिक्कू वंदना करी है । तहां शीलशब्दकरि तौ उत्तरगुण लेना, बहुरि गुणशब्दकरि मूलगुण लेनें, बहुरि ब्रह्मचर्य शब्दकरि आत्मस्वरूपविषै लीनपणां लेनां ॥ २८ ॥

आगैं कोई आशंका करै जो संयमी वंदनें योग्य कहा तौ सम-वसरणादि विभूति सहित तीर्थकरहैं ते वंदिवे योग्य हैं कि नांही ताका समाधानक्कू गाथा कहैं हैं—जो तीर्थकर परमदेव हैं ते सम्यक्त्वसहित तपके माहात्म्यकरि तीर्थकर पदवी पावैंहैं सोभी वंदिवे योग्य हैं;

गाथा—चउसट्ठिचमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो ।

अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ॥ २९ ॥

१ 'तवसमण्णा, छाया—(तपःसमापन्नात्) 'तवसउण्णा' 'तवसमाणं' येतीन पाठ मुद्रित षट्प्राकृतकी पुस्तक तथा उसकी टिप्पणीमें हैं । २ 'सम्मत्तेणव' ऐसा पाठ होनेसे पादभंग नहीं होता ।

संस्कृत—चतुःषष्टिचमरसहितः चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयैः संयुक्तः ।
अनुवरतबहुसत्त्वहितः कर्मक्षयकारणनिमित्तः ॥२९॥

अर्थ—जो चौसठि चमरनिकरि सहित हैं, बहुरि चौतीस अति-
शयनिकरि सहित हैं, बहुरि निरन्तर बहुत प्राणीनिका हित जाकरि
होय है, ऐसे उपदेशके दाताहैं बहुरि कर्मका क्षयका कारण हैं ऐसे
तीर्थकर परमदेव हैं ते बंदिवे योग्य हैं ॥

भावार्थ—इहां चौसठि चमर चौतीस अतिशय सहित विशेषणनि-
कारि तो तीर्थकरका प्रभुत्व जनाया है, अर प्राणीनिका हित करनां अर
कर्मका क्षयका कारण विशेषणतैं परका उपकारकरनहारापणां जनाया
है, इनि दोऊही कारणनितैं जगत में बंदवे पूजवे योग्य हैं । यातैं
ऐसा भ्रम नहीं करनां जो तीर्थकर कैसे पूज्य हैं, ये तीर्थकर सर्वज्ञ
वीतराग हैं । तिनिकैं समवसरणादिक विभूति रचि इन्द्रादिक भक्तजन
महिमा करै हैं । इनिकैं कछु प्रयोजन जांही है आप दिगंबरताकूं धरें
अंतराख तिष्ठै हैं, ऐसा जाननां ॥ २९ ॥

आगैं मोक्ष काहे तैं होय है सो कहैं हैं;—

गाथा—णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण ।

चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३०॥

संस्कृतः—ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्र्येण संयमगुणेन ।

चतुर्णामपि समायोगे मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥३०॥

अर्थ—ज्ञान करि दर्शनकरि तपकरि अर चारित्रकरि इनि च्यारनिका
समायोग होतैं जो संयमगुण होय ताकरि जिनशासनविषैं मोक्ष होनां
कहा है ॥ ३० ॥

१ 'अनुचरबहुसत्त्वहितो' (अनुचरबहुसत्त्वहितः) मुद्रित षट्प्राश्रुतमें यह
पाठ है । २ 'निमित्ते' मुद्रित षट्प्राश्रुतमें ऐसा पाठ है

आगैं इनि ज्ञान आदिकै उत्तरोत्तर सारपणां कहैं हैं;—

गाथा—णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं ।

सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥ ३१ ॥

संस्कृत—ज्ञानं नरस्य सारः सारः अपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम्

सम्यक्त्वात् चरणं चरणात् भवति निर्वाणम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—प्रथम तौ या पुरुष कै ज्ञान सार है जातैं ज्ञानतैं सर्व हेय उपादेय जानें जाय हैं, बहुरि या पुरुषकैं सम्यक्त्व निश्चय करि सार है जातैं सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पावै है, सम्यक्त्वतैं चारित्र होय है जातैं सम्यक्त्व बिना चारित्र भी मिथ्याही है, बहुरि चारित्र तैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—चारित्र तैं निर्वाण होय है अर चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होय है अर ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होय है ऐसैं विचार किये सम्यक्त्व कै सारपणां आया । यातैं पहलैं तौ सम्यक्त्व सारहै पीछैं ज्ञान चारित्र सार हैं । पहलैं ज्ञान तैं पदार्थानिक्कू जानिये हैं यातैं पहलैं ज्ञान सार है तौऊ सम्यक्त्व बिना ताकाभी सारपणां नांही, ऐसा जाननां ॥ ३२ ॥

आगैं इसही अर्थकू दृढ़ करैं हैं; —

गाथा—णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिण्ण ।

चोण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो ॥ ३२ ॥

संस्कृत—ज्ञाने दर्शनेच तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।

चतुर्णामपि समायोगे सिद्धा जीवा न सन्देहः ॥ ३१ ॥

अर्थ—ज्ञान होतैं दर्शन होतैं सम्यक्त्वसहित तपकरि चारित्र करि इनि ध्यारनिका समायोग होतैं जीव सिद्ध भये हैं, यामैं संदेह नांही है ॥

भावार्थ—पूर्व जे सिद्ध भये हैं ते सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिके संयोगहीतैं भये हैं यह जिनवचन है, यामैं संदेह नांही ॥ ३२ ॥

आगैं कहैं हैं जो लोक विषैं सम्यग्दर्शनरूप रत्न अमोलक है जो देव दानवनिकरि पूज्य है;—

गाथा—कल्याणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं ।

सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए ॥ ३३ ॥

संस्कृत—कल्याणपरंपरया लभंते जीवाः विशुद्धसम्यक्त्वम् ।

सम्यग्दर्शनरत्नं अर्घ्यते सुरासुरे लोके ॥ ३३ ॥

अर्थ—जीव हैं ते विशुद्ध सम्यक्त्व है ताहि कल्याणकी परंपरा सहित पावैं हैं तातैं सम्यग्दर्शन रत्न है सो इस सुर असुरनि करि भन्या लोकविषैं पूज्य है ॥

भावार्थ—विशुद्ध कहिये पच्चीस मूलदोषनिकरि रहित निरतिचार सम्यक्त्वतैं कल्याणकी परंपरा कहिये तीर्थकर पदवी पावै है सो यातैं यह सम्यक्त्व रत्न सर्व लोक देव दानव मनुष्यनिकरि पूज्य होय है । तीर्थकर प्रकृतिके बंधके कारण सोलह कारण भावना कही हैं तिनमैं पहलै दर्शनविशुद्धि है सो ही प्रधान है, ये ही विनयादिक पंदरह भावनानिका कारण है, यातैं सम्यग्दर्शनकै ही प्रधानपणां है ॥ ३३ ॥

आगैं कहैं हैं जो उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणांकू पाय सम्यक्त्व पाय मोक्ष पावै है यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है;—

गाथा—लद्धूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गुत्तेण ।

लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसुक्खं च मोक्खं च ॥ ३४ ॥

१ 'दद्रूण' मुद्रित प्रतिमें ऐसा पाठ है ।

२ 'अक्खयसोक्खं लहदि मोक्खं च' मुद्रितप्रतिकी टिगण्णोमें ऐसा पाठ भी है ।

संस्कृत—लब्ध्वा च मनुजत्वं सहितं तथा उत्तमेन गोत्रेण ।
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अक्षयमुखं च मोक्षं च ॥३४॥

अर्थ—उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणां प्रत्यक्ष पाय करि अर तहां सम्यक्त्व पाय करि अविनाशी मुखरूप केवलज्ञान पावै हैं, बहुरि तिस मुखसहित मोक्ष पावै हैं ॥

भावार्थ—यह सर्व सम्यक्त्वका माहात्म्य है ॥ ३४ ॥

आगै प्रश्न उपजै हैं जो सम्यक्त्वके प्रभावतैं मोक्ष पावै हैं सो तत्काल ही पावै हैं कि किछु अवस्थान भी रहै हैं ? ताके समाधानरूप गाथा कहै हैं;—

गाथा—विहरदि जाव जिणिंदो सहस्रसुलक्षणोहिं संजुत्तो ।
चउतीसअइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया ॥३५॥

संस्कृत—विहरति यावत् जिनेन्द्रः सहस्राष्टसुलक्षणैः संयुक्तः ।
चतुस्त्रिंशदतिशययुतः सा प्रतिमा स्थावरा भणिता ॥३५॥

अर्थ— केवलज्ञान भये पीछै जिनेन्द्र भगवान जेतै इस लोकमें आर्यखंडमें विहार करै तैतैं तिनिकी सो प्रतिमा कहिये शरीर सहित प्रतिबिंब तिसकूं 'थावर प्रतिमा' ऐसा नाम कहिये । सो कैतै हैं जिनेन्द्र एकहजार आठ लक्षणानि करि संयुक्त है । तहां श्रीवृक्ष कूं आदि लेख एकसौ आठतौ लक्षण होयहैं । बहुरि तिळ मुसकूं आदिलेख नवसे व्यंजन होयहैं । बहुरि चौतीस अतिशयमें दश तौ जन्मतैं ही लिये उपजैहैं;—निस्वेदता १ निर्मलता २ श्वेतरुधिरता ३ समचतुरस्र सस्थान ४ वज्रवृषभ नाराच संहनन ५ मुरूपता ६ सुगंधता ७ सुलक्षणता ८ अतुलवीर्य ९ हितमित वचन १० ऐसैं दश । बहुरि घातिया कर्म क्षय भये दश होय ;— शतयोजन मुभिक्षता १ आकाशगमन २ प्राणि-

वधको अभाव ३ कवलाहारको अभाव ४ उपसर्गको अभाव ५ चतु-
 मुखपणों ६ सर्वविद्याप्रभुत्व ७ छाया रहितत्व ८ लोचननिस्पंदनरहितत्व
 ९ केश नखवृद्धिरहितत्व १० ऐसैं दश । बहुरि देवनिकरि भये चौदह;—
सकलार्द्धमागधी भाषा १ सर्वजीव मैत्रीभाव २ सर्वऋतुफलपुष्पप्रादुर्भाव
 ३ आदर्शसदृश पृथ्वी होय ४ मंद सुगंध पवन चलै ५ सर्व लोकमें
 आनंद वरतैं ६ भूमिकंटकादिरहित होय ७ देव गंधोदक वृष्टि करै ८
 विहार होय तब पदकमल तलैं देव सुवर्णमयी कमल रचै ९ भूमि
 धान्यनिष्पत्तिसहित होय १० दिशा आकाश निर्मल होय ११ देवनिका
 आह्वानन शब्द होय १२ धर्म चक्र आगैं चलै १३ अष्ट मंगल द्रव्य
 होय १४ ऐसैं चौदह । सर्व मिलि चौतीस भये । बहुरि अष्ट प्रातिहार्य
 होय, तिनिके नाम;—अशोकवृक्ष १ पुष्पवृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर
 ४ सिंहासन ५ छत्र ६ भामंडल ७ हुंदुभिवादित्र ८ ऐसैं आठ । ऐसैं
 अतिशयनिसहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतमुख अनंतवीर्य सहित
 तीर्थंकर परमदेव जेतैं जीवनिके संबोधन निमित्त विहार करते विराजैं
 तेतैं स्थावर प्रतिमा कहिये । ऐसैं स्थावर प्रतिमा कहनेतैं तीर्थंकरकै
 केवलज्ञान भये पीछैं अवस्थान जनाया है । अर धातु पापाणकी प्रतिमा
 रचि स्थापिये है सो याका व्यवहार है ॥ ३५ ॥

आगैं कर्म नाश करि मोक्ष प्राप्त होय हैं ऐसैं कहैं हैं;—

गाथा—वारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊण विहिवलेण स्सं ।

वोसट्ठचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता ॥ ३६ ॥

संस्कृत—द्वादशविधतपोयुक्ताः कर्म क्षपयित्वा विधिवलेण

स्वीयम् ।

व्युत्सर्गत्यक्तदेहा निर्वाणमनुत्तरं प्राप्ताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जे बारह प्रकार तप करि संयुक्त भये संते विधिके बल करि अपने कर्मकूं क्षिपाय करि 'वोसइच्चतदेहा' कहिये न्यारा करि छोड्या है देह ज्यां ऐसे भये ते अनुत्तर कहिये जातैं परै अन्य अवस्था नांही ऐसी निर्वाण अवस्थाकूं प्राप्त होय हैं ।

भावार्थ—जे तपकरि केवलज्ञान उपाय जेतैं विहार करैं तेतैं अवस्थान रहैं पीछैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी सामग्रीरूप विधिके बलकरि कर्म क्षिपाय व्युत्सर्गकरि देहकूं छोड़ि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं । इहां आशय ऐसा जो निर्वाणकूं प्राप्त होय तब लोककैं शिखर जाय तिष्ठै है तहां गमनविषैं एक समय लागैं तिस काल जंगम प्रतिमा कहिये । ऐसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि मोक्षकी प्राप्ति होय है तहां सम्यग्दर्शन प्रधान है । इस पाहुडमें सम्यग्दर्शनका प्रधानपणांका व्याख्यान किया ॥ ३६ ॥

सवैथा छंद ।

मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा ।
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध फलै सुचरित्रा ॥
जे नर आगम जानि करै पहचानि यथावत मित्रा ।
घाति क्षिपाय रु केवल पाय अघाति हने लहि मोक्ष पवित्रा ॥१॥

दोहा ।

नमं देव गुरु धर्मकूं जिन् आगमकूं मानि ।
जा प्रसाद पायो अमल सम्यग्दर्शन जानि ॥ २ ॥
इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित अष्टप्राभृतमें प्रथम दर्शनप्राभृत
और तिसकी जयचन्द्र छावड़ाकृतदेशभाषामयवचनिका
समाप्त ॥ १ ॥

श्रीः
अथ सूत्रपाहुड ।

—... —

(२)

(दोहा)

वीर जिनेश्वरकुं नमं गौतम गणधर लार ।

काल पंचमा आदिमैं भए सूत्रकरतार ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकरि श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा बंध सूत्रपाहुड है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिए है;—

तहां प्रथमही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्रकी महिमागर्भित सूत्रका स्वरूप जनावैं हैं;—

गाथा—अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।

सुत्तत्थमगाणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥ १ ॥

संस्कृत—अर्हद्भाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक् ।

सूत्रार्थमार्गणार्थं श्रमणाः साधयन्ति परमार्थम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो गणधर देवनिनैं सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूंथ्या रच्या जो सूत्र है, सो कैसाक है सूत्र—सूत्रका जो किछु अर्थ है ताका मार्गण कहिये हेरनां जाननां सो है प्रयोजन जामैं, ऐसे सूत्र करि श्रमण कहिये मुनि हैं ते परमार्थ कहिये उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें दूसरा चारित्रपाहुड है ।

अविनाशी मोक्ष ताहि साधै है । इहां गाथामें सूत्र ऐसा विशेष्य पदन कछा तौऊ विशेषणनिकी सामर्थ्यतैं लिया है ।

भावार्थ—जो अरहंत सर्वज्ञ करि भाषित है अर गणधर देवनिकरि अक्षर पद वाक्यमयी गूंथ्या है अर सूत्रके अर्थका जाननेकाही है अर्थ प्रयोजन जामें ऐसा सूत्र करि मुनि परमार्थ जो मोक्ष ताहि साधै है । अन्य जे अक्षपाद जैमिनि कपिल सुगत आदि छद्मस्थनिकरि रचे कल्पित सूत्र हैं तिनिकरि परमार्थकी सिद्धि नांही है, ऐसा आशय जाननां ॥१॥

आगैं कहै है जो ऐसा सूत्रका अर्थ आचार्यनिकी परंपरा करि वतैं तिसकूं जानि मोक्षमार्गकूं साधै है सो भव्य है;—

गाथा—सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपरेण मग्गेण ।

णाऊण दुविह सुत्तं वट्ठइ सिवमग्ग जो भव्वो ॥ २ ॥

संस्कृत—सूत्रे यत् सुदृष्टं आचार्यपरंपरेण मार्गेण ।

ज्ञात्वा द्विविधं सूत्रं वर्त्तते शिवमार्गे यः भव्यः ॥२॥

अर्थ—जो सर्वज्ञभाषित सूत्रविषै जो किछू भलै प्रकार कछा है ताकूं आचार्यनिकी परंपरारूप मार्ग करि दोय प्रकार सूत्रकूं शब्द थकी अर्थ थकी जानि अर मोक्षमार्गविषै प्रवर्तैं है सो भव्यजीव है मोक्ष पावनें योग्य है ।

भावार्थ—इहां कोई कहै—अरहंतका भाष्या अर गणधर देवनिका गूंथ्या सूत्र तौ द्वादशांगरूप हैं ते तौ अवार कालमें दीखैं नांही तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसैं सधै, ताका समाधानकूं यह गाथा है—जो अरहंतभाषित गणधर गूंथित सूत्रमें जो उपदेश है तिसकूं आचार्यनिकी परंपराकरि जानिये है, तिसकूं शब्द अर्थ करि जानि जो मोक्षमार्ग

साधै है सो मोक्ष होने योग्य भव्य है । इहां फेरि कोऊ पूछै—जो आचार्यनिकी परंपरा कहा ? तहां अन्य ग्रंथनिमें आचार्यनिकी परंपरा कही है, सो ऐसैं है;—

श्रीवर्द्धमान तीर्थकर सर्वज्ञ देव पीछैं तीन तौ केवलज्ञानी भये; गौतम १ सुधर्म २ जंबू ३ । बहुरि तापीछैं पांच श्रुतकेवली भये तिनिकूं द्वादशांग सूत्रका ज्ञान भया,—विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्द्धन ४ भद्रबाहु ५ । तनिपीछैं दश पूर्वनिके पाठी ग्यारह भये; विशाख १ प्रौष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिल ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११ । तनि पीछैं पांच ग्यारह अंगनिके धारक भये; नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंस ५ । बहुरि तनि पीछैं एक अंगके धारक च्यार भये; सुभद्र १ यशोभद्र २ भद्रबाहु ३ लोहाचार्य ४ । इनि पीछैं एक अंगके पूर्ण ज्ञानीकी तौ व्युच्छिति भई अर अंगाना एकदेश अर्थके ज्ञानी आचार्य भये तनिमें केतेकानिके नाम;—अर्हद्वलि, माघनंदि, धरसेन, पुष्प त, भूतबलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेभिचन्द्र इत्यादि । बहुरि तनि पीछैं तिनिकी परिपाटीमें आचार्य भये तिनितैं अर्थका व्युच्छेद नहीं भया, ऐसैं दिगंबरनिके संप्रदायमें प्ररूपणा यथार्थ है । बहुरि अन्य श्वेताम्बरादिक वर्द्धमानस्वामीतैं परंपरा मिलावै हें सो कल्पित है जातैं भद्रबाहु स्वामी पीछैं कई मुनिकालमें भ्रष्ट भये ते अर्द्धफालक कहाये तिनिकी संप्रदायमें श्वेताम्बर भये, तनिमें देवगणनामा साधु तिनिकी संप्रदायम भया है तानैं सूत्र रचे हें सो तनिमें शिथिलाचार पोषनेकूं कल्पित कथा तथा कल्पित आचरणकी कथनी करी है सो प्रमाणभूत नाहीं है । पंचमकालमें जैनाभासनिकै शिथिलाचारकी बाहुल्यता है सो

युक्त है इस कालमें सांचा मोक्षमार्गकी विरलता है तातैं शिथिलाचारी-
निकै सांचा मोक्षमार्ग कहां तै होय ऐसा जाननां ।

अब इहां कछुक द्वादशांगसूत्र तथा अंगवाह्यश्रुतका वर्णन
लिखिये है;—तहां तीर्थकरके मुखतैं उपजी जो सर्व भाषामय दिव्य-
ध्वनि तांकूं सुनिकरि च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक गणघर देवनिनैं
अक्षर पदमय सूत्ररचना करी । तहां सूत्रदोय प्रकारहै;—एक अंग
दूसरा अंगवाह्य । तिनके अपुनरुक्त अक्षरनिकी संख्या बीस अंकनि प्रमाण
है ते अंक एक घाटि इकठ्ठी प्रमाण हैं । ते अंक—१८४४६७४४०७३-
७०९५५१६१५ एते अक्षर हैं । तिनिके पद करिये तब एक मध्य-
पदके अक्षर सौलासैं चौतीस कोडि तियासीलाख सात हजार आठसैं
अठ्यासी कहेहैं तिनिका भाग दिये एकसौ बारह कोडि तियासीलाख
अठावन हजार पांच इतनैं पावैं येते पदहैं ते तौ बारह अंगरूप सूत्रके
पदहैं । अर अवशेष बीस अंकांनिमें अक्षर रहे ते अंगवाह्य सूत्र कहिये,
ते आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तर अक्षर हैं तनि
अक्षरनिनैं एकौदह प्रकीर्णकरूप सूत्ररचना है ।

अब सूत्र द्वादशांगरूप सूत्ररचनाके नाम अर पद संख्या लिखिए
है;—तहां प्रथम अंग आचारांग है तामैं मुनीश्वरनिके आचारका निरू-
पण है ताके पद अठारह हजार हैं । बहुरि दूसरा सूत्रकृत अंग है
ताविणैं ज्ञानका विनय आदिक अथवा धर्मक्रियामैं स्वमत परमतकी
क्रियाका विशेषका निरूपण है याँके पद छत्तीस हजार हैं । बहुरि
तीसरा स्थान अंग है ताविणैं पदार्थनिका एक आदि स्थाननिका निरू-
पण है जैसे जीव सामान्य करि एकप्रकार विशेषकरि दोय प्रकार तीन
प्रकार इत्यादि ऐसैं स्थान कहे हैं याके पद त्रियालीस हजार हैं । बहुरि
चौथा सममाय अंग है ताविणैं जीवादिक छह द्रव्यनिका द्रव्य क्षेत्र

कालादि करि वर्णन है याके पद एक लाख चौसठि हजार हैं । पांचमां व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है याविषै जीवके अस्ति नास्ति आदिक साठि हजार प्रश्न गणाधरदेव तीर्थकरकै निकट किये तिनिका वर्णन है याके पद दोय लाख अठाईस हजार हैं । बहुरि छठा ज्ञातृधर्मकथा नामा अंग है यामैं तीर्थकरनिके धर्मकी कथा जीवादिक पदार्थनिका स्वभावका वर्णन तथा गणधरके प्रश्ननिका उत्तरका वर्णन है याके पद पांच लाख छप्पन हजार हैं । बहुरि सातवां उपासकाध्ययननाम अंग है याविषै ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकका आचारका वर्णन है याके पद ग्यारह लाख सत्तर हजार हैं । बहुरि आठमां अंत-कृतदशांगनामा अंग है याविषै एक एक तीर्थकरकै वारैं दशदश अंतकृत केवली भये तिनिका वर्णन है याके पद तेईस लाख अठाईस हजार हैं । बहुरि नवमां अनुत्तरोपपादकनामा अंग है याविषै एक एक तीर्थकरकै वारैं दशदश महाशुनि घोर उपसर्ग सहि अनुत्तर विमाननिमैं उपजे तिनिका वर्णन है याके पद बाणवै लाख चवालीस हजार हैं । बहुरि दशमां प्रश्न व्याकरणनाम अंग है निरूप अतीत अनागत कालसंबंधी शुभाशुभका प्रश्न कोई करै ताकर नैबहुरि 'यथार्थ' कहनेका उपायका वर्णन है तथा आक्षेपणी विक्षेपणी संवेदनी निर्वेदनी इनि च्यार कथानिका भी या अंगमैं वर्णन है याके पद तिराणवैं लाख सोलह हजार हैं । बहुरि ग्यारमां विपाकसूत्र नामा अंग है याविषै कर्मका उदयका तीव्र मंद अनुभागका द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा लिये वर्णन है याके पद एक कोडि चौरासी लाख हैं । ऐसैं ग्यारह अंग हैं तिनिके पदनिकी संख्याका जोड़ दिये च्यार कोडि पंदरह लाख दोय हजार पद होय हैं । बहुरि बारमां दृष्टिवादनामा अंग है ताविषै मिथ्यादर्शनसंबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद है तिनिका वर्णन है

याके पद एक सौ आठ कोडि अड़सठि लाख छप्पनहजार पांच पद हैं । या बारमां अंगका पांच अधिकार हैं;—परिकर्म १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ चूलिका ५ ऐसैं । तहां परिकर्मविषै गणितके करण सूत्र हैं ताके पांच भेद हैं;—तहां चन्द्रप्रज्ञति प्रथम है तामैं चन्द्रमाका गमनादिक परिवार वृद्धि हानि ग्रह आदिका वर्णन है याके पद छत्तीस लाख पांच हजार हैं । बहुरि दूजा सूर्यप्रज्ञति है यामैं सूर्यकी ऋद्धि परिवार गमन आदिका वर्णन है याके पद पांच लाख तीन हजार हैं । बहुरि तीजा जंबूद्वीपप्रज्ञति है यामैं जंबूद्वीपसंबंधी मेरु गिरि क्षेत्र कुलाचल आदिका वर्णन है याकैं पद तीन लाख पचीस हजार है । बहुरि चौथा द्वीपसागरप्रज्ञति है यामैं द्वीपसागरका स्वरूप तथा तहां तिष्ठै ज्योतिषी व्यंतर भवनवासी देवनिके आवास तथा तहां तिष्ठै जिनमंदिरनिका वर्णन है याके पद बावन लाख छत्तीस हजार हैं । बहुरि पांचमां व्याख्याप्रज्ञति है याविषै जीव अजीव पदार्थनिका प्रमाणका वर्णन है याके पद चौरासी लाख छत्तीस हजार हैं । ऐसैं परिकर्मके पांच भेदानिके पद जोड़े एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार हैं । बहुरि बारमां अंगका दूजा भेद सूत्र नाम है ताविषै मिथ्यादर्शनसंबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिकी पूर्वपक्ष लेकर तिनिका जीव पदार्थपरि लगावनां आदि वर्णन है याके भेद अठ्यासी लाख हैं । बहुरि बारमां अंगका तीजा भेद प्रथमानुयोग है या विषै प्रथम जीवकूं उपदेशयोग्य तीर्थकर आदि तरेसठि शलाका पुरुषनिका वर्णन है याके पद पांच हजार हैं । बहुरि बारमां अंगका चौथा भेद पूर्वगत है, ताके चौदह भेद हैं तहां प्रथम उत्पाद नामा है ताविषै जीव आदि वस्तुनिकै उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्मनिकी अपेक्षा भेद वर्णन है याके पद एक कोडि हैं । बहुरि दूजा अप्रायणीनाम पूर्व है याविषै सातसै सुनय दुर्नयका अर षट्द्रव्य

सप्त तत्त्व नव पदार्थनिका वर्णन है याके छिनवै लाख पद हैं । बहुरि तीजा वीर्यानुवादानाम पूर्व है याविषै षट् द्रव्यनिकी शक्तिरूप वीर्यका वर्णन है याके पद सत्तरि लाख हैं । बहुरि चौथा अस्तिनास्ति प्रवादनामा पूर्व है या विषै जीव!दिक वस्तुका स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्ति पररूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा नास्ति आदि अनेक धर्मनिविषै विधि निषेध करि सप्तभंगकरि कथंचित् विरोध भेटनें रूप मुख्य गौण करि वर्णन है याके पद साठि लाख हैं । बहुरि ज्ञानप्रवादनामा पांचमां पूर्व है यामैं ज्ञानके भेदनिका स्वरूप संख्या विषय फल आदिका वर्णन है याके पद एक घाटि कोडि हैं । बहुरि छठा सत्यप्रवादनामा पूर्व है या विषै सत्य असत्य आदिक वचननिकी अनेक प्रकार प्रवृत्ति है ताका वर्णन है याके पद एक कोडि छह हैं । बहुरि सातमां आत्मप्रवादनामा पूर्व है याविषै आत्मा जो जीव पदार्थ है ताका कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मनिका निश्चय व्यवहार नय अपेक्षा वर्णन है याके पद छव्वीस कोडि हैं । बहुरि कर्मप्रवाद नामा आठमां पूर्व है याविषै ज्ञानावरण आदि आठ कर्मनिका बंध सत्त्व उदय उदीरणपणा आदिका तथा क्रियारूप कर्मनिका वर्णन है याके पद एक कोडि अस्सी लाख हैं । बहुरि प्रत्याख्याननामा नवमां पूर्व है यामैं पापके त्यागका अनेक प्रकार करि वर्णन है याके पद चौरासी लाख हैं । बहुरि दशमां विद्यानुवादानामा पूर्व है यामैं सातसै क्षुद्रविद्या अर पांचसै महाविद्या इनिका स्वरूप साधन मंत्रादिक अर सिद्ध भये इनिका फलका वर्णन है तथा अष्टांग निमित्त ज्ञानका वर्णन है याके पद एक कोडि दश लाख हैं बहुरि कल्याणवादानामा ग्यारवां पूर्व है यामैं तीर्थकर चक्रवर्त्ती आदिके गर्भ आदिकल्याणका उत्सव तथा तिसके कारण षोडश भावनादिके तपश्चरणादिक तथा चन्द्रमा सूर्या-

दिकके गमनविशेष आदिकका वर्णन है याके पद छबीस कोडि हैं बहुरि प्राणवादनामा बारमां पूर्व है यामैं आठ प्रकार वैद्यक तथा भूता-दिक व्याधि दूरि करनेके मंत्रादिक तथा विष दूरि करनेके उपाय तथा स्वरोदय आदिका वर्णन है याके तेरह कोडि पद हैं । बहुरि क्रियाविशालनामा तेरमां पूर्व है यामैं संगीतशास्त्र छंद अलंकारादिक तथा चौसठि कला, गर्भाधानादि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एकसौ आठ क्रिया, देववंदनादि पच्चीस क्रिया, नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिका वर्णन है, याके पाद नव कोडि हैं । चौदमां त्रिलोकाविदुसार नामा पूर्व है या विषैं तीन लोकका स्वरूप अर बीजगणितका स्वरूप तथा मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षकी कारणभूत क्रियाका स्वरूप इत्यादिका वर्णन है याके पाद बारह कोडि पचास लाख हैं । ऐसैं चौदह पूर्व हैं, इनिके सर्व पदनिका जोड़ पिच्याणत्रै कोडि पचास लाख है । बहुरि बारमां अंगका पांचमां भेद चूळिका है ताके पांच भेद हैं तिनिके पद दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोयसैं हैं । तहां जलगता चूळिकामैं जलका स्तंभन करनां जलमैं गमन करना । अग्निगता चूळिकामैं अग्निस्तंभन करनां अग्निमैं प्रवेश करनां अग्निका भक्षण करनां इत्यादिके कारणभूत मंत्र तंत्रादिकका प्ररूपण है, याके पद दोय कोडि नवलाख निवासी हजार दोयसैं हैं । एते एते ही पद अन्य च्यार चूळिकाके जाननें । बहुरि दूजी स्थलगता चूळिका है यात्रिषैं मेरुपर्वत भूमि इत्यादि विषैं प्रवेश करनां शीघ्र गमन करनां इत्यादि क्रियाके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है । बहुरि तीजी मायागता चूळिका है तामैं मायामयी इंद्रजाल विक्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिका प्ररूपण है । बहुरि चौथी रूपगता चूळिका है यामैं सिंह हाथी घोडा बैल हरिण इत्यादि अनेकप्रकार रूप पलटि लेनां ताके कारणभूत मंत्र

तंत्र तपश्चरण आदिका प्ररूपणा है, तथा चित्राम काष्ठलेपादिकका छक्षण वर्णन है तथा धातु रसायनका निरूपण है । बहुरि पांचमीं आकाशगता चूलिका है यामें आकाशविषैं गमनादिकके कारणभूत मंत्र यंत्र तंत्रादिकका प्ररूपणें है । ऐसैं बारमां अंग है । या प्रकार तौ बारह अंग सूत्र हैं ।

बहुरि अंगबाह्य श्रुतके चौदह प्रकीर्णक हैं । तिनिमें प्रथम प्रकीर्णक सामायिक नामा है, ताविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेद-करि छह प्रकार इत्यादिक सामायिकका विशेषकरि वर्णन है । बहुरि दूजा चतुर्विंशतिस्तव नाम प्रकीर्णक है ताविषैं चौबीस तीर्थकरत्रिकी महिमाका वर्णन है । बहुरि तीजा वंदनानाम प्रकीर्णक है तामें एक तीर्थकरकै आश्रय वंदना स्तुतिका वर्णन है । बहुरि चौथा प्रति-क्रमणनामा प्रकीर्णक हैं तामें सात प्रकारके प्रतिक्रमणका वर्णन है । बहुरि पांचमां वैनयिकनाम प्रकीर्णक है तामें पंच प्रकारके विनयका वर्णन है । बहुरि छठा कृतिकर्मनामा प्रकीर्णक है तामें अरहंत आदिककी वंदनाकी क्रियाका वर्णन है । बहुरि सातमां दशवैकालिकनामा प्रकीर्णक है तिसविषैं मुनिका आचार आहारकी शुद्धता आदिका वर्णन है । बहुरि आठमां उत्तराध्ययननामा प्रकीर्णक है ताविषैं परीषह उपसर्गका सहर्नेका विधान वर्णन है । बहुरि नवमां कल्पव्यवहार नामा प्रकीर्णक है तामें मुनिके योग्य आचरण अर अयोग्य सेवनके प्रायश्चित तिनिंका वर्णन है । बहुरि दशमां कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ताविषैं मुनिकूं यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसा द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा वर्णन है । बहुरि ग्यारमां महाकल्पनामा प्रकीर्णक है तामें जिनकल्पी मुनिकै प्रतिमायोग त्रिकालयोगका प्ररूपण है तथा स्यविरकल्पी मुनिनिंकी प्रवृत्तिका वर्णन है । बहुरि बारमां

पुंडरीबनाम प्रकीर्णक है ताविषैं च्यार प्रकारके देवनिविषैं उपजनेके कारणानिका वर्णन है । बहुरि तेरमां महापुंडरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं इन्द्रादिक वडी ऋद्धिके धारक देवनिके उपजनेके कारणानिका प्ररूपण है ! बहुरि चौदमां निषिद्धिकानामा प्रकीर्णक है ताविषैं अनेक प्रकार दोषकी शुद्धतानिमित्त प्रायश्चित्तानिका प्ररूपण है, यह प्रायश्चित्त शास्त्र है, याका निसित्तिका ऐसा भी नाम है । ऐसैं अंगवाद्य श्रुत चौदह प्रकार है ।

बहुरि पूर्वानिकी उत्पत्ति पर्यायसमास ज्ञानतैं लगाय पूर्वज्ञानपर्यन्त बीस भेद हैं तिनिका विशेष वर्णन है सो श्रुतज्ञानका वर्णन गोमट्टसार नाम ग्रंथमें विस्तार करि है तहांतैं जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहैं हैं जो सूत्रविषैं प्रवीण है सो संसारका नाश करै है;—
गाथा—सुत्तम्मि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुण्ढि ।

सूई जहा असुत्ता णात्तादि सुत्ते सहा णो वि ॥ ३ ॥

संस्कृत—सूत्रे ज्ञायमानः भवस्य भवनाशनं च सः करोति ।

सूची यथा असूत्रा नश्यति सूत्रेण सह नापि ॥ ३ ॥

अर्थ—जो पुरुष सूत्रविषैं जाणमान है प्रवीण है सो संसारके उपजनेका नाश करै है बहुरि जैसैं लोहकी सूई है सो सूत्र कहिये डोरा तिस बिना होय तौ नष्ट होजाय अर डोरासहित होय तौ नष्ट नहीं होय यह दृष्टांत है ॥

भावार्थ—सूत्रका ज्ञाता होय सो संसारका नाश करै है बहुरि ऐसैं है—जो सूई डोरासहित होय तौ दृष्टिगोचर होय पावै कदाचित् ही नष्ट नहीं होय अर डोरा बिना होय तौ दीखै नांही नष्ट होय जाय तैसैं जाननां ॥ ३ ॥

आगेँ सूईके दृष्टान्तका दार्ष्टान्त कहैं हैं;—

दि

गाथा—पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारें ।

सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥४॥

संस्कृत—पुरुषोऽपि यः ससूत्रः न विनश्यति स गतोऽपि संसारे

सच्चेतनप्रत्यक्षेण नाशयति तं सः अदृश्यमानोऽपि ॥४॥

अर्थ—जैसैं सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होय तैसैं सो पुरुष भी संसारमें गत होय रह्या है अपना रूप आपकै दृष्टिगोचर नांही है तौऊ सूत्रसहित होय सूत्रका ज्ञाता होय तौ ताकै आत्मा सत्त्वरूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदनकरि प्रत्यक्ष अनुभवमें आवै है यातैं गत नांही है नष्ट नहीं भया है, सो जिस संसारमें गत है तिस संसारका नाश करै है ।

भांवार्थ—यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नांही है तौऊ सूत्रके ज्ञाताकै स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि अनुभव गोचर है सो सूत्रका ज्ञाता संसारका नाश करै है आप प्रकट होय है यातैं सूईका दृष्टांत युक्त है ॥ ४ ॥

आगेँ सूत्रमें अर्थ कहा है सो कहैं हैं,—

गाथा—सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं ।

हेयाहेयं च तद्वा जो जाणइ सो हु सद्विद्दी ॥ ५ ॥

संस्कृत—सूत्रार्थं जिनभणितं जीवाजीवादिबहुविधमर्थम् ।

हेयाहेयं च तथा यो जानति स हि सद्वृद्धिः ॥५॥

अर्थ—सूत्रका अर्थ है सो जिन सर्वज्ञ देव करि कहा है बहुरि सूत्रविषैं अर्थ है सो जीव अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय कहिये त्यागनैं योग्यें पुद्गलादिक अर अहेय कहिये त्यागनैं योग्य नांही ऐसा आत्मा सो याकूं जानैं सो प्रगट सम्यग्दृष्टी है ।

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे सूत्र विषै जीवादिक नव पदार्थ अर इनमें हेय उपादेय ऐसैं बहुत प्रकार करि व्याख्यान है ताकूं जानैं सो श्रद्धानवान सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ५ ॥

आगैं कहै हैं जो जिनभाषित सूत्र है सो व्यवहार परमार्थरूप दोय प्रकार है ताकूं जानि योगीश्वर शुद्ध भाव करि सुखकूं पावैं हैं;—

गाथा—जं सूतं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो ।

तं जाणिउण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥ ६ ॥

संस्कृत—यत्सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च ज्ञानीहि परमार्थम् ।

तत् ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुंजं ॥ ६ ॥

अर्थ—जो जिन भाषित सूत्र है सो व्यवहार रूप है तथा परमार्थ रूप है ताकूं योगीश्वर जानि सुख पावै है बहुरि मलपुंज कहिये द्रव्य कर्म भाव कर्म नोकर्म ताहि क्षेपै है ।

भावार्थ—जिन सूत्रकूं व्यवहार परमार्थ रूप यथार्थ जानि योगीश्वर मुनि है सो कर्मका नाश करि अविनाशी सुखरूप मोक्षकूं पावै है । तहां परमार्थ कहिए निश्चय अर व्यवहार इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा जो—जिन आगमकी व्याख्या चार अनुयोगरूप शास्त्रनिमें दोय प्रकार सिद्ध है एक आगमरूप, दूजी अध्यात्मरूप । तहां सामान्य विशेष करि सर्व पदार्थनिका प्ररूपण करिये है सो तौ आगमरूप है । बहुरि जहां एक आत्माहीकै आश्रय निरूपण करिये सो अध्यात्म है । तथा अहेतुमत् अर हेतुमत् ऐसैं भी दोय प्रकार है; तहां जो सर्वज्ञकी आज्ञाही करि केवल प्रमाणता मानिये सो तौ अहेतुमत् है । अर जहां प्रमाण नयनि करि वस्तुकी निर्वाध सिद्धि जामैं करि मानिये सो हेतुमत् है । ऐसैं दोय प्रकार आगममें निश्चय

व्यवहारकरि व्याख्यान ऐसैं है. सो किछु लिखिए हैं;—तहां जब, आगमरूप सर्व पदार्थनिका व्याख्यानपरि लगाइये तब तौ वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप अनंतधर्मस्वरूप है सो ज्ञानगम्य है, तिनमें सामान्यरूप तौ निश्चयनयका विषय है, अर विशेष रूप जे ते हैं तिनिकूं भेदरूपकरि न्यारे न्यारे कहै सो व्यवहारनयका विषय है ताकूं द्रव्यपर्याय स्वरूप भी कहिये । तहां जिस वस्तुकूं विवक्षित करि साधिये ताके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि जो किछु सामान्य विशेषरूप वस्तुका सर्वस्व होय सो तौ निश्चय व्यवहार करि कहा है तैसैं सधै है, बहुरि तिस वस्तुकै किछु अन्य वस्तुके संयोगरूप अवस्था होय तिसकूं तिस वस्तुरूप कहनां सो भी व्यवहार है ताकूं उपचार ऐसा भी नाम कहिये । याका उदाहरण ऐसा—जैसै एक विवक्षित घटनामा वस्तु परि लगाइये तब जिस घटका द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप सामान्यविशेषरूप जेता सर्वस्व है ते ता कहा तैसैं निश्चय व्यवहार करि कहनां सो तौ निश्चय व्यवहार है; अर घटकै किछु अन्य वस्तुका लेप करि तिस घटकूं तिस नाम करि कहनां तथा अन्य पटादि विषैं घटका आरोपण करि घट कहनां सो भी व्यवहार है । तहां व्यवहारका दोय आश्रय हैं; एक प्रयोजन, दूजा निमित्त । तहां प्रयोजन साधनेकूं काहु वस्तुकूं घट कहनां सो तो प्रयोजनाश्रित है बहुरि काहु अन्य वस्तुके निमित्ततैं घटमें अवस्था भई ताकूं घटरूप कहनां सो निमित्ताश्रित है । ऐसैं विवक्षित सर्व जीव अजीव वस्तुनिपरि लगावनां । बहुरि जब एक आत्माहीकूं प्रधान करि लगावनां सो अध्यात्म है । तहां जीव सामान्यकूं भी आत्मा कहिये है । अर जो जीव अपनां सर्व जीवनितैं भिन अनुभव करै ताकूं भी आत्मा कहिये है, तहां जब आपकूं सर्वतैं न्यारा अनुभव करि आपापरि निश्चय लगाइये

तब ऐसैं जो आप अनादि अनंत अविनाशी सर्व अन्य द्रव्यमितैं भिन्न एक सामान्य विशेषरूप अनंतधर्मा द्रव्य पर्यायात्मक जीवनामा शुद्ध वस्तु है, सो कैसाक है—शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्मकूं छिये अनंत शक्तिका धारक है तामैं सामान्य भेद चेतना अनंत शक्तिका समूह सो द्रव्य है । बहुरि अनंत ज्ञान दर्शन सुख बरिये ये तौ चेतनाके विशेष हैं ते तौ गुण हैं अर अगुल्लघु गुणकैं द्वारै षट्स्थान पतित हानि वृद्धिरूप परिणमता जीवकैं त्रिकालात्मक अनंत पर्याय हैं । ऐसा शुद्ध जीव नामा वस्तु सर्वज्ञ देख्या जैसा आगममें प्रसिद्ध है सो तो एक अभेद रूप शुद्ध निश्चय नयका विषय भूत जीवै है इस दृष्टि करि अनुभव कीजे जब तौ ऐसा है । अर अनंत धर्मनिमैं भेदरूप कोई एक धर्मकूं लेकर कहनां सो व्यवहार है बहुरि आत्म वस्तुकैं अनादिहीतैं पुद्गल कर्मका संयोग है ताकैं निमित्ततैं विकार भावकी उत्पत्ति है ताके निमित्ततैं रागद्वेष रूप विकार होय हैं ताकूं विभाव परणति कहिये है, तिस करि फेरि आगामी कर्मका बंध होय है । ऐसैं अनादि निमित्त नैमित्तिक भाव करि चतुर्गति रूप संसारका भ्रमणरूप प्रवृत्ति होय है तहां जिस गतिकूं प्राप्त होय तैसाही जीव नाम कहावै है तथा जैसा रागादिक भाव होय तैसा नाम कहावै बहुरि जब द्रव्यक्षेत्र काल भावकी बाह्य अंतरंग सामग्रीका निमित्त करि अपना शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनयका विषय स्वरूप आपकूं जानि श्रद्धान करै, अर कर्म संयोगकूं अर तिसके निमित्ततैं अपने भाव होय हैं तिनिका यथार्थ स्वरूप जानैं तब भेदज्ञान होय तब परभावनितैं विरक्त होय तब तिनिका मेंटनेका उपाय सर्वज्ञके आगमतैं यथार्थ समक्षि ताकूं अंगीकार करै तब अपने स्वभावमें स्थिर होय अनंत चतुष्टय प्रगट होय सर्व कर्मका क्षय करि लोकके शिख

विराजै तब मुक्त भया कहावै ताकूं सिद्ध भी कहिये । ऐसैं जेतैं संसारकी अवस्था अर यह मुक्त अवस्था ऐसैं भेदरूप आत्माकूं निरूपै है सो भी व्यवहारनयका विषय है, याकूं अध्यात्म शास्त्रमें अभूतार्थ असत्यार्थ नाम कहि करि वर्णन किया है जातैं शुद्ध आत्मामैं संयोगजनित अवस्था होय सो तौ असत्यार्थही है, किछू शुद्ध वस्तुका तौ यह स्वभाव नांही तातैं असत्यही है । बहुरि जो निमित्ततैं अवस्था भई सो भी आत्माहीका परिणाम है सो जो आत्माका परिणाम है सो आत्माहीमैं है तातैं कथंचित् याकूं सत्य भी कहिये परन्तु जेतैं भेदज्ञान नहीं होय तेतैंही यह दृष्टि है, भेदज्ञान भये जैसैं है तैसैं जानैं है । बहुरि जे द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं ते आत्मामैं न्यारे हैं ही तिनिनैं शरीरादिका संयोग है सो आत्मामैं प्रगट ही भिन्न हैं, तिनिनूं आत्माके कहिये हैं सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही, याकूं असत्यार्थ कहिये उपचार कहिये । इह^१ कर्मके संयोगजनित भाव हैं ते सर्व निमित्ताश्रित व्यवहारका विषय हैं अर उपदेश अपेक्षा याकूं प्रयोजनाश्रित भी कहिये ऐसैं निश्चय व्यवहारका संक्षेप है । तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं मोक्षमार्ग कहा तहां ऐसैं समझनां जो ये तीनों एक आत्माहीके भाव हैं, ऐसैं तिनिका स्वरूप आत्माहीका अनुभव होय सो तौ निश्चय मोक्षमार्ग है तामैं भी जेतैं अनुभवकी साक्षात् पूर्णता नांही होय तेतैं एकदेशरूप होय ताकूं कथंचित् सर्वदेशरूप कहिकरि कहनां सो तौ व्यवहार है अर एकदेश नामकरि कहनां सो निश्चय है । बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं भेदरूप कहि मोक्षमार्ग कहिये तथा इनिके बाह्य परद्रव्य स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भाव निमित्त हैं तिनिनूं दर्शन ज्ञान चारित्र नाम करि कहिये सो व्यवहार है । देव गुरुशास्त्रकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये जीवादिक तत्त्वनिकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये ।

शास्त्रके ज्ञान कहिये जीवादिक पदार्थनिके ज्ञानकूं ज्ञान कहिये इत्यादि ।
 तथा पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्तिरूप प्रवृत्तिकूं चारित्र कहिये ।
 तथा बारह प्रकार तपकूं तप कहिये । ऐसैं भेदरूप तथा परद्रव्यके आलं-
 बनरूप प्रवृत्ति हैं ते सर्व अध्यात्मशास्त्र अपेक्षा व्यवहार नामकरि कहिये
 हैं जातैं वस्तुका एकदेशकूं वस्तु कहनां सो भी व्यवहार है, अर परद्रव्यका
 आलंबनरूप प्रवृत्तिकूं तिस वस्तुके नामकरि कहनां सो भी व्यवहार
 है । बहुरि अध्यात्मशास्त्रमें ऐसैं भी वर्णन है जो वस्तु अनंतधर्मरूप
 है सो सामान्य विशेषकरि तथा द्रव्यपर्यायकरि वर्णन कीजिए है तहां
 द्रव्यमात्र कहनां तथा पर्यायमात्र कहनां सो व्यवहारका विषय है । बहुरि
 द्रव्यका भी तथा पर्यायका भी निषेध करि वचन अगोचर कहनां सो
 निश्चयनयका विषय है । बहुरि द्रव्यरूप है सो ही पर्याय रूप है ऐसैं
 दोऊहीकूं प्रधान करि कहनां सो प्रमाणका विषय है, याका उदाहरण
 ऐसा जैसे जीवकूं चैतन्य रूप जित्य एक अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र
 कहनां सो तौ द्रव्यार्थिकनयका विषय है अर ज्ञानदर्शनरूप अनित्य
 अनेक नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहनां सो पर्यायार्थिक नयका
 विषय है । अर दोऊ ही प्रकारकै प्रधानताका निषेधमात्र वचन अगोचर
 कहनां सो निश्चयनयका विषय है । अर दोऊ ही प्रकारकूं प्रधान करि
 कहनां प्रमाणका विषय है इत्यादि । ऐसैं निश्चय व्यवहारका सामान्य
 संक्षेप स्वरूप है ताकूं जानि जैसे आगम अध्यात्म शास्त्रनिमें विशेष
 करि वर्णन होय ताकूं सूक्ष्मदृष्टिकरि जाननां जिनमत अनेकांतस्वरूप
 स्याद्वाद है, अर नयनिकै आश्रय कथनी है तहां नयनिकै परस्पर विरोध
 है ताकूं स्याद्वाद मेंटै है, ताका विरोधका तथा अविरोधका स्वरूप नीकै
 जाननां, सो यथार्थ तौ गुरु आम्नायहीतैं होय परन्तु गुरुका निमित्त
 इस कालमें विस्मया होय गया तातैं अपनां ज्ञानका बल चालैं जेतैं विशेष

समक्षिवो ही करनां किछु ज्ञानका लेश पाय उद्धत नहीं होना, अबार इस कालमें अल्पज्ञानी बहुत हैं यातैं तिनिमें किछु अधिक अम्यास करि तिनिमें महंत बणि उद्धत भये मद आवै तब ज्ञान थकित होय जाय अर विशेष समझनेकी अभिलाष नहीं रहै तब विपर्यय होय यद्वा तद्वा कहै तब अन्य जीवनिकै विपर्यय श्रद्धान होय तब आपके अपराधका प्रसंग आवै; तातैं शास्त्रकूं समुद्र जानि अल्पज्ञरूप ही अपनां भाव राखनां तातैं विशेष समझनेकी अभिलाषा बनी रहै तातैं ज्ञानकी वृद्धि होय है, अर अल्पज्ञानीनिमें बैठि महंत बुद्धि राखै तब अपनां पाया ज्ञान भी नष्ट होय है, ऐसैं जाननां; अर निश्चय व्यवहाररूप आगमकी कथनी समक्ष करि ताका श्रद्धान करि यथाशक्ति आचरण करनां इस कालमें गुरुसंप्रदायविनां महंत नहीं वणनौ जिन आज्ञा बहीं लोपणीं । कई कहैं हैं—हम तौ परीक्षा करि जिनमतकूं मानैंगे ते वृथा वकैं हैं—स्वल्पबुद्धीका ज्ञान परीक्षा करने लायक नाहीं। आज्ञाकूं प्रधान राखि वणै जेती परीक्षा करनेमें दोष नाहीं, केवल परीक्षाहीकूं प्रधान राखनेमें जिनमततैं च्युत होय जाय तौ बड़ा दोष आवै तातैं जिनिंकै अपने हित अहित पर दृष्टि हैं ते तौ ऐसैं जानौ । अर जिनिंकू अल्पज्ञानीनिमें महंत बणि अपने मान लोभ बढाई विषय कषाय पोषनें होय तिनिंकी कथा नाहीं, ते तौ जैसैं अपने विषय कषाय पोषैंगे तैसैं करैंगे तिनिंकू मोक्ष-मार्गका उपदेश लागै नाहीं, विपर्यस्तकूं काहेका उपदेश ? ऐसैं जाननां ॥ ६ ॥

आगैं कहै है जो सूत्रके अर्थ पदतैं भ्रष्ट है ताकूं मिथ्यादृष्टी जाननां;—

गाथा—सूतत्थपयविण्हो मिच्छादिही हु सो मुणेयब्बो ।

खेडे वि ण कायन्वं पाणिप्पचं सचेलस्स ॥ ७ ॥

संस्कृत—सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः हि सः ज्ञातव्यः ।

खेलेऽपि न कर्त्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जो सूत्रका अर्थ अर पद है विनष्ट जाकै ऐसा है सो प्रगट मिथ्यादृष्टी है याहीतैं जो सचेल है वस्त्रसहित है ताकूं 'खेडे वि' कहिये हास्य कुतूहलविषैं भी पाणिपात्र कहिये हस्तरूपपात्रकरि आहारदान है सो नहीं करनां ।

भावार्थ—सूत्रविषैं मुनिका रूप नम्र दिगंबर कढ्या है अर जो ऐसे सूत्रके अर्थ करि तथा अक्षररूप पद जाकै विनष्ट हैं तथा आप वस्त्र धारि मुनि कहावै है सो जिन आज्ञातैं भ्रष्ट भया प्रगट मिथ्यादृष्टी है यातैं वस्त्रसहितकूं हास्य कुतूहलकरि भी पाणिपात्र कहिये आहारदान नहीं करनां । तथा ऐसा भी अर्थ होय है जो ऐसे मिथ्यादृष्टीकूं पाणिपात्र आहार लेनां योग्य नांही ऐसा भेष हास्य कुतूहलकरि भी धारणां योग्य नांही, जो वस्त्रसहित रहन अर पाणिपात्र भोजन करनां ऐसैं तौ क्रीडामात्र भी नहीं करनां ॥ ७ ॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रतैं भ्रष्ट है सो हरि हरादिकतुल्य है तौऊ मोक्ष नहीं पावै है;—

गाथा—हरिहरतुलो वि णरो सगं गच्छेइ एइ भवकोडी ।

तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणितो ॥ ८ ॥

संस्कृत—हरिहरल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटिः ।

तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे नर सूत्रका अर्थ पदतैं भ्रष्ट हैं सो हरि कहिये नारायण हर कहिये रुद्र इनि तुल्य भी होय अनेक ऋद्धिकरि युक्त होय तौहू सिद्धि कहिये मोक्ष ताकूं प्राप्त नहीं होय । जो कदाचित् दानपूजादिक

१ पाणिपात्रे, ऐसा भी पाठ है ।

करि पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय तौहू तहांतैं चय करि कोट्यां भव लेख
संसारहीमें रहै है, ऐसैं जिनागममें कहा है ।

भावार्थ—श्वेतांबरादिक ऐसैं कहैं हैं—जो गृहस्थ आदि बख्ससहित
हैं तिनिके भी मोक्ष होय है ऐसैं सूत्रमें कहा है ताका इस गाथामें
निषेधका आशय है—जो हरिहरादिक बडी सामर्थ्यके धारक भी हैं
तौऊ बख्ससहित तौ मोक्ष नांही पावैं है । श्वेतांबरां सूत्र कल्पित बनाये
हैं तिनियें यह लिखी है सो प्रमाणभूत नांही है, ते श्वेतांबर जिन-
सूत्रके अर्थ पदतैं च्युत भये हैं ऐसैं जाननां ॥ ८ ॥

आगैं कहैं है—जो जिनसूत्र च्युत भये हैं ते स्वच्छंद भयें प्रवर्तैं
हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं;—

गाथा—उत्क्रष्टसीहचरियं बहुपरियम्भो य गुरुय भारो य ।

जो विहरइ सच्छंदं पापं गच्छंदि होदि मिच्छत्तं ॥९॥

संस्कृत—उत्कृष्टसिंहचरितः बहुपरिकर्माच्च गुरुभारश्च ।

यः विहरति स्वच्छंदं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम् ॥९॥

अर्थ—जो मुनि होय करि उत्कृष्ट सिंहवत् निर्भय भया आचरण
करै बहुरि बहुत परिकर्म कहिये तपश्चरणादिक्रियाविशेषनिकरि युक्त
है बहुरि गुरुके भार कहिये बड़ा पदस्थरूप है संघ नायक कहावै है
अर जिनसूत्रतैं च्युत भया स्वच्छंद प्रवर्तैं है तौ वह पापहीकूं प्राप्त
होय है बहुरि मिथ्यात्वकूं प्राप्त होय है ।

भावार्थ—जो धर्मकी नायकी लेकर निर्भय होय तपश्चरणादिक
करि बडा कहाय अपनां संप्रदाय चलावै है जिनसूत्रतैं च्युत होय स्वे-
च्छाचारी प्रवर्तैं है तौ सो पापी मिथ्यादृष्टी ही है ताका प्रसंग भी श्रेष्ठ
नांही ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रमें ऐसा मोक्षमार्ग कहा है,

गाथा—णिच्चेलपाणिपत्तं उवइहं परमजिणवरिंदेहिं ।

एको वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

संस्कृत—निश्चेलपाणिपात्रं उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रैः ।

एकोऽपि मोक्षमार्गः शेषाश्च अमार्गाः सर्वे ॥१०॥

अर्थ—जो निश्चल कहिये वस्त्ररहित दिगंबर मुद्रास्वरूप अर पाणि-पात्र कहिये हाथ जाके पात्र ऐसा खड़ा रहि आहार करनां ऐसा एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थकर परमदेव जिनेन्द्रनै उपदेश्या है, इस शिवाय अन्यरीति हैं ते सर्व अमार्ग हैं ।

भावार्थ—जे मृगचर्म वृक्षके वस्त्र कपास पट्ट दुकूल रोमवस्त्र टाटके तृणके वस्त्र इत्यादिक राखि आपकूं मोक्षमार्गी मानै हैं तथा इस कालमें जिनसूत्रतैं च्युत भये हैं० तिननै अपनी इच्छातैं अनेक भेष चलाये हैं केई श्वेत वस्त्र राखैं हैं केई रक्तवस्त्र केई पीलेवस्त्र केई टाटके वस्त्र केई घासके वस्त्र केई रोमके वस्त्र इत्यादिक राखैं हैं तिनिकै मोक्षमार्ग नांहीं जातै जिनसूत्रमें तौ एक नग्न दिगंबर स्वरूप पाणिपात्र भोजन करनां ऐसा मोक्ष मार्ग कहा है, अन्य सर्व भेष मोक्षमार्ग नहीं अर जे मानैं हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं ॥ १० ॥

आगैं दिगंबर मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति कहै हैं;

गाथा—जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि ।

सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमानुसे लोए ॥११॥

संस्कृत—यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि ।

सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ॥११॥

अर्थ—जो दिगंबर मुद्राका धारक मुनि इन्द्रिय मनका वश करना छह कायके जीवनिकी दया करनां ऐसैं संयम करि तौ सहित होय बहुरि आरंभ कहिये गृहस्थके जे ते आरंभ हैं तिनतैं अर बाह्य अभ्यंतर परिग्रहतैं विरक्त होय तिनिमैं नहीं प्रवर्त्तैं तथा आदि शब्द करि ब्रह्मचर्य आदि करि युक्त होय सो देव दानव करि सहित मनुष्यलोक विषैं बंदनैं योग्य है अन्य भेषी परिग्रह आरंभादि करि युक्त पाखंडी बंदिवे योग्य नांही है ॥ ११ ॥

आगैं फेरि तिनिकी प्रवृत्तिका विशेष कहै है;—

गाथा—जे बावीसपरीसह सहति सत्तीसएहिं संजुत्ता ।

ते होदि वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ॥ १२ ॥

संस्कृत—ये द्वाविंशतिपरीषहान् सहन्ते शक्तिशतैः संयुक्ताः ।

ते भवन्ति वंदनीयाः कर्मक्षयनिर्जरासाधवः ॥ १२ ॥

अर्थ—जे साधु मुनि अपनी शक्तिके सैंकडानिकारि युक्त भये संते क्षुधा तृषादिक बाईस परीषहनिक्कू सहैं हैं ते साधु वंदनेयोग्य हैं, कैसे हैं ते—कर्मनिका क्षयरूप तिनिकी निर्जरा ताविषैं प्रवीण हैं ॥

भावार्थ—जे बड़ी शक्तिके धारक साधु हैं ते परीषहनिक्कू सहैं हैं परीषह आये अपने पदतैं च्युत नांही होय हैं तिनिकैं कर्मनिकी निर्जरा होय है ते वंदने योग्य हैं ॥ १२ ॥

आगैं कहै है जो दिगंबर मुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारे सम्यग्दर्शन ज्ञानकारि युक्त होय ते इच्छाकार करनेयोग्य हैं;—

गाथा—अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेणसम्म संजुत्ता ।

चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ॥

१ 'होति' बदपाहुडमें ऐसा है ।

संस्कृत—अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ता ।

चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छाकारयोग्याः ॥ १३

अर्थ—दिगंबर मुद्रासिवाय अवशेष जे लिंगी हैं भेषकरि संयुक्त अर सम्यक्त्वसहित दर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं अर वस्त्र करि परिगृहीत हैं वस्त्र धारैं हैं ते इच्छाकार करने योग्य हैं ॥

भावार्थ—जे सम्यग्दर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं अर उत्कृष्ट श्रावकका भेष धारैं हैं एक वस्त्रमात्र परिग्रह राखैं हैं सो इच्छाकार करने योग्य हैं तातैं “ इच्छामि ” ऐसा कहिये है । ताका अर्थ—जो मैं तुमकुं इच्छूं हूं चाहूं ऐसा ‘ इच्छामि ’ शब्दका अर्थ हैं । ऐसैं इच्छाकार करना जिनसूत्रमें कहा है ॥ १३ ॥

आगैं इच्छाकार योग्य श्रावकका स्वरूप कहैं हैं;—

गाथा—इच्छायारमहत्थं सुत्तठिणो जो हु छंडए कम्म ।

ठाणे द्वियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होइ ॥ १४ ॥

संस्कृत—इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थितः यः स्फुटं त्यजति कर्म ।

स्थाने स्थितसम्यक्त्वः परलोकसुखंकरः भवति १४

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रविषैं तिष्ठता संता इच्छाकार शब्दका महान प्रधान अर्थ है ताहि जानै है बहुरि स्थान जो श्रावकके भेदरूप प्रतिमा तिनिमें तिष्ठया सम्यक्त्वसहित वर्त्तता आरंभ आदि कर्मनिक्क छोड़ै है सो परलोकविषैं सुख करनेवाला होय है ॥

भावार्थ—उत्कृष्ट श्रावककुं इच्छाकार करिये हैं सो इच्छाकारका जो प्रधान अर्थ है ताकुं जानै है अर सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित आरंभादिक छोड़ि उत्कृष्ट श्रावक होय सो परलोकविषैं स्वर्गका सुख पावै है ॥ १४ ॥

आगैं कहैं हैं जो इच्छाकारका प्रधान अर्थकूं नाहीं जानै है अर अन्यधर्मका आचरण करै है सो सिद्धिकूं नाहीं पावै है;—

गाथा—अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ गिरव सेसाइं ।

तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणितो ॥ १५ ॥

संस्कृतः—अथ पुनः आत्मानं नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान्

तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः १५

अर्थ—‘अथ पुनः’ शब्दका ऐसा अर्थ जो—पहली गाथामैं कयाथा जो इच्छाकारका प्रधान अर्थ जानै सो आचरण करि स्वर्गसुख पावै, सो अब फेरि कहै हैं जो—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आत्माका चाहनाहै अपने स्वरूपविषैं रुचि करनां है सो याकूं जो नाहीं इष्ट करै है अर अन्य धर्मके समस्त आचरण करै है तौउ सिद्धि कहिये मोक्षकूं नहीं पावै हैं बहुरि ताकूं संसारविषैं हँ तिष्ठनेवाला कया है ॥

भावार्थ—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आपका चाहनां है सो जाकै अपने स्वरूपकी रुचिरूप सम्यक्त्व नाहीं ताकै सर्व मुनि श्रावकके—आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्षका कारण नाहीं ॥ १५ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़करि उपदेश करै हैं—

गाथा—एण कारणेण य तं अप्पा सदहेह तिविहेण ।

जेण य लहेइ मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ॥ १६ ॥

संस्कृत—एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन ।

येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ १६ ॥

अर्थ—पूवैं कया जो आत्माकूं इष्ट न करै है ताकै सिद्धि नहीं है तिसही कारण करि हे भव्यजीवहों! तुम तिस आत्माकूं श्रद्धौ

श्रद्धान करो मन वचन काय करि स्वरूपविषै रचिं करो तिस कारण करि मोक्षकूं पात्रो बहुरि जिस करि मोक्ष पाइए तिसकूं प्रयत्न कहिये सर्व प्रकार उद्यमकरि जानिये ॥

भावार्थ—जिसकरि मोक्ष पाइये तिसहीका जाननां श्रद्धान करना यह प्रधान उपदेश है अन्य आडंबर करि कहा प्रयोजन ? ऐसैं जाननां ॥ १६ ॥

आगैं कहै हैं जे जिनसूत्रके जाननेवाले मुनि हैं तिनिका स्वरूप फेरि दृढ करनेकूं कहै है;—

गाथा—वालग्गकोडिमत्तं परिग्रहग्रहणं न होइ साहूणां ।

भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णणं इक्कठाणम्मि ॥ १७ ॥

संस्कृत—वालाग्रकोटिमात्रं परिग्रहग्रहणं न भवति साधूनाम् ।

भुंजीत पाणिपात्रे दत्तमन्येन एकस्थाने १७ ॥

अर्थ—वालके अग्रभागकी कोटि कहिये अणी तिसमात्र भी परिग्रहका ग्रहण साधुके नहीं होय है, इहां आशंका है जो परिग्रह कछुभी नाहीं है तौ आहार कैसे करै है ! ताका समाधान करै है—आहार करै है सो पाणिपात्र कहिये करपात्र जो अपने हाथही में भोजन करै है सो भी अन्यका दिया प्राशुक अन्न मात्र ले हैं सो भी एकस्थान ले हैं बार बार नहीं ले हैं अर अन्य अन्य स्थानमें नहीं ले हैं ॥

भावार्थ—जो मुनि आहार ही परका दिया प्रासुक योग्य अन्नमात्र निर्दोष एकवार दिनमें अपने हाथकरि ले है तौ अन्य परिग्रह काहेकूं ग्रहण करै नहीं ग्रहण करै, जिनसूत्रमें ऐसे मुनि कहै हैं ॥ १७ ॥

आगैं कहै हैं अल्पपरिग्रह ग्रहण करै तामैं दोष कहा ? ताकूं दोष दिखावै है;—

गाथा—जहजायरुवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु ।

जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ निगोदम् ॥१८॥

संस्कृत—यथाजातरूपसदृशः तिलतुषमात्रं न गृह्णाति हस्तयोः ।

यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम् ॥१८॥

अर्थ—मुनि हैं सो यथाजातरूप हैं जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होय हैं तैसा नग्नरूप दिगंबर मुद्राका धारक हैं सो अपने हाथविपैं तिलके तुषमात्र भी किछू ग्रहण नहीं करै हैं, बहुरि जो किछू अल्प बहुत लेवै ग्रहण करै तौ वो मुनि ग्रहण करनेतैं निगोदमें जाय हैं ।

भावार्थ—मुनि यथाजातरूप दिगंबर निर्ग्रन्थकूं कहैं हैं सो ऐसा होय करि भी किछू परिग्रह राखैं तौ जानिये इनिकै जिनसूत्रकी श्रद्धा नांही मिथ्यादृष्टी है यातैं मिथ्यात्वका फल निगोदही है, कदाचित् किछू तपश्चरणादिक करै तौ ताकरि शुभकर्म बांधि स्वर्गादिक पावै तौ भी फेरि एकेन्द्रिय होय संसार ही में भ्रमण करै है ।

इहां प्रश्न—जो, मुनिकै शरीर है आहार करै है कमंडलु पीछी पुस्तक राखै हैं, इहां तिल तुषमात्र भी राखनां न कहा, सो कैसे ?

ताका समाधान—जो, मिथ्यात्वसहित रागभावसूं अपणाय अपनां विषय कपाय पोपनेकूं राखै ताकूं परिग्रह कहिये हैं तिस निमित्त किछू अल्प बहुत राखनां निषेध्या हैं अर केवल संयमके निमित्तका तौ सर्वथा निषेध नांही । शरीर है सो तौ आयुपर्यन्त छोड्या छूटै नांही याका तौ ममत्वही छूटै सो निषेध्या ही है । बहुरि जे तैं शरीर है ते तैं आहार नहीं

करै तौ सामर्थ्यही नहीं होय तब संयम नहीं सधै तातैं किछु योग्य आहार विधिपूर्वक शरीरसूं रागरहित भये संते लेकर शरीरकूं खड़ा राखि संयम साधै है । बहुरि कमंडलु बाह्य शौचका उपकरण है जो नहीं राखै तौ मलमूत्रकी अशुचिताकरि पंच परमेष्ठीकी भक्ति वंदना कैसें करै अर लोकनिन्द्य होय । बहुरि पीछी दयाका उपकरण है जो नहीं राखै तौ जीवनि सहित भूमि आदिकी प्रति लेखना काहेतैं करै । बहुरि पुस्तक है सो ज्ञानका उपकरण है जो नहीं राखै तौ पठन पाठन कैसें होय । बहुरि इनि उपकरणनिका राखनां भी ममत्वपूर्वक नांही है तिनि तैं रागभाव नांही है । बहुरि आहार विहार पठन पाठनकी क्रियायुक्त जेतैं रहै तेतैं केवलज्ञान भी नांही उपजै है तिनि सर्व क्रियानिकूं छोड़ि शरीरका भी सर्वथा ममत्व छोड़ि ध्यान अवस्था लेकर तिष्ठै अपनां स्वरूपमें लीन होय तब परम निर्ग्रंथ अवस्था होय है तब श्रेणीकूं प्राप्त भये मुनिराजकैं केवलज्ञान उपजै हैं अन्य क्रियासहित होय तेतैं केवलज्ञान नांही उपजै है ऐसा निर्ग्रंथपणां मोक्षमार्ग जिनसूत्रमें कहा है ।

श्वेतांबर कहै हैं जो भवथिति पूरी भये सर्व अवस्थामैं केवलज्ञान उपजै है सो यह कहनां मिथ्या है, जिनसूत्रका यह वचन नांही तिनि श्वेतांबरनिनैं कल्पित सूत्र बनाये हैं तिनिमें लिखी होगी । बहुरि इहां श्वेतांबर कहै जो तुमनैं कहा सो तौ उत्सगमार्ग है, बहुरि अपवादमार्गमें वस्त्रादिक उपकरण राखनां कहा है जैसें तुम धर्मोपकरण कहे तैसेंही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं जैसें क्षुधाकी बाधा आहारतैं मेटि संयम साधिये है तैसें ही शीत आदिकी बाधा वस्त्र आदितैं मेटि संयम साधिये यामैं विशेष कहा ? ताकूं कहिये जो यामैं तौ बडे दोष आवैं हैं, तथा कोई कहै कामविकार उपजै तब स्त्रीसेवन करै तौ यामैं कहा विशेष ? सो ऐसें कहनां युक्त नांही । क्षुधाकी बाधा तौ आहारतैं मेटनां युक्त है आहारविना देह अशक्त

होय है तथा छूटि जाय तौ अपघातका दोष आवै, अर शीत आदिकी बाधा तौ अल्प है सो यह तौ ज्ञानाभ्यास आदिके साधनेतैं ही भिटि जाय है । अपवादमार्ग कह्या सो जामैं मुनिपद रहै ऐसी क्रिया करनां तौ अपवादमार्ग है अर जिस परिग्रहतैं तथा जिस क्रियातैं मुनिपद भ्रष्ट होय गृहस्थवत हो जाय सो तौ अपवादमार्ग है नाहीं । दिगंबर मुद्रा धारि कमंडलु पीछी सहित आहार विहार उपदेशादिकमैं प्रवर्तैं सो अपवादमार्ग है अर सर्व प्रवृत्तिकूं छोड़ि ध्यानस्थ होय शुद्धोपयोगमैं लीन होय सो उत्सर्गमार्ग कह्या है । ऐसा मुनिपद आपतैं सधता न जानि काहेकूं शिथिलाचार पोषणां, मुनिपदकी सामर्थ्य न होय तौ श्रावकवर्म ही पालनों परंपराकरि याहीतैं सिद्धि होयगी । जिनसूत्रकी यथार्थ श्रद्धा राखे सिद्धि है या विनां अन्य क्रिया सर्व ही संसारमार्ग है मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसैं जाननां ॥ १८ ॥

आगैं इस ही अर्थका समर्थन करै है;---

गाथा—जस्स परिग्रहग्रहणं अप्यं बहुयं च हवइ लिंगस्म ।

सो गरहिउ जिणवयणे परिग्रहरहिओ निरायारो ॥१९॥

संस्कृत—यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिंगस्य ।

सः गर्ह्यः जिनवचने परिग्रहरहितः निरागारः ॥१९॥

अर्थः—जाके मतमैं लिंग जो भेष ताके परिग्रहका अल्प तथा बहुत ग्रहणपणां कह्या है सो मत तथा तिसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है निदायोग्य है जातैं जिनवचनविषैं परिग्रह रहित है सो निरागार है निर्दोष मुनि है, ऐसैं कह्या है ॥

भावार्थः—श्वेतांबरादिके कल्पित सूत्रनिमैं भेषमैं अल्प बहुत परिग्रहका ग्रहण कह्या है सो सिद्धान्त तथा ताके श्रद्धानी निंद्य हैं । जिनवचनविषैं परिग्रह रहितकूं ही निर्दोष मुनि कह्या है ॥१९॥

आगै कहै है जिनवचनविषै ऐसा मुनि वंदने योग्य कहा है;—

गाथा:—पंचमहव्यजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स संजदो होइ ।

णिगंथमोक्षमग्नो सो होदि हु वंदणिजो य ॥२०॥

संस्कृत:—पंचमहाव्रतयुक्तः तिसृभिः गुप्तिभिः यः संयतो भवति
निर्ग्रंथमोक्षमार्गः स भवति हि वन्दनीयः च ॥ २० ॥

अर्थ—जो मुनि पंच महाव्रतकरि युक्त होय अर तीन गुप्तिकरि संयुक्त हाये सो संयत है संयमवान है बहुरि निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है बहुरि सो ही प्रगटपणै निश्चयकरि वंदने योग्य है ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अर अपरिग्रह इनि पांच महाव्रतनि करि सहित होय बहुरि मन वचन कायरूप तीन गुप्तिनि करि सहित होय सो संयमी है सो निर्ग्रंथ स्वरूप है सो ही वंदने योग्य है । जो कछु अल्प बहुत परिग्रह राखै सो महाव्रती संयमी नाहीं यह मोक्षमार्ग नाहीं अर गृहस्थवत् भी नाहीं है ॥ २० ॥

आगै कहै है जो पूर्वोक्त तो एक भेष मुनिका कहा, अब दूसरा भेद उत्कृष्ट श्रावकका ऐसा कहा है;—

गाथा—दुइयं च उत्तं लिंगं उक्किट्टं अवरसावयाणं च ।

भिक्षं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण ॥ २१ ॥

संस्कृत—द्वितीयं चोक्तं लिंगं उत्कृष्टं अवरश्रावकाणां च ।

भिक्षां भ्रमति पात्रे समितिभाषया मौनेन ॥ २१ ॥

अर्थ—द्वितीय कहिये दूसरा लिंग कहिये भेष उत्कृष्ट श्रावक कहिये जो गृहस्थ नाहीं ऐसा उत्कृष्ट श्रावक ताका कहा है सो उत्कृष्ट श्रावक म्यारमी प्रतिमाका धारक है सो भ्रमकरि भिक्षाकरि भोजन करै, बहुरि पत्ते

कहिये पात्रमें भोजन करै तथा हाथमें करै बहुरि समितिरूप प्रवर्तत
भाषासमितिरूप बोलै अथवा मौनकरि प्रवर्तै ॥

भावार्थः—एक तौ मुनिका यथाजातरूप कहा बहुरि दूसरा यह
उत्कृष्ट श्रावकका कहा सो ग्यारहीं प्रतिमाका धारक उत्कृष्ट श्रावक है
सो एक वस्त्र तथा कोर्पान मात्र धारे है बहुरि भिक्षा भोजन करै है
बहुरि पात्रमें भी भोजन करै करपात्रमें भी करै बहुरि समितिरूप वचन भी
कहै अथवा मौन भी राखै ऐसा दूसरा भेष है ॥ २१ ॥

आगैं तीसरा लिंग स्त्रीका कहै है;—

गाथा—लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्भि ।

अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥ २२ ॥

संस्कृत—लिंगं स्त्रीणां भवति भुंक्ते पिंडं स्वेककाले ।

आर्या अपि एकवस्त्रा वस्त्रावरणेन भुंक्ते ॥ २३ ॥

अर्थ—लिंगहै सो स्त्रीनिका ऐसहैं—एक कालविषै तौ भोजन करै
वारंवार भोजन नहीं करै बहुरि आर्यिका भी होय तौ एकवस्त्र धारै बहुरि
भोजन करतै भी वस्त्रके आवरणसहित करै नग्न नहीं होय ।

भावार्थ—स्त्री आर्यिका भी होय अर कुलुका भी होय सो दोऊ ही
भोजनतौ दिनमें एकवारही करै आर्यिका होय सो एक वस्त्र धारैही भोजन
करै नग्न नहीं होय । ऐसा तीसरा स्त्रीका लिंग है ॥ २२ ॥

आगैं कहैहै—वस्त्रधारककै मोक्ष नाहीं, मोक्षमार्ग नग्नपणाही है;—

गाथा—ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइ वि होइ तित्थयरो ।

णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २४ ॥

संस्कृत—नापि सिध्यति वस्त्रधरः जिनशासने यद्यपि भवति
तीर्थकरः ।

नमः विमोक्षमार्गः शेषा उन्मार्गकाः सर्वे ॥ २३ ॥

अर्थ—जिनशासनविषै ऐसा कहा है जो वस्त्रका धरनेवाला सीझै नांही मोक्ष नांही पावैहै जो तीर्थकरभी होय तौ जेतै गृहस्थ रहै तैतै मोक्ष न पावै, दीक्षा लेय दिगंबर रूप धारै तब मोक्ष पावै जातै नम्रपणां है सो ही मोक्षमार्ग है अब शेष कहिये बाकी सर्व लिंग उन्मार्ग हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—श्वेतांबर आदिक वस्त्रधारीकैभी मोक्ष होनां कहै हैं सो मिथ्या है यह जिनमत नांही ॥ २३ ॥

आगै स्त्रीनिकूं दीक्षा नांही ताका कारण कहैहै;—

गाथा—लिंगम्मि य इस्थीणं थणंतरे णाहिकखदेसेसु ।

भणिओ मुहमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥

संस्कृत—लिंगे च स्त्रीणां स्तनांतरे नाभिकक्षदेशेषु ।

भणितः सूक्ष्मः कायः तासां कथं भवति प्रव्रज्या ॥ २४ ॥

अर्थ—स्त्रीनिके लिंग कहिये योनि जा विषै तथा स्तनांतर कहिये दोऊ कुचनिके मध्यप्रदेशविषै तथा ~~कक्ष~~ कहिये दोऊ कांखनिविषै नाभि-विषै सूक्ष्मकाय कहिये दृष्टिके अगोचरें जांव, कहे हैं सो ऐसी स्त्रीनिकै प्रव्रज्या कहिये दीक्षा कैसें होय ॥

भावार्थ—स्त्रीनिकै योनि स्तन कांख नांभि विषै पंचेंद्रियजीवनिकी उत्पत्ति निरंतर कहीहै तिनिकै महाव्रतरूप दीक्षा कैसें होय । बहुरि महाव्रत कहे हैं सो उपचार करि कहे हैं परमार्थ नांही, स्त्री आपनां सामर्थ्यकी हदकूं पहुंचि व्रत धरै है तिस अपेक्षा उपचारतै महाव्रत कहे है ॥ २४ ॥

(१) लिखित वचनिका प्रतियोंमें अर्थ और भावार्थ दोनोंही स्थानोंमें 'नाभि' का जिक्र नहीं कियाहै सो गाथाके अनुसार होना युक्त समझ लिखाहै ।

आगै कहे है जो स्त्री भी दर्शनकरि शुद्ध होयतौ पापरहित है भली है
गाथा—जइ दंसणेण सुद्धा उक्ता मग्गेण सावि संजुत्ता ।

घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावर्या भणिया ॥२५॥
संस्कृत—यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि संयुक्ता ।

घोरं चरित्वा चरित्रं स्त्रीषु न पापका भणिता ॥२५॥
अर्थ—स्त्रीनि विषै जो स्त्री, दर्शन कहिये यथार्थ जिनमतकी श्रद्धा
करि शुद्ध है सोभी मार्गकरि संयुक्त कही है जो घोर चारित्र तीव्र तपश्च-
रणादिक आचरणकरि पापतैं रहित होय हैं तातैं पापयुक्त न कहिये ॥

भावार्थ—स्त्रीनि विषै जो स्त्री सम्यक्त्वकरि सहित होय अर तपश्चरण
करै तौ पापरहित होय स्वर्गकूं प्राप्त होय है तातैं प्रशंसायोग्य है अर
स्त्रीपर्यायतैं मोक्ष नाहीं ॥ २५ ॥

आगै कहै है जो स्त्रीनिकै ध्यानकी सिद्धिभी नांही है—
गाथा—चित्तासोहि ण तेसिं दिट्ठं भावं तहा सहावेण ।

विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया ज्ञाणा ॥२६॥
संस्कृत—चित्ताशोधि नैस्स शिथिलः भावः तथा स्वभावेन ।
विद्यते मासा तेषां स्त्रीषु न संकया ध्यानम् ॥२६॥

अर्थ—तिनि स्त्रीनिकै चित्तकी शुद्धिना नांही है तैसैही स्वभावही करि
तिनि कै ढीला भाव है शिथिल परिणाम है बहुरि, तिनि कै मासा
कहिये मासमासमै रुधिरका स्राव विद्यमान है ताकी शंका रहै है ताकरि
स्त्रीनिविषै ध्यान नांही है ॥

भावार्थ—ध्यान होय है सो चित्त शुद्ध होय दृढ परिणाम होय
काहू तरहकी शंका न होय तब होय है सो स्त्रीनिकै तीनोंही कारण नांहीं

(१) मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस पदकी संस्कृत 'प्रव्रज्या' कीहै श्रुत
सागर सूत्रेन भी 'प्रव्रज्या' ही लिखी है ।

तब ध्यान कैसै होय अर ध्यान विनां केवलज्ञान कैसै उपजै अर केवल-
ज्ञानविना मोक्ष नाहीं, श्वेतांबरादिक मोक्ष कहै हैं सो मिथ्या है ॥ २६ ॥

आगैं सूत्रपाहुडकूं समाप्त करै हैं सो सामान्यकरि मुखका कारण
कहै है;—

गाथा—गाहेण अप्पगाहा समुदसलिले सचेलअत्थेण ।

इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥ २७ ॥

संस्कृत—ग्राह्येण अल्पग्राह्याः समुद्रसलिले स्वचेलार्थेन ।

इच्छा येभ्यः निवृत्ताः तेषां निवृत्तानि सर्वदुःखानि ।

अर्थः—जो मुनि ग्राह्य कहिये ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक
तिनिकरि तो अल्पग्राह्य हैं थोरा ग्रहण करै है जैसैं कोऊ पुरुष बहुत
जलतैं भय्या जो समुद्र ता विपैं अपने वस्त्रके प्रक्षालनकूं वस्त्रके धोवनें
मात्र जल ग्रहण करै तैसैं बहुरि जैनि मुनिनिकें इच्छा निवृत्त भई तिन
कैं सर्व दुःख निवृत्त भये ॥

भावार्थः—जगतमें यह प्रसिद्ध है जो जिनकैं संतोष है ते मुखी हैं
इस न्यायकरि यह सिद्ध भया जो मुनिनिकें इच्छाकैं निवृत्त भई है
तिनिकें संसारके विषयसंबंधी इच्छा किंचित्मात्र भी नाहीं है देहतैं भी
विरक्त हैं तातैं परम संतोषी हैं, अर आहागदि किछूं ग्रहण योग्य हैं
तिनिमें भी अल्पकूं ग्रहण करैं हैं तातैं ते परमसंतोषी हैं ते परम मुखी
हैं, यह जिनसूत्रके श्रद्धानका फल है अन्यसूत्रमें यथार्थ निवृत्तिका प्ररू-
पण नाहीं तातैं कल्याणके मुखके अर्थनिकूं जिनसूत्रका सेवन निरंतर
करनां योग्य है ॥ २७ ॥

ऐसैं सूत्रपाहुडकूं पूर्ण किया ।

छप्पय ।

जिनवरकी ध्वनि मेघध्वानसम मुखतैं गरजै
गणधरके श्रुति भूमि वरषि अक्षर पद सरजै ।
सकल तत्व पराकास करै जगताप निवारै
हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै ॥
विधि पुण्यपाप अरु लोककी मुनि श्रावक आचरन फुनि ।
करि स्वपरभेद निर्णय सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि ॥१॥

दोहा ।

वर्द्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल ।
भव्य पाय शिवमग लहै नभूं तास गुणमाल ॥२॥

इति पं. जयचन्द्रछावड़ाकृत देशभाषावचनिका सहित श्रीकुन्दकु-
दन्स्वामि विरचित सूत्रप्राहुड समाप्त ॥ २ ॥

श्रीः ॥

अथ चारित्रपाहुड ।

—:—

(३)

दोहा ।

वीतराग सर्वज्ञ जिन वंदूं मन वच काय ।

चारित धर्म वखानियो सांचो मोक्षउपाय ॥ १ ॥

कुन्दकुन्दमुनिराजकृत चारितपाहुड ग्रंथ ।

प्राकृत गाथाबंधकी करूं वचनिका पंथ ॥ २ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि अर अब चारित्रपाहुड प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—तहां श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथम ही मंगलकै अर्थि इष्टदेवकूं नमस्कार करि चारित्रपाहुडका कहनेकी प्रतिज्ञा करैं हैं;—

गाथा—सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी ।

वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं ॥ १॥

णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं ।

मुक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥२॥ युग्मम् ।

संस्कृत—सर्वज्ञान् सर्वदर्शिनः निर्मोहान् वीतरागान् परमेष्ठिनः ।

वंदित्वा त्रिजगद्वंदितान् अर्हतः भव्यजीवैः ॥१॥

ज्ञानं दर्शनं सम्यक् चारित्रं शुद्धिकारणं तेषाम् ।

मोक्षाराधनहेतुं चारित्रं प्राभृतं वक्ष्ये ॥२॥ युग्मम् ॥

अर्थ—आचार्य कहैहैं जो मैं अरहंत परमेशीकूं बंदिकरि चारित्रपा-
हुड है ताहि कहूंगा, कैसे हैं अरहंत परमेशी—अरहंत ऐसा प्राकृत अक्षर
अपेक्षा तौ ऐसा अर्थ—अकार आदि अक्षर करि तौ अरि ऐसा तौ मोह-
कर्म, बहुरि रकार आदि अक्षर अपेक्षा रज ऐसा ज्ञानावरण दर्शनावरण
कर्म बहुरि तिसही रकारकरि रहस्य ऐसा अंतराय कर्म ऐसे चार घाति-
कर्म तिनिकूं हंत कहिए हननां घातनां जाकैं भया ऐसा अरहंत है। बहुरि
संस्कृत अपेक्षा 'अर्ह' ऐसा पूजा अर्थ विषैं धातु है ताका 'अर्हत्' ऐसा
निपजै तव पूजायोग्य होय ताकूं अर्हत् कहिये सो भव्यजीवनिकरि पूज्य
है। बहुरि परमेशी कहनेतैं परम कहिये उत्कृष्ट इष्ट कहिये पूज्य होय
सो परमेशी कहिये, अथवा परम जो उत्कृष्ट पद ताविषैं तिष्ठै ऐसा होय
सो परमेशी। ऐसा इंद्रादिकरि पूज्य अरहंत परमेशी है। बहुरि कैसे हैं
सर्वज्ञ हैं सर्व लोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष जानैं सो सर्वज्ञ
है। बहुरि कैसे हैं—सर्वदर्शी कहिये सर्व पदार्थनिके देखनेवाले हैं। बहुरि
कैसे हैं निर्मोह हैं मोहनीयनामा कर्मकी प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है ताकीरि
रहित हैं। बहुरि कैसे हैं—वीतराग हैं विशेषकरि जाकै राग दूरभया होय
सो वीतराग, सो जिनकैं चारित्रमोहकर्मका उदयतैं होय ऐसा रागद्वेषभी
नाही है। बहुरि कैसे हैं—त्रिजगद्वंद्व हैं तीन जगतके प्राणी तथा तिनिके
स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती तिनिकरि बंदिवे योग्य हैं। ऐसैं अरहंत
पदकूं विशेषकरि अन्य पद विशेषण करि अर्थ किया है। बहुरि सर्वज्ञ
पदकूं विशेषकरि अन्यपद विशेषण करिये ऐसैं भी अर्थ होय है तहां
अरहंत भव्यजीवनिकरि पूज्य हैं ऐसा विशेषण होय है। बहुरि चारित्र
कैसा है—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र ये तीन आत्माके परिणाम
है तिनिकै शुद्धताका कारण है चारित्र अंगीकार भये सम्यग्दर्शनादि
परिणाम निर्दोष होय हैं। बहुरि कैसा है चारित्र—मोक्षके आराधनका

कारण है ऐसा चारित्र है ताका पाहुड कहिये प्राभृत ग्रंथ कहूंगा, ऐसैं आचार्य मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करी है ॥ १-२ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनादि तीन भावनिका स्वरूप कहैं हैं;—

गाथा—जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं भणियं ।

णाणस्स पिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं ॥३॥

संस्कृत—यज्जानाति तत् ज्ञानं यत् पश्यति तच्च दर्शनं भणितम् ।

ज्ञानस्य दर्शनस्य च समापन्नात् भवति चारित्रं ॥३॥

अर्थ—जो जानैं सो ज्ञान है बहुरि जो देखै सो दर्शन है ऐसैं कहा है बहुरि ज्ञान अर दर्शनका समायोगतैं चारित्र होय है ॥

भावार्थ—जानैं सो तों ज्ञान अर देखै श्रद्धान होय सो दर्शन अर दोऊ एकरूप होय थिर होनां चारित्र है ॥ ३ ॥

आगैं कहै है—जो तीन भाग जीवके हैं तिनिकी शुद्धताकै अर्थ चारित्र दोय प्रकार कहा है;—

गाथा—एण तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया ।

तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविह चारित्तं ॥४॥

संस्कृत—एते त्रयोऽपि भावाः भवंति जीवस्य अक्षयाः अमेयाः ।

त्रयणामपि शोधनार्थं जिनभणितं द्विविधं चारित्रम् ॥

अर्थ—ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे ते अक्षय अर अनंत जीवके भाव हैं इनिके सोधनेकै अर्थ जिनदेव दोय प्रकार चारित्र कहा है ॥

भावार्थ—जाननां देखनां आचरण करनां ये तीन भाव जीवके अक्षयानंत हैं, अक्षय कहिये जाका नाश नहीं, अमेय कहिये अनंत, जाका

पार नांही, सर्व लोकालोककूं जाननेवाला ज्ञान है ऐसाही दर्शन है ऐसाही चरित्र है तथापि धातिकर्मके निमित्ततैं अशुद्ध हैं ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं तातैं श्रीजिनदेव तिनिके शुद्ध करनेकूं इनिका चारित्र आचरण करनां दोय प्रकार कहा है ॥ ४ ॥

आगैं दोय प्रकार कहा सो कहैं हैं;—

गाथा—जिण्णणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ।

विदियं संजमचरणं जिण्णणसदेसियं तं पि ॥ ५ ॥

संस्कृत—जिनज्ञानदृष्टिशुद्धं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ।

द्वितीयं संयमचरणं जिनज्ञानसंदेसितं तदपि ॥५॥

अर्थ—प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरणस्वरूप चारित्र है सो कैसा है—
जिनदेवका ज्ञान दर्शन श्रद्धान ताकारि किया हुवा शुद्ध है, बहुरि दूसरा संयमका आचरणस्वरूप चारित्र है सोही जिनदेवका इन करि दिखाया हुवा शुद्ध है ॥

भावार्थ—चारित्र दोय प्रकार कहा तहां प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरण कहा सो जो सर्वज्ञका आगममैं तत्त्वार्थका स्वरूप कहा ताकूं यथार्थ जानि श्रद्धान करनां अर ताके शंकादि अतीचार मल दोष कहे तिनिका परिहार करि शुद्ध करनां अर ताके निःशंकितादि गुणनिका प्रगट होनां सो सम्यक्त्वचरणचारित्र है, बहुरि जो महाव्रत आदि अंगीकार करि सर्वज्ञके आगममैं कहा तैसा संयमका आचरण करनां अर ताकैं अतीचार आदि दोषनिका दूर करनां सो संयमचरण चारित्र है, ऐसैं संक्षेपकारि स्वरूप कहा ॥ ५ ॥

आगैं सम्यक्त्वचरण चारित्रके मल दोषनिका परिहार करि आचरण करनां ऐसैं कहै है;—

गाथा—एवं चिय पाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाह ।

परिहरि सम्मत्तमला जिणमणिया तिविद्भजोण्ण ॥ ६ ॥

संस्कृत—एवं चैव ज्ञात्वा च सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन् ।

परिहर सम्यक्त्वमलान् जिनभणितान् त्रिविधयोगेन ॥ ६ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्वाचरण चारित्रकूं जानि अर मिथ्यात्व कर्मके उदयतैं भये जे शंकादिक दोष ते सम्यक्त्वके अशुद्ध करनेवाले मल हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं तिनिक्कूं मन वचन कायकारि भये जे तीन प्रकार योग तिनिकरि छोड़नैं ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका चरण चरित्र शंकादिदोष सम्यक्त्वके मल हैं तिनिक्कूं त्यागे शुद्ध होय हैं यातैं तिनिका त्याग करनेका उपदेश जिन-देवनैं किया है । ते दोष कहा ? सो कहिये है;—जो जिनवचन त्रिषैं वस्तुका स्वरूप कइया ताविषैं संशय करनां सो तौ शंका है, याके होतैं-सत्तभयके निमित्ततैं स्वरूपतैं चिगि जाय सो भी शंका है । बहुरि भोगनिका अभिलाष सो कांक्षा है याके होतैं भोगनिकै अर्थि स्वरूपतैं भ्रष्ट होय है । बहुरि वस्तुका स्वरूप कहिये धर्मविषैं ग्लानि करनां जुगुप्सा है याके होतैं धर्मात्मा पुरुषनिकै पूर्व कर्मके उदयतैं बाह्य मलिनता देखि मततैं चिगि जानां होय है । बहुरि देव गुरु धम तथा लौकिक कार्यनिविषैं मूढता कहिये यथार्थ स्वरूप न जाननां सो मूढ दृष्टि है याके होतैं अन्य लौकिक मानें जो सरागीदेव हिंसाधर्म सप्रथंगुरु तथा लोकनिनैं बिना विचारे मानें जे अनेक कियाविशेष तिनिनैं विभवादिककी प्राप्तिकै अर्थि प्रवृत्ति करनेतैं यथार्थ मततैं भ्रष्ट होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिविषैं कर्मके उदयतैं किछु दोष उपज्या देखि तिनिकी अवज्ञा करनीं सो अनुपगूहन है, याके होतैं धर्मतैं

छूट जाना होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकूं कर्मके उदयके वशतैं धर्मतैं चिगते देखि तिनिकी धिरता न करनीं सो अस्थितीकरण है याके होतैं जानिये याकै धर्मतैं अनुराग नाहीं अर अनुराग न होनां सो सम्यक्त्व में दोष है। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनितैं विशेष प्रीति न करनां सो अवात्सल्य है याके होतैं सम्यक्त्वका अभाव प्रगट सूचै है। बहुरि धर्मका माहात्म्य शक्तिसारू प्रगट न करनां सो अप्रभावना है याकै होतैं जानिये याके धर्मका माहात्म्यकी श्रद्धा प्रगट न भई। ऐसैं ये आठ दोष सम्यक्त्वके मिथ्यात्वके उदयतैं होय है, जहां ये तीव्र होय तहां तौ मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय जनावै है सम्यक्त्वका अभाव जनावै है, अर जहां किछु मंद अतीचार रूप होय तौ सम्यक्त्व प्रकृति नामा मिथ्यात्वकी प्रकृतिके उदयतैं होय ते अतीचार कहिये तहां क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका सद्भाव होय है; परमार्थ विचारिये तव अतीचार त्यागनेही योग्य हैं। बहुरि इनिके होतैं अन्यभी मल प्रगट होय हैं तहां तीन, तौ मूढता; देवमूढता, पाखंडमूढता, लोकमूढता। तहां देवमूढता तौ ऐसैं जहां किछु वरकी बांछाकरि सरागीदेवनिकी उपासना करनां तिनिकी पापाणादिविषै स्थापनाकरि पूजनां। बहुरि पाखंडमूढता ऐसैं—जहां ग्रंथ आरंभ हिंसादिक सहित पाखंडीभेषीं तिनिका सत्कार पुरस्कारादिक करनां। बहुरि लोकमूढता ऐसैं जहां अन्यमतीनिके उपदेशतैं तथा स्वयमेव बिना विचारे किछु प्रवृत्ति करनें लागि जाय जैसैं सूर्यकूं अर्घ देनां, ग्रहणविषै स्नान करनां, संक्रांतिविषै दान करनां, अग्निका सत्कार करनां, देहली घर कूवा पूजनां, गऊके पूंछकूं नमस्कार करनां, गऊका मूत्रकूं पीवनां रत्न घोड़ा आदि वाहन पृथ्वी वृक्ष शस्त्र पर्वत आदिकका सेवन पूजन करनां, नदी समुद्र आदिकूं तीर्थ मानि तिनिमें स्नान करनां, पर्वततैं पड़नां अग्निमें प्रवेश करनां इत्यादि जाननां। बहुरि छह अनायतन हैं—कुदेव, कुगुरु, क

अर इनके भक्त ऐसैं छह; इनिक्कू धर्मके ठिकानें जानि इनिक्की मन करि प्रशंसा करनां वचनकरि सराहना करना काय करि बंदनां करनां, ये धर्मके ठिकानें नांही तातैं इनिक्कू अनायतन कहे । बहुरि जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका गर्व करनां ऐसैं आठ मद हैं; तहां जाति तौ मातापक्ष है, अर लाभ धनादिक कर्मके उदयके आश्रय हैं, कुल पितापक्ष है, रूप कर्मउदयाश्रित है, तप अपना स्वरूप साधनेकूं है बल कर्म उदयाश्रित है; विद्याकर्मके क्षयोपशमाश्रित है ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है; इनिका गर्व कहा ! परद्रव्यके निमित्ततैं होय ताका गर्व करनां सो सम्यक्त्वका अभाव जनवै है अथवा मलिनता करै है । ऐसैं ये पच्चीस सम्यक्त्वके मल दोष हैं तिनिक्कू त्यागे सम्यक्त्व शुद्ध होय है, सो ही सम्यक्त्वाचरणचारित्रका अंग हैं ॥ ६ ॥

अगैं शंकादि दोष दूरि भये आठ अंग सम्यक्त्वके प्रगट होय हैं तिनिक्कू कहै है;—

गाथा—णिस्संकिंय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य ।

उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावण य ते अट्ठ ॥७॥

संस्कृत—निःशंकितं निःकांक्षितं निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी च ।

उपगूहनं स्थितीकरणं वात्सल्यं प्रभावना च ते

अष्टौ ॥ ७ ॥

अर्थ—निःशंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना ऐसैं आठ अंग हैं ॥

भावार्थ—ये आठ अंग पहिलैं कहे जे शंकादि दोष तिनिक्के अभावतैं प्रगट होय हैं, तिनिक्के उदाहरण पुराणनिमैं हैं तिनिक्की कथातैं जाननैं । निःशंकितक तौ अंजन चौरका उदाहरण है जानै जिनवचनविषैं शंका

न करी निर्भय होय छींकेकी लड़ काटि मंत्र सिद्ध किया । बहुरि निःकांक्षितका सीता अनंतमती सुतारा आदिका उदाहरण है जिनिनै भोगनिकै अर्थ धर्म न छोड्या । बहुरि निर्विचिकित्साका उदायनराजाका उदाहरण है जानै मुनिका शरीर अपवित्र देखि ग्लानि न करी । बहुरि अमूढदृष्टीका रेवतीराणीका उदाहरण है जानै विद्याधर अनेक महिमा दिखाई तौजु श्रद्धानतैं शिथिल न भई । बहुरि उपगूहनका जिनेंद्रभक्तसेठका उदाहरण है जानै चोर ब्रह्मचर्यभेषकरि छत्र चोऱ्या ताकूं ब्रह्मचर्यपदकी निंदा होती जानि ताका दोष छिपाया । बहुरि स्थितीकरणका वारिषेणका उदाहरण है जानै पुष्पदंत ब्राह्मणकूं मुनिपदतैं शिथिल भया जानि दृढ किया । बहुरि वात्सल्यका विष्णुकुमारका उदाहरण है जानै अकंपन आदि मुनिनिका उपसर्ग निवारण किया । बहुरि प्रभावना विषै वज्रकुमार मुनिका उदाहरण है जानै विद्याधरका सहाय पाय धर्म की प्रभावना करी । ऐसैं आठ अंग प्रगट भये सम्यक्त्वचरण चारित्र संभवै है जैसैं शरीरमें हाथ पग होय तैसैं सम्यक्त्वके अंग है, ये न होय तौ विकलांग होय ॥ ७ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र होय है,—

गाथा—तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय ।

जं चरह् णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥ ८ ॥

संस्कृत—तच्चैव गुणविशुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय ।

तत् चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तत् कहिये सो जिनसम्यक्त्व कहिये अरहंत जिनदेवकी श्रद्धा निःशंकित आदि गुणनिकरि विशुद्ध होय ताहि यथार्थज्ञान करि सहित आचरण करै सो प्रथम सम्यक्त्वचरणचारित्र है सो मोक्षस्थानकै अर्थ होय है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे तत्त्वार्थकी श्रद्धा निःशंकित गुणानिकारि सहित पचीस मल दोषनिकारि रहित ज्ञानवान् आचरण करै ताकूं सम्यक्त्व-चरण चारित्र कहिये सो यह मोक्षकी प्राप्तिकै अर्थ होय है जातैं मोक्ष-मार्गमें पहलैं सम्यग्दर्शन कहा है तातैं मोक्षमार्गमें प्रधान यह ही है ॥५॥

आगैं कहै है जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रकूं अंगीकार करि जो संयमचरण चारित्रकूं अंगीकार करै तो शीघ्रही निर्वाणकूं पावै;—

गाथा—सम्मत्तचरणसुद्धा संयमचरणस्स जइ व सुप्रसिद्धा ।

पाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं ॥ ९ ॥

संस्कृत—सम्यक्त्वचरणशुद्धाः संयमचरणस्य यदिवा सुप्रसिद्धाः।

ज्ञानिनः अमूढदृष्टयः अचिरं प्राप्नुवन्ति निर्वाणम् ॥९॥

अर्थ—जो ज्ञानी भये सो अमूढदृष्टी होय करि अर सम्यक्त्व चरण चारित्रकारि शुद्ध होय हैं अर जो संयमचरण चारित्रकारि सम्यक् प्रकार शुद्ध होय तो शीघ्रही निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—जो पदार्थनिका यथार्थज्ञानकारि मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टी होयकरि सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम आचरै तो शीघ्रही मोक्षकूं पावै संयम अंगीकार भये स्वरूपका साधनरूप एकाग्र धर्मध्यानके बलतैं सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप होय श्रेणी चढि अंतर्मुहूर्त्तमें केवलज्ञान उपजाय अघातिकर्मका नाशकरि मोक्ष पावै है, सो यह सम्यक्त्वचरणचारित्रकाही माहात्म्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है—जो, सम्यक्त्वके आचरणकरि अष्टहैं ते संयमका आचरण करै हैं तौऊ मोक्ष नाहीं पावै हैं;—

गाथा—सम्मत्तचरणभट्टा संयमचरणं चरन्ति जे वि णरा ।
 अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिन्वाणं ॥१०॥
संस्कृत—सम्यक्त्वचरणभ्रष्टाः संयमचरणं चरन्ति येऽपि नराः ।
 अज्ञानज्ञानमूढाः तथाऽपि न प्राप्नुवन्ति निर्वाणम् ॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वचरण चारित्रिकरि भ्रष्ट हैं अर संयम आचरण करै हैं तौऊ ते अज्ञानकरि मूढदृष्टी भये संते निर्वाणकूं नाहीं पावै हैं ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वचरणचारित्रविना संयमचरणचारित्र निर्वाणका कारण नांही है जातै सम्यग्ज्ञान विना तौ ज्ञान मिथ्या कहावै है सो ऐसै सम्यक्त्वविना चारित्रिकै मिथ्यापणां आवै है ॥ १० ॥

आगै प्रश्न उपजैहै जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रिके चिह्न कहा है तिनिकरि तिसकूं जानिये ताका उत्तररूप गाथामें सम्यक्त्वके चिह्न कहै हैं,—

गाथा—वच्छल्यं विणएण य अणुकंपाए सुदानदच्छाए ।
 मग्गगुणसंसणाए अवगूहणरक्खणाए य ॥ ११ ॥
 एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं ।
 जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण ॥ १२ ॥

संस्कृत—वात्सल्यं विनयेन च अनुकंपया सुदानदक्षया ।
 मार्गगुणशंसनया उपगूहनं रक्षणेन च ॥ ११ ॥
 एतैः लक्षणैः च लक्ष्यते आर्जवैः भावैः ।
 जीवः आराधयन् जिनसम्यक्त्वं अमोहेन ॥ १२ ॥

१—सुप्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें यह गाथा ही नहीं है, बचनिकाकी तीनों प्रतियोंमें है ।

अर्थ—जिनदेवकी श्रद्धा सम्यक्त्व ताकूं मोह कहिये मिथ्यात्व ताकारि रहित आराधता जीव है सो एते लक्षण कहिये चिह्न तिनिकारि लिखिये है जानिये है—प्रथम तौ धर्मात्मा पुरुषनिकै जाकै वात्सल्यभाव होय जैसे तत्कालकी प्रसूतिवान गऊकै बच्चासूं प्रीति होय तैसी धर्मात्मासूं प्रीति होय, एक तौ ये चिह्न है । बहुरि सम्यत्वादि गुणनिकारि अधिक होय ताका विनय सत्कारादिक जाकै अधिक होय; ऐसा विनय, एक ये चिह्न है । बहुरि दुखी प्राणी देखि करुणा भावस्वरूप अनुकंपा जाकै होय, एक ये चिह्न है; बहुरि अनुकंपा कैसी होय भलै प्रकार दानकारि योग्य होय । बहुरि निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्गकी प्रशंसाकारि सहित होय, एक ये चिह्न है; जो मार्गकी प्रशंसा न करता होय तौ जानिये याकै मार्गकी दृढ श्रद्धा नांही । बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकै कर्मके उदय तैं दोष उपजै ताकूं विख्यात न करै ऐसा उपगूहन भाव होय, एक ये चिह्न है । बहुरि धर्मात्माकूं मार्ग तैं चिगजा जानि तिसकी धिरता करै ऐसा रक्षण नाम चिह्न है याकूं स्थितीकरणभी कहिये । बहुरि इनि सर्व चिह्ननिकां, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है जातैं निष्कपट परिणामतैं ये सर्व चिह्न प्रगट होय है सत्यार्थ होय है, एते लक्षणनिकारि सम्यग्दृष्टीकूं जानिये है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वभाव मिथ्यात्वकर्मके अभावतैं जीवनिका निज-भाव प्रगट होय है सो वह भाव तौ सूक्ष्म है छद्मस्थज्ञान गोचर नांही, अर ताके बाह्य चिह्न सम्यग्दृष्टी के प्रगट होय है तिनिकारि सम्यक्त्व भया जानिये है । ते वासत्य आदि भाव कहे ते आपके तौ आपके अनुभव गोचर होय है अर अन्यके ताकी वचन कायकी क्रिया तैं जानिये है, तिनिकी परीक्षा जैसे आपके क्रियाविशेष तैं होय है तैसें अन्यकीभी क्रियाविशेष तैं परीक्षा होय है, ऐसा व्यवहार है; जो ऐसा न

होय तौ सम्यक् व्यवहार मार्गका लोप होय तातैं व्यवहारी प्राणीकूं^५ व्यवहारहीका आश्रय कहा है परमार्थ सर्वज्ञ जानै है ॥ ११-१२ ॥

आगैं कहै है जो ऐसे कारणनिकर सहित होय तौ सम्यक्त्व छोड़ै है,

गाथा—उच्छाहभावणासं पसंससेवा कुदंसणे सद्धा ।

आण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं ॥ १३ ॥

संस्कृत—उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवा कुदर्शने श्रद्धा ।

अज्ञानमोहमार्गे कुर्वन् जहाति जिनसम्यक्त्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ—कुदर्शन कहिये नैयायिक वैशेषिक सांख्यमत मीमांसकमत वेदान्तमत बौद्धमत चार्वाकमत शून्यवादके मत इनिके भेष तथा तिनिंके भाषे पदार्थ बहुरि श्वेतांबरादिक जैनाभास इनिकै विषैं श्रद्धा तथा उत्साहभावना तथा प्रशंसा तथा इनिकी उपासना सेवा करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकूं छोड़ै है, कैसा है कुदर्शन अज्ञान अर मिथ्यात्वका मार्ग है ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं यह जीव संसारमें भ्रमै है सो काई भाग्यके उदयतैं जिनमार्गकी श्रद्धा भई होय अर मिथ्यामतके प्रसंगकरि मिथ्यामतकै विषैं किछु कारणतैं उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा उपजै तो सम्यक्त्वका अभाव हांय जाय जातैं जिनमत सिवाय अन्यमत है तिनिमें छद्मस्थ अज्ञानीनि करि प्रख्या मिथ्या पदार्थ तथा मिथ्याप्रवृत्तिरूप मार्ग है ताकी श्रद्धा आवै तब जिनमतकी श्रद्धा जाती रहै तातैं मिथ्यादृष्टीनिका संसर्गही न करनां, ऐसा भावार्थ जाननां ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे ते सुदर्शन विषैं होय तो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकूं न छोड़ै है;—

गाथा—उच्छाहभावणासं पसंससेवा सुदंसणे सद्धा ।

ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण ॥ १४ ॥

संस्कृत—उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवाः सुदर्शने श्रद्धा ।

न जहाति जिनसम्यत्त्वं कुर्वन् ज्ञानमार्गेण ॥१४॥

अर्थ—सुदर्शन कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक् मार्ग ताविषैं उत्साहभावना कहिये ग्रहण करनेका उत्साह अर बारंवार चितव-
नरूप भाव बहुरि प्रशंसा कहिये मन वचन कायकरि भला जानि स्तुति
करनां सेवा कहिये उपासना पूजनादिक करनां बहुरि श्रद्धा करनी ऐसैं
ज्ञानमार्गकरि यथार्थ जानि करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप
सम्यक्त्व है ताहि न छोड़ै है ॥

भावार्थ—जिनमतविषैं उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा जाकै
होय सो सम्यक्त्वतैं च्युत न होई है ॥ १४ ॥

आगैं अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र त्यागका उपदेश करै है;—

गाथा—अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते ।

अह मोहं सारंभं परिहर धम्मं अहिंसाए ॥ १५ ॥

संस्कृत—अज्ञानं मिथ्यात्वं वर्जय ज्ञाने विशुद्धसम्यक्त्वे ।

अथ मोहं सारम्भं परिहर धर्मे अहिंसायाम् ॥ १५ ॥

अर्थ:—आचार्य कहै हैं जो हे भव्य ! तू ज्ञानके होतैं तौ अज्ञानकूं
बार्जि त्यागकरि, बहुरि विशुद्ध सम्यक्त्वेक होतैं मिथ्यात्वकूं त्यागकरि,
बहुरि अहिंसालक्षण धर्मके होतैं आरंभसहित मोहकूं परिहरि ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति भये फेरि मिथ्यादर्शन
ज्ञान चारित्रविषैं मति प्रवर्त्तौ, ऐसा उपदेश है ॥ १५ ॥

आगैं फेरि उपदेश कौैं हैं;—

गाथा—पव्वञ्ज संगचाए पयट सुतवे सुसंजमे भावे ।

होइ सुविसुद्धजाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते ॥ १६ ॥

संस्कृत—प्रव्रज्यायां संगत्यागे प्रवर्त्तस्व सुतपसि सुसंयमे भावे ।

भवति सुविशुद्धध्यानं निर्मोहे वीतरागत्वे ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भव्य ! तू संग कहिये परिग्रहका त्याग जामैं होय ऐसी दीक्षा ग्रहण करि बहुरि भलै प्रकार संयमस्वरूपभाव होतैं सम्यक् प्रकार तप विपैं प्रवर्त्तन करि जातैं तेरै मोहरहित वीतरागपणा होतैं निर्मल धर्म शुद्ध ध्यान होय ॥

भावार्थ—निर्ग्रंथ होय दीक्षा ले संयमभावकरि भलै प्रकार तपविषैं प्रवर्त्तै तब संसारका मोह दूरि होय वीतरागपणां होय तब निर्मल धर्मध्यान शुद्धध्यान होय है ऐसैं ध्यानतैं केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है तातैं ऐसा उपदेश है ॥ १६ ॥

आगैं कहै है जो ये जीव अज्ञान अर मिथ्यात्वके दोष करि मिथ्या-मार्गविषैं प्रवर्त्तै हैं;—

गाथा—मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं ।

वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्ताबुद्धिउदएण ॥ १७ ॥

संस्कृत—मिथ्यादर्शनमार्गे मलिने अज्ञानमोहदोषैः ।

वध्यन्ते मूढजीवाः मिथ्यात्वा बुद्ध्युदयेन ॥ १७ ॥

अर्थ—मूढ जीवहैं ते अज्ञान अर मोह कहिये मिथ्यात्व इनिके दोष-निकरि मलिन जो मिथ्यादर्शन कहिये कुमतका मार्ग ताविषैं मिथ्यात्व अर अबुद्धि कहिये अज्ञान तिनिके उदयकरि प्रवर्त्तै है ॥

भावार्थ—ये मूढ़जीव मिथ्यात्व अर अज्ञानके उदयकरि मिथ्यामार्ग-
विषै प्रवर्तै है जातै मिथ्यात्व अज्ञानका नाश करनां यह उपदेशहै ॥१७॥

आगै कहै है जो सम्यग्दर्शन ज्ञान श्रद्धानकरि चारित्रके दोष दूरि
होयहै;—

गाथा—संममदंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया ।

सम्मेण य सदहदि परिहरदि चरित्तजे दोसे ॥१८॥

संस्कृत—सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान् ।

सम्यक्त्वेन च श्रद्धाति च परिहरति चारित्रजान्

दोषान् ॥ १८ ॥

अर्थ—यह आत्मा सम्यग्दर्शन करि तौ सत्तामात्र वस्तुकूं देखै है
बहुनि सम्यग्ज्ञानकरि द्रव्य अर पर्यायनिकूं जानै है बहुनि सम्यक्त्वकरि
द्रव्य पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तुका श्रद्धान करै है, बहुनि ऐसैं देखनां
जाननां श्रद्धान होय तब चारित्र कहिये आचरण ताविषै उपजे जे दोष
तिनिकूं छोड़ै है ॥

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप द्रव्य पर्यायात्मक सत्ता स्वरूप है सो
जैसा है तैसा देखै जानै श्रद्धान करै तब आचरण शुद्ध करै सो सर्व-
ज्ञके आगमते वस्तुका निश्चयकरि आचरण करनां । तहां वस्तु है सो
द्रव्य पर्याय स्वरूप है । तहां द्रव्यका सत्तालक्षण है तथा गुणपर्याय-
वानकूं द्रव्य कहिये । बहुनि पर्याय है सो दोय प्रकार है; सहवर्ती, अर
क्रमवर्ती । तहां सहवर्तीकूं गुण कहिये है, क्रमवर्तीकूं पर्याय कहिये है ।
तहां द्रव्य सामान्यकरि एक है तौऊ विशेषकरि छह हैं; जीव, पुद्गल, धर्म,
अधर्म, आकाश, काल ऐसैं । तहां जीवकै दर्शनमयी चेतना तौ गुण है
अर मति आदिक ज्ञान अर क्रोध मान माया लोभ आदि तथा नर नारक

आदि विभाव पर्याय हैं, स्वभावपर्याय अगुरुलघु गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन है। बहुरि पुद्गल द्रव्यकै स्पर्श रस गंध वर्णरूप मूर्त्तिकपणां तौ गुण है स्पर्श रस गंध वर्णका भेदरूप परिणमन तथा अणुतै स्कंधरूप होनां तथा शब्दबंध आदिरूप होनां इत्यादि पर्याय हैं। बहुरि धर्म अधर्म द्रव्यकै गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्वपणां तौ गुण है अर इस गुणके जीव पुद्गलके गति स्थितिके भेदनिर्तै भेद होय ते पर्याय हैं, तथा अगुरुलघु गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन होय सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि आकाशकै अवगाहना गुण है अर जीव पुद्गल आदिके निमित्ततै प्रदेश भेद कल्पिये ते पर्याय हैं, तथा हानिवृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि काल द्रव्यकै वर्तना तौ गुण है अर जीव पुद्गलके निमित्ततै समय आदिकल्पना है सो पर्याय है याकूं व्यवहार कालभी कहिये हैं, बहुरि हानि वृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। इत्यादि इनिका स्वरूप जिन आगम तै जानि देखनै जाननां श्रद्धान करनां, यातै चारित्र शुद्ध होय है। विना ज्ञान श्रद्धान आचरण शुद्ध नाहीं होय है, ऐसै जाननां ॥ १८ ॥

आगै कहै है जो ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते मोह-रहित जीवकै होय हैं इनिकूं आचरता शीघ्र मोक्ष पावै है;—

गाथा—एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स ।

नियगुणमाराहंतो अचिरेण वि कम्म परिहरह्म ॥ १९ ॥

संस्कृत—एते त्रयो पि भावाः भवंति जीवस्स मोहरहितस्य ।

निजगुणमाराधयन् अचिरेण अपि कर्म परिहरति ॥ १९ ॥

अर्थ—ये पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते निश्चय करि मोह कहिये मिथ्यात्व ताकरि रहित होय तिस जीवकै होय हैं तब

यह जीव अपना निजगुण जो शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतना ताकूं आराधता संता थोरेही कालमें कर्मका नाश करै है ॥

भावार्थ—निजगुणका ध्यानतैं शीघ्रही केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावै हैं ॥ १९ ॥

आगैं इस सम्यक्त्वचरणचारित्रिके कथनकुं संकोचै है;—

गाथा—संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं ।

सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥ २० ॥

संस्कृत—संख्येयामसंख्येयगुणां संसारिमेरुमात्रां णं ।

सम्यक्त्वमनुचरंतः कुर्वन्ति दुःखक्षयं धीराः ॥ २० ॥

अर्थ—सम्यक्त्वं आचरण करते धीर पुरुष हैं ते संख्यातगुणी तथा असंख्यातगुणी कर्मनिका निर्जरा करैं हैं, बहुरि कर्मनिके उदयतैं भया संसारका दुःख ताका नाश करैं हैं, कैसे हैं कर्म; संसारी जीवनिका मेरु कहिये मर्यादा मात्र है, सिद्ध भये पीछैं कर्म नाहीं हैं ॥

भावार्थ—इस सम्यक्त्वके आचरण भये प्रथमकालमें तौ गुणश्रेणी निर्जरा होय है सो तौ असंख्यातके गुणकाररूप है बहुरि पीछैं जेतैं संयमका आचरण न होय तेतैं गुणश्रेणी निर्जरा न होय तहां संख्यातका गुणकाररूप होय है तातैं संख्यातगुण अर असंख्यातगुण ऐसैं दोऊ वचन कहे, बहुरि कर्म तौ संसार अवस्था है जेतैं हैं तिनमें दुःखका कारण मोह कर्म हैं तिसमें मिथ्यात्व कर्म प्रधान है सो सम्यक्त्व भये मिथ्यात्वका तौ अभावही भया अर चारित्रमोह दुःखका कारणहै सो

(१) मुद्रित सटीकसंस्कृत प्रतिमें 'संसारिमेरुमत्ता' इसके स्थानमें 'सासारि मेरुमत्ता' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'सर्वपमेरुमात्रा' इस प्रकार है ।

येहू जेतै है तेतै ताकी निर्जरा करै हे ऐसै अनुक्रमतै दुःख क्षय होय है ॥ संयमाचरण भये सर्व दुःखका क्षय होय ही गा, इहां सम्यक्त्वका माहात्म्य ऐसा है सो सम्यक्त्वाचरण भये संयमाचरण भी शीघ्रही होयहै, यातै सम्यक्त्वकूं मोक्षमार्गमें प्रधान जानि याहीका वर्णन पहलै किया है ॥२०॥

आगै संयमाचरण चारित्रकूं कहै है;—

गाथा—दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं ।

सायारं सगंग्थे परिग्रहा रहिय खलु णिरायारं ॥२१॥

संस्कृत—द्विविधं संयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारं ।

सागारं सग्न्ये परिग्रहाद्रहिते खलु निरागारम् ॥२१॥

अर्थ—संयमचरण चारित्र है सो दोय प्रकार है सागार तथा निरागार ऐसै, तहां सागारतौ परिग्रहसहित श्रावककै होय है बहुदि निरागार परिग्रहतै रहित मुनिकै होय है यह निश्चय है ॥ २१ ॥

आगै सागार संयमाचरणकूं कहै है,—

गाथा—दंसण बय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य ।

बंभारंभपरिग्रह अणुमण उदिष्ट देसविरदो य ॥२२॥

संस्कृत—दर्शनं व्रतं सामायिकं प्रोषधं सचित्तं रात्रिभुक्तिश्च ।

ब्रह्म आरंभः परिग्रहः अनुमतिः उद्दिष्ट देशविरतश्च ॥

अर्थ—दर्शन, व्रत, सामायिक; अर प्रोषध आदिका नामका एक देश है अर नाम ऐसै कहनां प्रोषधउपवास सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग उद्दिष्ट्याग, ऐसै ग्यारा प्रकार देशविरत है ॥

भावार्थ—ये सागार संयमाचरणके ग्यारह स्थान हैं इनिकूं प्रतिमा भी कहिये ॥ २२ ॥

आगौं इनि स्थाननिविषै संयमका आचरण कौन प्रकार है सो कहै है ।

गाथा—पंचैव गुणव्याङ् गुणव्याङ् हवन्ति तद् तिष्ठि ।

सिक्खावय चत्वारि य संजमचरणं च सायारं ॥ २३ ॥

संस्कृत—पंचैव अणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति तथा त्रीणि ।

शिक्षाव्रतानि चत्वारि संयमचरणं च सागारम् ॥ २३ ॥

अर्थ—अणुव्रत पांच गुणव्रत तीन शिक्षाव्रत चार ऐसैं बारह प्रकार करि संयमचरण चारित्र है सो सागार है, ग्रंथसहित श्रावककै होय है तातैं सागार कहा है ।

इहां प्रश्न—जो यह बारह प्रकार तो व्रतके कहे अर पहलैं गाथामैं ग्यारह नाम कहे तिनिमैं प्रथम दर्शन नाम कहा तामैं ये व्रत कैसैं होय है । ताका समाधान ऐसा जो अणुव्रत ऐसा नाम किंचित् व्रतका है सो पंच अणुव्रतमैं किंचित् इहांमी होय है तातैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती ही है, याका नाम दर्शनही कहा तहां ऐसा नाम जाननां जो याकै केवल सम्यक्त्वही होय है अर अव्रती है अणुव्रत नाहीं याकै अणुव्रत अतीचारसहित होय है तातैं व्रतीनाम न कहा दूजी प्रतिमामैं अणुव्रत अतीचाररहित पालै तातैं व्रतनाम कहा है, इहां सम्यक्त्वकै अतीचार टालै है सम्यक्त्वही प्रधान है तातैं दर्शनप्रतिमा नाम है । अन्य ग्रंथनिमैं याका स्वरूप ऐसैं कहा है जो आठ मूलगुण पालै सात व्यसन त्यागै सम्यक्त्व अतीचाररहित शुद्ध जाकै होय सो दर्शन प्रतिमाका धारक है तहां पांच उदंबरफल अर मद्य मांस सहत इनि आठनिका त्याग करै सो आठ मूलगुण हैं । अथवा कोई ग्रंथमैं ऐसैं कहा है जो पांच अणुव्रत पालै अर मद्य मांस मधु इनिका त्याग करै ऐसैं आठ मूलगुण हैं, सो यांगं विरोध नाहीं है विवक्षाका भेद है । पांच उदंबरफल अर तीन मकारका

त्याग कहनेतैं जिनि वस्तुनिमै साक्षात् त्रस दीखैं ते सर्वही वस्तु भक्षण नहैं करै ! देवादिक निमित्त तथा औषधादिकनिमित्त इत्यादि कारणनितैं दीखता त्रस जीवनि का घात न करै, ऐसा आशय है, सो यामैं तौ अहिंसा अणु-व्रत आया । अर सात व्यसनके त्यागमैं झूठका अर चोरीका अर पर-स्त्रीका त्याग आया अर व्यसनहीके त्यागमैं अन्याय परधन परस्त्रीका ग्रहण नांही, यामैं अतिलोभका त्यागतैं परिग्रहका घटावनां आया, ऐसैं पांच अणुव्रत आवैं हैं । इनिके अतीचार टलै नांही तातैं अणुव्रती नाम न पावै । ऐसैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती है तातैं देशविरत सागारसंयमचरण चारित्रमैं याकुंभी गिण्या है ॥ २३ ॥

आगैं पांच अणुव्रतका स्वरूप कहै है;—

गाथा—थूल तसकायवहे थूल मोषे अदत्तथूल य ।

परिहारो परमहिला परग्रहारंभ परिमाणं ॥ २४ ॥

संस्कृत—स्थूले त्रसकायवधे स्थूलायां मृषायां अदत्तस्थूले च ।

परिहारः परमहिलायां परिग्रहारंभपरिमाणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—थूल जो त्रसकायका घात, थूलमृशा कहिये असत्य, थूल अदत्ता कहिये परका न दिया धन, परमहिला कहिये परकी स्त्री इनिका तौ परिहार कहिये त्याग; बहुरि परिग्रह अर आरंभ का परिमाण ऐसैं पांच अणुव्रत हैं ॥

भावार्थ—इहां थूल कहनेमैं ऐसा अर्थ जाननां—जामैं अपनां मरण होय परका मरण होय अपनां घर विगडै परका घर विगडै राजका दंड-योग्य होय पंचनिकै दंडयोग्य होय ऐसैं मोटे अन्यायरूप पापकार्य जाननैं,

१ मुद्रित सटीकसंस्कृतप्रतिमें 'अदत्तथूले' के स्थानमें 'तितिक्षथूले' ऐ-पाठ है तथा 'परमहिला' इसके स्थानमें 'परमपिम्मे' ऐसा पाठ है ।

ऐसे स्थूल पाप राजादिकके भयतैं न करे सो व्रत नाहीं इनिकूं तीव्रक-
षायके निमित्ततैं तीव्रकर्मबंधके निमित्त जानि स्वयमेव न करनेके भावरूप
त्याग होय सो व्रत है । तथा याके म्यारह स्थानक कहे तिनमें ऊपरि
ऊपरि त्याग बधता जाय है सो याकी उत्कृष्टता ताई ऐसा है जो जिनि
कार्यनिमें त्रस जीवनिक् बंधा होय ऐसे सर्वही कार्य छूटि जाय हैं तातैं
सामान्य ऐसा नाम कहा है जो त्रसहिंसाका त्यागी देशव्रती होय है ।
याका विशेष कथन अन्य ग्रंथनिमें जाननां ॥ २४ ॥

आगैं तीन गुणव्रतानिकूं कहै है;—

ग्राथा—दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं ।

भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिणि ॥२५॥

इतिस्कृत—दिग्विदिग्मानं प्रथमं अनर्थदंडस्य वर्जनं द्वितीयम् ।

भोगोपभोगपरिमाणं इमान्येव गुणव्रतानि त्रीणि ॥२५॥

अर्थ—दिशा विदिशाविधैं गमनका परिमाण सो प्रथम गुणव्रत है
बहुते अनर्थदंडका वर्जनां सो द्वितीय गुणव्रत है बहुते भोग उपभोगका
परिमाण सो तीसरा गुणव्रत है ऐसैं ये तीन गुणव्रत हैं ॥

भावार्थ—इहां गुण शब्द तौ उपकारका वाचक है ये अणुव्रतानिकूं
उपकार करैं हैं । बहुते दिशा विदिशा कहिये पूर्वदिशा आदिकहैं तनि-
विधैं गमन करनेकी मर्याद करै । बहुते अनर्थदंड कहिये जिनि कार्यनिमें
अपना प्रयोजन न सधै ऐसैं जे पापकार्य तिनिकूं न करै । इहां कोई
पूछै—प्रयोजन विना तौ कोईभी जीव कार्य न करै है सो किछू प्रयोजन
विचार ही करै है अनर्थदंड कहा । ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी
आवक होय सो प्रयोजन अपने पद यांत्रिक विचारै है, पद सिवाय सो
अनर्थ, अर पापी पुरुषनिकै तौ सर्व ही पाप प्रयोजन हैं तिनिकी कहा

कथा । बहुरि भोग कहनेमें भोजनादिक उपभोग कहनेमें स्त्री वस्त्र आभूषण वाहनादिकनिका परिमाण कौरे । ऐसैं जाननां ॥ २५ ॥

आगैं च्यार शिक्षाव्रतनिकूं कहै है;—

गाथा—सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं ।

तइयं च अतिहिपुञ्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ २६ ॥

संस्कृत—सामाइकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधः भणितः ।

तृतीयं च अतिथिपूजा चतुर्थं सल्लेखना अन्ते ॥ २६ ॥

अर्थ—सामायिक तौ पहला शिक्षाव्रत है तेसैं ही दूजा प्रोषध व्रत है तीजा अथितिका पूजन है चौथा अन्तसमय सल्लेखना व्रत है ॥

भावार्थ—इहां शिक्षा शब्दकरि तौ ऐसा अर्थ सूचै है जो आगामी मुनिव्रत है ताकी शिक्षा इनिमें है जो मुनि होगा तब ऐसैं रहनां होगा । तहां सामायिक कहने तैं तौ राग द्वेषका त्यागकरि सर्व गृहारभसंबंधी क्रियातैं निवृत्ति करि एकान्त स्थानक बैठि प्रभात मध्याह्न अपराह्न किछु कालकी मर्यादकरि अपनां स्वरूपका चिंतवन तथा पंचपरमेष्ठीकी भक्तिका पाठ पढ़ना तिनिकी बंदना करनीं इत्यादि विधान करनां सामायिक जाननां । बहुरि तैसैंही प्रोषध कहिये आठैं चौदसि पर्वनिविषैं प्रतिज्ञा लेकरि धर्मकार्यनिमें प्रवर्तनां सो प्रोषध है । बहुरि अतिथि कहिये मुनि तिनिका पूजन करनां आहारदान करनां सो अतिथिपूजन है । बहुरि अंतसमयविषैं कायका अर कषायका कृश करनां समाधिभरण करनां सो अंतसल्लेखना है; ऐसैं च्यार शिक्षाव्रत हैं ॥

इहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रमें तौ तीन गुणव्रतमें देशव्रत कहा अर भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतमें कहा अर सल्लेखनां न्यारा कहा सो कैसैं ?

ताका समाधान—जो यह विवेक्षाका भेद है इहां देशव्रत दिग्ब्रतमें गार्भित है अर सल्लेखना शिक्षाव्रतमें कहा है, किछु विरोध है नाहीं ॥ २६ ॥

आगैं कहै है संयमचरण चारित्रिविषैं ऐसैं तौ श्रावक धर्म कहाा अब यतिधर्मकूं कहै है—

गाथा—एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं ।

शुद्धं संजमचरणं जहधम्मं णिकलं वोच्छे ॥ २७ ॥

संस्कृत—एवं श्रावकधर्मं संयमचरणं उपदेशितं सकलम् ।

शुद्धं संयमचरणं यतिधर्मं निष्कलं वक्ष्ये ॥ २७ ॥

अर्थ—एवं कहिये या प्रकार श्रावक धर्म स्वरूप संयमचरण तौ कहाा, कैसा है यह—सकल कहिये कलासहित है, एक देशकूं कला कहिये; अब यतिधर्मका धर्मस्वरूप संयमचरण है ताहि कहूंगा ऐसैं आचार्यनैं प्रतिज्ञा करी है, कैसा है यतिधर्म—शुद्ध है निर्दोष है जामैं पापचरणका लेश नाहीं है, बहुरि कैसा है, निकल कहिये कलातैं तै है संपूर्ण है श्रावक धर्मकी, ज्यों एकदेश नाहीं है ॥ २७ ॥

आगैं यति धर्मकी सामग्री कहै है;—

गाथा—पंचेन्द्रियसंवरणं पंच वया पंचविसकिरियासु ।

पंच समिदि तय गुत्ती संयमचरणं निरायारं ॥ २८ ॥

संस्कृत—पंचेन्द्रियसंवरणं पंच व्रताः पंचविंशतिक्रियासु ।

पंच समितयः तिस्रः गुप्तयः संयमचरणं निरागारम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पंच इंद्रियनिका संवर, पांच व्रत ते पच्चीस क्रिया के सद्भाव होतैं होय, बहुरि पांच समिति, तीन गुप्ति ऐसैं निरागार संयमचरण चारित्र होय है ॥ २८ ॥

आगैं पांच इंद्रियके संवरणका स्वरूप कहै है;—

गाथा—अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदब्बे अजीवदब्बे य ।

ण करेह रायदोसे पंचेन्द्रियसंवरो भणिओ ॥ २९ ॥

संस्कृत—अमनोज्ञे च मनोज्ञे सजीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये च ।

न करोति रागद्वेषौ पंचेंद्रियसंवरः भणितः ॥ २९ ॥

अर्थ—अमनोज्ञ तथा मनोज्ञ ऐसे जे पदार्थ जिनिकुं लोक अपने मानै ऐसे सजीवद्रव्य स्त्रीपुत्र आदिक, अर अजीवद्रव्य धन धान्य आदि सर्व पुद्रलद्रव्य आदि, तिनिविषै राग द्वेष न करै सो पांच इन्द्रियनिका संवर कहा है ॥

भावार्थ—इन्द्रियगोचर जे जीवअजीवद्रव्य हैं ते इन्द्रियनिके ग्रहण में आवै है तिनिमें यह प्राणी काहूकुं इष्ट मानि राग करै है काहूकुं अनिष्ट मानि द्वेष करै है ऐसैं राग द्वेष मुनि नाहीं करै है ताकै संयमचरण चारित्र होय है ॥ २९ ॥

आगैं पांच व्रतनिका स्वरूप कहै है;—

गाथा—हिंसाविरई अहिंसा अस्वचविरई अदत्तविरई य ।

तुरियं अवंभविरई पंचम संगमि विरई य ॥ ३० ॥

संस्कृत—हिंसाविरतिरहिंसा असत्यविरतिः अदत्तविरतिश्च ।

तुर्यं अन्नद्विविरतिः पंचमं संगे विरतिः च ॥ ३० ॥

अर्थ—प्रथम तौ हिंसातैं विरति सो अहिंसा है, बहुरि दूजा असत्य-विरति है; बहुरि तीजा अदत्तविरति है, बहुरि चौथा अन्नद्विविरति है पांचमां परिग्रहविरति है ॥

भावार्थ इनि पांच पापनिका सर्वथा त्याग जिनमें होय ते पांच महाव्रत हैं ॥ ३० ॥

आगैं इनिकुं महाव्रत ऐसा नाम काहेतैं है सो कहै है;—

गाथा—साहंति जं महला आयरिमं जं महलपुव्वेहिं ।

जं च महलाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं ॥ ३१ ॥

संस्कृत—साधयंति यन्महांतः आचरितं यत् महत्पूर्वं ।

यच्च महन्ति ततः महाव्रतानि एतस्माद्धेतोः तानि ३१

अर्थ—महत्का कहिये महंत पुरुष जिनिकूं साथै आचरैं बहुरि पहलैं भी जिनिकूं महंत पुरुषनि आचरे बहुरि ये व्रत आपही महान हैं जातैं जिनिमैं पापका लेश नाहीं ऐसैं ये पांच महाव्रत हैं ॥

भावार्थ—जिनिकूं बड़े पुरुष आचरण करैं अर आप निर्दोष होय ते ही बड़े कहावैं, ऐसैं इनि पांच व्रतनिकूं महाव्रत संज्ञा है ॥ ३१ ॥

आगैं इनि पांच व्रतनिकी पच्चीस भावना है तिनिकूं कहै है तिनिमैं प्रथमही अहिंआव्रतकी पांच भावना कहिये हैः—

गन्धार्थ—वयगुप्ती मणगुप्ती इरियासमिदी सुदाणनिक्खेवो ।

अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति ॥ ३२ ॥

संस्कृत—वचोगुप्तिः मनोगुप्तिः ईर्यासमितिः सुदाननिक्षेपः

अवलोक्य भोजनेन अहिंसाया भावना भवन्ति ॥ ३२ ॥

अर्थ—वचनगुप्ति अर मनोगुप्ति ऐसैं दोय तौ गुप्ति अर ईर्यासमिति बहुरि भलै प्रकार कमंडलु आदिका ग्रहण निक्षेप यह आदाननिक्षेपणा समिति बहुरि नाकैं देखि विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करनां यह एषणा समिति ऐसैं ये पांच अहिंसा महाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—भावना नाम बार बार तिसहीका अभ्यास करना ताका है सो इहां प्रवृत्ति निवृत्तिमैं हिंसा लागै ताका निरंतर यत्न राखै तब अहिंसाव्रत पलै यातैं इहां योगनिकी निवृत्ति करनी तौ भलैप्रकार गुप्ति-रूप करनी अर प्रवृत्ति करनी तौ समिप्ति रूप करनी ऐसैं निरंतर अभ्यासतैं अहिंसा महाव्रत दृढ़ रहै है, ऐसा आशयतैं इनिकूं भावना कही है ॥ ३२ ॥

आगैं सत्यमहाव्रतकी भावना कहै हैः—

गाथा—क्रोधभयहासलोहामोहाविपरीयभावणा चेव ।

विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति ॥३३॥

संस्कृत—क्रोधभयहास्यलोभमोहविपरीतभावनाः च एव ।

द्वितीयस्य भावना इमा पंचैव च तथा भवन्ति ॥३३॥

अर्थ—क्रोध भय हास्य लोभ मोह इनिहैं विपरीत कहिये उलटा इनिका अभाव ये द्वितीय व्रत जो सत्यमहाव्रत ताकी भावना हैं ॥

भावार्थ—असत्यवचनकी प्रवृत्ति होय है सो क्रोधतैं तथा भयतैं तथा हास्यतैं तथा लोभतैं तथा परद्रव्यतैं मोहरूप मिथ्यात्वतैं होय है सो इनिका त्याग भये सत्य महाव्रत दृढ़ रहै है ।

बहुरि तत्त्वार्थसूत्रमैं पांचमी भावना अनुवीचीभाषण कही है सो याका अर्थ यहु जो—जिनसूत्रकै अनुसार वचन बोलै अर इहां मोहका अभाव कहा सो मिथ्यात्वके निमित्ततैं सूत्रविरुद्ध कहै मिथ्यात्वका अभाव भनै सूत्रविरुद्ध न कहै सो ही अनुवीची भाषणकाभी यह ही अर्थ भया, यामैं अर्थ भेद नाहीं है ॥ ३३ ॥

आगैं अचौर्य महाव्रतकी भावनांकुं कहै है,—

गाथा—शुण्णायारणिवासो विमोचितावास जं परोधं च ।

एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मिसंविसंवादो ॥ ३४ ॥

संस्कृत—शून्यागारनिवासः विमोचितावासः यत् परोधं च ।

एषणाशुद्धिसहितं साधर्मिसमविसंवादः ॥ ३४ ॥

अर्थ—शून्यागार कहिये गिरि गुफा तरुकोटरादिविषैं निवास करनां, बहुरि विमोचितावास कहिये जो लोग काहू कारणतैं छोडि दिया ऐसः गृह ग्रामादिक तामैं निवास करनां, बहुरि परोपरोध कहिये परका जहां उपरोध न करिये वस्तिकादिककुं अपनाय परकुं वर्जनां ऐसैं न करनां,

बहुवि एषणाशुद्धि कहिये आहार शुद्ध लेना, बहुवि साधर्मिनिर्तै विसंवाद न करना । ये पांच भावना तृतीय महाव्रतकी हैं ॥

भावार्थ—मुनिनिर्कै वस्तिकामैं वसनां अर आहार लेनां ये दोय प्रवृत्ति अवश्य होय तहां लोकमें इनिहीके निमित्त अदत्तका आदान होय है, मुनि वसै सो ऐसी जायगा वसै जहां अदत्तका दोष न लागै, बहुवि आहार ऐसा ले जायैं अदत्तका दोष न लागै, तथा दोऊकी प्रवृत्तिमें साधर्मि आदिकतैं विसंवाद न उपजै । ऐसैं ये पांच भावना कही हैं, इनिके होतैं अचौर्यमहाव्रत दृढ़ रहै है ॥ ३४ ॥

आगैं ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना कहै है;—

गाथा—महिलालोयणपुञ्चरइसरणसंसत्तवसहिविकाहाहिं ।

पुट्टियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥ ३५ ॥

संस्कृत—महिलालोकनपूर्वस्मरणसंसत्तवसतिविकथामिः ।

पौष्टिकरसैः विरतः भावनाः पंचापि तुर्ये ॥ ३५ ॥

अथ. स्त्रीनिका आलोकन कहिये रागभावसहित देखनां पूर्वे किये भोगका स्मरण करनां, स्त्रीनिकारि संसत्त वस्तिकामैं वसनां, स्त्रीनिकी कथा करनां, पुष्टी रसका सेवन करनां, इनि पांचनिर्तै विकार उपजै तातैं इनिर्तै विरक्त नानां, ये पांच ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—कामविकारः निमित्तनिर्तै ब्रह्मचर्यव्रत भंग होय है सो स्त्रीनिका रागभावतैं देखना इणदिक निमित्त कहे तिनिमें विरक्त रहनां प्रसंग न करनां यातैं ब्रह्मचर्यमहाव्रत दृढ़ रहै है ॥ ३५ ॥

आगैं पांच अपरिग्रहमहाव्रतकी भावना कहै है;—

गाथा—अपरिग्रह समणुणोसु सदयस्सिरस्सुवगंधेषु ।

रायदोसाईणं परिहारो भावणा हीति ॥ ३६ ॥

संस्कृत—अपरिग्रहे समनोज्ञेषु शब्दस्पर्शरसरूपगंधेषु ।

रागद्वेषादीनां परिहारो भावनाः भवन्ति ॥ ३६ ॥

अर्थ—शब्द स्पर्श रस रूप गंध ये पांच इंद्रियनिके विषय, ते कैसे समनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि सहित अरु अमनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि रहित, ऐसे दौऊनिविषै रागद्वेष आदिका न करनां ते परिग्रहत्यागव्रतकी ये पांच भावनां है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—पांच इंद्रियनिके विषय स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये हैं तिनिविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष न करै तब अपरिग्रहव्रत दृढ़ रहै जातै ये पांच भावना अपरिग्रहमहाव्रतकी कही हैं ॥ ३६ ॥

आगै पांच समितिकुं कहै है;—

गाथा—इरिया भासा एषण जा सा आदान चैव णिक्खेवो
संजमसोहिणिमिचे खंदि जिणा पंच समिदीओ ॥ ३७ ॥

संस्कृत—इर्या भाषा एषणा या सा आदानं चैव निः ।
संयमशोधिनिमित्तं ख्यान्ति जिनाः पंच समितीः ॥

अर्थ—इर्या भाषा एषणा बहुरि आदाननिक्षेपण प्रस्थापनां ऐसै ये पांच समिति संयमकां शुद्धिताकै अर्थ कारण हैं ते जन्मदेवनै कहे हैं ॥

भावार्थ—मुनि पंचमहाव्रतरूप संयमका गहन करै है तिस संयमकां शुद्धिताकै अर्थ पांच समितिरूप प्रवृत्ति है याहीं तै याका नाम सार्थक है—“ ‘सं’ कहिये सम्यक् प्रकार ‘इति’ कहिये प्रवृत्ति जामै होय सो समिति है ” । गमन करै तब जुड़ा प्रमाण धरती देखता चालै है, बोलै तब हितमितरूप वचन बोलै है, आहार ले सो छियालीस दोष बत्तीस अंतराय टालि चौदा मल दोष रहित शुद्ध आहार ले हैं, धर्मोपकरणिकुं उठाय ग्रहण करै सो यत्नपूर्वक ले हैं, तैसै ही किछु

क्षेपै तव यत्नपूर्वक क्षेपै है; ऐसैं निष्प्रमाद वतैं तव संयम शुद्ध पलै है तातैं पंचसमितिरूप प्रवृत्ति कही है । ऐसैं संयमचरण चारित्रकी प्रवृत्ति कही ॥ ३७ ॥

अब आचार्य निश्चय चारित्रकूं मनमें धारि ज्ञानका स्वरूप कहै है;—

गाथा—भव्यजनबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं ।

णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि ॥ ३८ ॥

संस्कृत—भव्यजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितं ।

ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं आत्मानं तं विजानीहि ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिनमार्ग विषैं जिनेश्वर देवनें भव्यजीवनिके संबोधनके अर्थ जैसा ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप कहा है तिस ज्ञान स्वरूप आत्मा है ॥ हि हे भव्यजीव ! तू जानि ॥ ३८ ॥

भावार्थ—ज्ञानकूं ज्ञानका स्वरूपकूं अन्यमती अनेक प्रकार कहैं हैं तैसा ज्ञान अर ऐसा स्वरूप ज्ञानका नांही है, जो सर्वज्ञ वीतराग देव भाषित ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप है सो निर्बाध सत्यार्थ है अर ज्ञान है सो ही आत्मा है तथा आत्माका स्वरूप है तिसकूं जानि अर तिसमें धिरता भाव करै परेष्टव्यनितैं राग द्वेष न करै सो ही निश्चय चारित्र है, सो पूर्वोक्त महाव्रतादिकी प्रवृत्तिकरि इस ज्ञान स्वरूप आत्मा विषैं लीन होना ऐसा उपदेश है ॥ ३८ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा ज्ञानकरि ऐसैं जानैं सो सम्यग्ज्ञानी है;—

गाथा—जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी ।

रायादिदोसरहिजे जिणसासण मोक्खमग्गुत्ति ॥ ३९ ॥

संस्कृत—जीवाजीवविभक्ति यः जानाति स भवेत् सज्ज्ञानः ।

रागादिदोषरहित जिनशासने मोक्षमार्ग इति ॥ ३९ ॥

अर्थ—जो पुरुष जीव अर अजीव इनका भेद जानै सो सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि रागादि दोष निकारि रहित होय ऐसा जिनशासन विषै मोक्ष मार्ग है ॥

भावार्थ—जो जीव अजीव पदार्थका स्वरूप भेदरूप जानि आप परका भेद जानै सो सम्यग्ज्ञानी होय अर परद्रव्यनिर्तै रागद्वेष छोडनेतै ज्ञानमै थिरता भये निश्चय सम्यक्चारित्र होय सो ही जिनमतमै मोक्षमार्गका स्वरूप कहा है, अन्यमतीनिनै अनेक प्रकार कल्पना करि कहा है सो मोक्षमार्ग नांही है ॥

आगै ऐसा मोक्षमार्गकूं जानि श्रद्धासहित यामै प्रवर्तै है सो शीघ्र ही मोक्ष पावै है ऐसै कहै है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए ।

जं जाणिऊण जोई अइरेः लहंति णिव्वाणं ॥ ४० ॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचरित्रं त्रीण्यपि जानीहि परमश्रद्धया ।

यत् ज्ञात्वा योगिनः अचिरेण लभंते निर्वाणम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भव्य ! तू दर्शन ज्ञान चारित्रि इनि तीननिकूं परमश्रद्धा-करि जानि जिसकूं जानिकारि जोगी मुनि हैं सो थोरे ही कालमै निर्वाणकूं पावै हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रयात्मक मोक्षमार्ग है ताके श्रद्धापूर्वक जाननेका उपदेश है जातै याकूं जाने मुनिनिकै मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ ४० ॥

आगै कहै है जो ऐसै निश्चयचारित्ररूप ज्ञानका स्वरूप कहा इसकूं जो पावै है सो शिवरूप मंदिरके वसनेवाले होय है;—

गाथा—पाऊण णाणसलिलं भिम्मसुविसुद्धभाणसंजुत्ता ।

हुंति सिवालयवासी तिहुं चूडामणी सिद्धा ॥ ४१ ॥

संस्कृत—ग्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मलमुविशुद्धभावसंयुक्ताः ।

भवन्ति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः॥

अर्थ—जे पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जलकूं पाय करि अपनां निर्मल भलै प्रकार विशुद्धभावकरि संयुक्त होय हैं ते पुरुष तीन भुवनके चूडामणि अर शिव कहिये मुक्ति सोही भया आलय कहिये मंदिर ताँमें वसनेवाले ऐसे सिद्ध परमेशी होय हैं ॥

भावार्थ—जैसे जलतैं स्नानकरि शुद्ध होय उत्तम पुरुष महलमें निवास करैं हैं तैसें यह ज्ञान है सो जलवत है अर आत्माकै रागादिक भैल लगनैं तैं मलिनता होय है सो इस ज्ञानरूप जलतैं रागादिक भल धोय जे अपने आत्माकूं शुद्ध करैं हैं ते मुक्तिरूप महलमें वसि आनंद भोगी हैं, तिनिकूं तीन भुवनके शिरोमणि सिद्ध कहिये हैं ॥ ४१ ॥

अगैं कहै हैं जे ज्ञानगुणकरि रहित हैं ते इष्ट वस्तु न पावैं ताँमें गुण दोषके जाननेकूं ज्ञानकूं भलैप्रकार जाननां—

गाथा—गुणगुणेहिं विहीणा न लभन्ते ते सुइच्छियं लाभं ।

इष्टं पातुं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि ॥ ४२ ॥

संस्कृत—ज्ञानगुणैः विहीना न लभन्ते ते स्वच्छं लाभं ।

इति ज्ञात्वा गुणदोषौ तत् सदज्ञानं विजानीहि ४२॥

अर्थ—ज्ञानगुणकरि हीन जे पुरुष हैं ते अपनां इच्छित वस्तुका लाभकूं नाहीं पावैं हैं ऐसा जनेकरि हे भव्य ! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान हैं ताहि गुण दोषके जाननेकूं जानि ॥

भावार्थ—ज्ञान बिना गुण दोषका ज्ञान नाहीं होय तब अपने इष्ट वस्तु तथा अनिष्टकूं नाहीं जावैं तब इष्ट वस्तुका लाभ न होय ताँमें सम्यग्ज्ञानही करि गुण दोष मीया जाय हैं याँमें गुण दोष जाननेकूं

सम्यग्ज्ञान विना हेय उपादेय वस्तुनिका जाननां न होय अर हेय उपादेय जानें विना सम्यक्चारित्र नांही होय है तातैं ज्ञानहीकूं चारित्रतैं प्रधानकरि कहा हैं ॥ ४२ ॥

आगैं कहैं जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र धौर है सो थोरेही कालमें अनुपम सुखकूं पावैं है;—

गाथा—चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी ।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥४३॥

संस्कृत—चारित्रसमारूढ आत्मनि परं न ईहते ज्ञानी ।
प्राप्नोति अचिरेण सुखं अनुपमं जानीहि निश्चयतः ॥४३॥

अर्थ—जो पुरुष ज्ञानी है अर चारित्रकरि सहित है सो अपने आत्मा विषैं परद्रव्यकूं नांही इच्छै हैं परद्रव्यविषैं राग द्वेष मोह नांही करै हैं सो ज्ञानी जाकी उपमा नांही ऐसा अवेनाशी मुक्तिका सुख पावै है, ऐसैं हे भव्य ? तू निश्चय तैं जानि। इहां ज्ञानी होय हेय उपादेयकूं जानि संयमी होय परद्रव्यकूं आपमें न मिलावै सो परम सुख पावै ऐसा जनाया है ॥ ४३ ॥

आगैं इष्ट चारित्रके कथनकूं संकोचै है

गाथा—एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयरएण ।
सम्मत्तसंजमासयदुहं पि उट्ठे तयं चरणं ॥ ४४ ॥

संस्कृत—एवं संक्षेपेण च भणितं ज्ञानेन वीतरागेण ।
सम्यक्त्वसंयमाश्रयद्वयोरपि उद्देशितं चरणम् ॥४४॥

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'आत्मनि' शब्दके स्थानमें अत्मनः ऐसा पाठ है टीकामें अर्थभी आत्मन का ही किया है। देख, पृष्ठ ५४।

अर्थ—एवं कहिये ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप करि श्रीवीतराग देवनैं ज्ञानकारि कहा। ऐसा सम्यक्त्व अर संयम इनि दोऊनिकै आश्रय चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप अर संयमचरणस्वरूप दोय प्रकार करि उपदेश-रूप किया है, आचार्य चारित्र का कथन संक्षेपरूप कहि संकोच्या है ॥ ४४ ॥

भागैं इस चारित्रपाहुडकूं भावनेका उपदेश अर याका फल कहै है;—

गाथा—भावेह भावसुद्धं फुडु रह्यं चरणपाहुडं चैव ।

लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होइ ॥ ४५ ॥

संस्कृत—भावयत भावशुद्धं स्फुटं रचितं चरणप्राभृतं चैव ।

लघु चतुर्गतीः त्यक्त्वा अचिरेण अपुनर्भवाः भवत ॥

अर्थ—इहां आचार्य कहै है जो हे भव्य जीवहो ! यह चरण कहिये का पाहुड हमनैं स्फुट प्रगटकारि रच्या है ताकूं तुम आपना शुद्ध भाव भावों अपने भावनिमें बारंवार अभ्यास करो यातैं शीघ्रही च्यार गतिनिक्कूणोड़ि करि बहुरि अपुनर्भव जो मोक्ष सो तुम्हारै होयगा फेरि संसारमें जन्त पावोगे ॥

भावार्थ—इ चारित्रपाहुडका वाचनां पढनां धारनां बारंवार भावनां अभ्यास करनां यह उपदेश है यातैं चारित्रका स्वरूप जानि धारनेकी रुचि होय अंगीकार करि च्यार गतिरूप संसारके दुःखतैं रहित होय निर्वाणकूं प्राप्त होय फेरि तारमें जन्म न धारै जातैं जे कल्याणके अर्थी हैं ते ऐसैं करौ ॥

छप्पय ।

चारित दोय प्रकारे जिनवरनैं भाख्या ।

समकित संयमचरण ज्ञानपूरव तिस राख्या ॥

जे नर सरधावान याहि धारैं बिधिसेती ।
 निश्चय अर व्यवहार रीति आगममैं जेती ॥
 जब जगधंधा सब भेटिकैं निजस्वरूपमैं थिर रहै ।
 तब अष्टकर्मकूं नाशिकैं अविनाशी शिवकूं लहै ॥१॥
 ऐसैं सम्यक्चरणचारित्र अर संयमचरण-
 चारित्र ऐसैं दोय प्रकार चारित्रका
 स्वरूप इस प्राभृतविषैं कहा ॥

दोहा ।

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराय ।
 तिनिके चरण नमूं सदा पाऊं, तिनि गुणसाज ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दचार्यस्वामि विरचित
 चारित्रप्राभृतकी—

पं० जयचन्द्रछावड़ाकृत देशभाषामय-
 वचनिका समाप्त ॥ ३ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ बोधपाहुड ।

—:०:—

(४)

दोहा ।

देव जिनेश्वर सर्वगुरु बंदू मनवच काय ।

जा प्रसाद भवि बोधले पालैं जीवनीकाय ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलाचरण करि श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंघ बोधपाहु-
डकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है, तहां प्रथमही आचार्य ग्रंथ
करनेकी मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा कौहै;—

गाथा—बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे ।

वंदिता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे ॥ १ ॥

सयलजणवोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरैहिं जह भणियं ।

बुच्छामि समासेण छकायसुहंकरं सुणह ॥ २ ॥

संस्कृत—बहुशास्त्रार्थज्ञापकान् संयमसम्यक्त्वशुद्धतपश्चरणान् ।

वन्दित्वा आचार्यान् कषायमलवर्जितान् शुद्धान् ॥१॥

सकलजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम् ।

वक्ष्यामि समासेन षड्कायसुखंकरं शृणु ॥२॥ युग्मम् ।

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं आचार्यनिकूं वंदिकरि अर छह कायके
जीवनिकूं सुखका करनेवाला जिनमार्गविषै जिनदेवनैं जैसे कक्षा तैसैं

१—मुद्रित सटीक संस्कृत में 'छकायसुखंकरं' ऐसा पाठ है ।

समस्त लोकनिका हितका है प्रयोजन जाँमें ऐसा ग्रंथ संक्षेपकरि कहुंगा ताकूं हे भव्यजीव ! तुम सुनो, जिन आचार्यनिकूं वंदे ते आचार्य कैसे है—बहुत शास्त्रनिका अर्थके जाननेवाले हैं बहुरि कैसे हैं—संयम अर सम्यक्क इनि करि शुद्ध है तपश्चरण जिनिकै बहुरि कैसे हैं—कषायरूप मलकरि वर्जित हैं याहीतैं शुद्ध हैं ॥

भावार्थ—इहां आचार्यनिकूं वंदना करी तिनिके विशेषणनितै जानिये है कि गणधरादिकतैं लगाय अपने गुरुपर्यंत तनिकी वंदना है, बहुरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करी ताके विशेषणनितै जानिये है जो बोधपाहुड ग्रंथ करियेगा सो लोकनिकूं धर्ममार्गविषै सावधानकरि कुमार्ग छुडाय अहिंसाधर्मका उपदेश करियेगा ॥ ३ ॥

आगैं इस बोधपाहुडमै ग्यारह स्थल बांधे है तिनिके नाम कहे हैं,

गाथा—आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणविंव ।

भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं ॥ ३ ॥

अरहंतेण सुदिट्ठं जं देवं तित्थमिह य अरहंतं ।

पावज्ज गुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो ॥ ४ ॥

संस्कृत—आयतनं चैत्यगृहं जिनप्रतिमा दर्शनं च जिनबिंबम् ।

भणितं सुवीतरागं जिनमुद्गा ज्ञानमात्मार्यम् ॥ ३ ॥

अर्हता सुदृष्टं यः देवः तीर्थमिह च अर्हन् ॥

प्रवज्या गुणविशुद्धा इति ज्ञातव्याः यथाक्रशः ॥ ४ ॥

अर्थ—आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिंब कैसा है जिनबिंब भैलप्रकार वीतराग है रागसहित नाहीं जिनमुद्गा, ज्ञान सो कैसा आत्माही है अर्थ कहिये प्रयोजन जाँमें ऐसैं सात, तौ ये निश्चय वीत-

राम देवनें कहे तैसें यथा अनुक्रमते जाननें, बहुरि देव तीर्थकर, अरहं
अर गुणकर विशुद्ध प्रव्रज्या ये च्यार जो अरहंत भगवान कहे तैसें
इस प्रथविषे जानना, ऐसें ये ग्यारह स्थल भये ॥ ३-४ ॥

भावार्थ—इहां ऐसा आशय जानना जो धर्म मार्गमें कालदोष तैं
अनेक मत भये हैं तथा जैनमतमें भी भेद भये हैं तिनमें आयतन
आदिविषे विपर्यय भया है तिनिका परमार्थ भूत सांचा स्वरूप तौ लों
जानें नाहीं अर धर्मके लोमी भये जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखैं तिसही
प्रवर्तने लगेजाय, तिनिकूं संबोधनेकें अर्थ यहु बोधपादुड रच्या है तैं
आयतन आदि ग्यारह स्थानकनिका परमार्थभूत सांचा स्वरूप जैसी
सर्वज्ञ देवनें कहा है तैसा कहियेगा, अनुक्रमते जैसें नाम कहै तैसेंही
अनुक्रमकर इनिका व्याख्यान करियेगा सो जाननें योग्य है ॥ ३-४ ॥

आगैं प्रथमही आयतन कथा ताका निरूपण कहै है;—

गाथा—मणवयणकायदब्बा आयत्ता जस्स इंदिया विमया ।

आयदर्णं जिगमगे गिदिट्ठं संजयं रूपं ॥ ५ ॥

संस्कृत—मनोवचनकायद्रव्याणि आयत्ताः यस्य ऐंद्रियाः विषयाः

आयतनं जिनमार्गे निर्दिष्टं संयतं रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिनमार्ग विषे संयमसाहित मुनिरूप है सो आयतन कथा है ।
जिसा है मुनिरूप—जाके मन वचन काय द्रव्यरूप हैं ते तथा पांच इन्द्रि-
यानिके स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये विषय हैं ते 'आयता' कहिये आधीन हैं
ग्रीभूत हैं, इनिके संयमी मुनि आधीन नाहीं हैं ते मुनिके वशीभूत हैं
संयमी है सो आयतन है ॥ ५ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

ऐसा

५—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आसत्ता' का पाठ है जिसको संस्कृत 'आसक्ता' द्रव्यगुण

—मय राय दोस मोहो कांहो लोहो य जस्स आयत्ता ।

पंचमहव्यधारा आयदणं महरिसी भणियं ॥ ६ ॥

संस्कृत—मदः रागः द्वेषः मोहः क्रोधः लोभः च यस्य आयत्ताः ।

पंचमहाव्रतधराः आयतनं महर्षयो भणिताः ॥ ६ ॥

अर्थ—जा मुनिकै मद राग द्वेष मोह क्रोध लोभ अर चकारतैं माया देक ये सर्व 'आयत्ता' कहिये निग्रहकूं प्राप्त भये बहुरि पांच महाव्रत जे जा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अर परिग्रहका त्याग इनिका धारी होय , महामुनि ऋषीश्वर आयतन कइया है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ बायका स्वरूप कइया था इहां बाब्र नाम्यंतर दोऊ प्रकार संयमी होय सो आयतन है ऐसा जाननां ॥६॥

आगैं फेर कहै है;—

पथा—सिद्धं जस्स सदत्थं बिसुद्धज्ञाणस्स णाणजुत्तस्स ।

सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवत्सहस्स मुणिदत्थं ॥७॥

संस्कृत—सिद्धं यस्य सदर्थं विशुद्धध्यानस्य ज्ञानयुक्तस्य ।

सिद्धायतनं सिद्धं मुनिवरवृषभस्य मुनितार्थम् ॥७॥

अर्थ—जा मुनिकै सदर्थ कहिये समीचीन अर्थ जो शुद्ध आत्मा सो सिद्ध भया होय सिद्धायतन है, कैसा है मुनि—विशुद्ध है ध्यान जाकै धर्मध्यानकूं साधि शुद्धध्यानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है—ज्ञानकारि सहित है केवलज्ञानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है—वातिकर्मरूप मरुतैं गहित है याहीतैं मुनिनिमैं वृषभ कहिये प्रधान है, बहुरि कैसा है—जाने समस्त पयार्थ जानैं ऐसे मुनिप्रधानकूं सिद्धायतन कहिये ॥

भावार्थ—ऐसैं तीन गाथामैं आ नका स्वरूप कइया; तहां पह थाभैं तौ संयमी सामान्यका बाब्रू प्रधानकारि कइया, दूजीमैं अंत

बाह्य दोऊकी शुद्धतारूप ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कह्या, बहुरि इस तीसरी गाथामें केवलज्ञानी है सो मुनिनिमें प्रधान है ताकूं सिद्धायतन कह्या है । इहां ऐसा जाननां जो आयतन नाम जाँमें वसिये निवास करिये ताका है सो धर्मपद्धतिमें जो धर्मात्मा पुरुषकै आश्रय करनेयोग्य होय सो धर्मायतन है सो ऐसे मुनिही धर्मके आयतन हैं, अन्य केई भेषधारी पाखंडी विषय कषायनिमें आसक्त परिग्रहधारी धर्मके आयतन नांही हैं तथा जैनमतमें भी जे सूत्रविरुद्ध प्रवर्तैं हैं ते भी आयतन नांही है, ते सर्व अनायतन हैं, तथा बौद्धमतमें पांच इंद्रिय, पांच तिनिके विषय, एक मन, एक धर्मायतन शरीर, ऐसैं बारह आयतन कहे हैं ते भी कल्पित हैं, यातैं जैसा आयतन कह्या तैसा ही जाननां, धर्मात्माकूं तिस-हीका आश्रय करनां अन्यकी स्तुति प्रशंसा विनयादिक न करनां, यह बोधपाहुड ग्रंथ करनेका आशय है । बहुरि जाँमें ऐसे मुनि वसैं ऐसा क्षेत्रकूंभी आयतन कहिये है सो यह व्यवहार है ॥ ७ ॥

आगैं चैत्यगृहका निरूपण करै है;—

गाथा—बुद्धं जं वोढंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च ।

पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं ॥ ८ ॥

संस्कृत—बुद्धं यत् बोधयन् आत्मानं चैत्यानि अन्यत् च ।

पंचमहाव्रतशुद्धं ज्ञानमयं जानीहि चैत्यगृहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो मुनि बुद्ध कहिये ज्ञानमयी ऐसा आत्मा ताहि जानता होय बहुरि अन्य जीवनकूं चैत्य कहिये चेतना स्वरूप जानता होय बहुरि आप ज्ञानमयी होय बहुरि पांच महाव्रतनिकरि शुद्ध होय निर्मल होय ता मुनिकूं हे भव्य ! तू चैत्यगृह जानि ॥

भावार्थ—जाँमें आपा परक ज्ञाननेवाला ज्ञानी निःपाप निर्मल ऐसा चैत्य कहिये चेतनास्वरूप आत्मा तैसैं सो चैत्यगृह है सो ऐसा चैत्यगृह

संयमी मुनि है, अन्य पाषाण आदिका मंदिरकूं चैत्यगृह कहनां व्यवहार है ॥ ५ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—चेइय बंधं मोक्षं दुःखं सुखं च अप्पयं तस्स ।

चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं ॥ ९ ॥

संस्कृत—चैत्यं बंधं मोक्षं दुःखं सुखं च आत्मकं तस्य ।

चैत्यगृहं जिनमार्गे षड्कायहितंकरं भणितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जाकैं बंध अर मोक्ष बहुरि सुख अर दुःख ये आत्माके होय जाकैं स्वरूपमें होय सो चैत्य कहिये जातैं चेतना स्वरूप होय ताहीकैं बंध मोक्ष सुख दुःख संभवै ऐसा जो चैत्यका गृह होय सो चैत्यगृह है सो जिनमार्गविषै ऐसा चैत्यगृह छह कायका हित करनेवाला होय सो ऐसा मुनि है सो पांच थावर अर त्रसमें विकलत्रय अर असैनी पंचेन्द्रियताई केवल रक्षाही करने योग्य है तातैं तिनिकी रक्षा करनेका उपदेश करै है, तथा आप तिनिका घात न करै है तिनिका यही हित है, बहुरि सैनी पंचेन्द्रिय जीव हैं तिनिकी रक्षा भी करै है रक्षाका उपदेश भी करै है तथा तिनिंकूं संसारतैं निवृत्तिरूप मोक्ष होनेका उपदेश करै है ऐसे मुनिराजकूं चैत्यगृह कहिये ॥

भावार्थ—लौकिक जन चैत्यगृहका स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानैं हैं तिनिंकूं सावधान किये हैं—जो जिनसूत्रमें छह कायका हित करनेवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है सो चैत्यगृह है, अन्यकूं चैत्यगृह कहनां माननां व्यवहार है । ऐसैं चैत्यका स्वरूप कहा ॥ ९ ॥

आगैं जिनप्रतिमाका निरूपण करै —

गाथा—स्वपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणानं ।

णिगंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० ॥

संस्कृत—स्वपरा जंगमदेहा दर्शनज्ञानेन शुद्धचरणानाम् ।

निर्ग्रन्थवीतरागा जिनमार्गे ईदृशी प्रतिमा ॥ १० ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान करि शुद्ध निर्मल है चारित्र जिनकै तिनिकी स्वपरा कहिये अपनी अर परकी चालती देह है सो जिनमार्ग विषै जंगम प्रतिमा है, अथवा स्वपरा कहिये आत्मातैं पर कहिये भिन्न है ऐसी देह है, सो कैसी है—निर्ग्रन्थ स्वरूप है जाकै किछु परिग्रहका लेश नाहीं ऐसी दिगंबरमुद्रा, बहुरि कैसी हैं—वीतराग स्वरूप है जाकै काहू वस्तुसौ राग द्वेष मोह नाहीं, जिनमार्ग विषै ऐसी प्रतिमा कही है । दर्शन ज्ञान करि निर्मल चारित्र जिनकै पाइये ऐसे मुनिनिकी गुरु शिष्य अपेक्षा अपनी तथा परकी चालती देह निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है सो जिनमार्गविषै प्रतिमा है अन्य धेलिपत है अर धातु पाषाण आदिकरि दिगंबरमुद्रा स्वरूप प्रतिमा कहिये सो व्यवहार है सो भी बाह्य प्रकृति ऐसी ही होय सो व्यवहारमैं मान्य है ॥ १० ॥

आगैं फेरि कहै हैः—

गाथा—जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं ।

सा होई वंदणीया णिगंथा संजदा पडिमा ॥ ११ ॥

संस्कृत—यः चरति शुद्धचरणं जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्तत्त्वम् ।

सा भवति वंदनीया निर्ग्रन्था सांयता प्रतिमा ॥ ११ ॥

अर्थ—जो शुद्ध आचरणकूं आचरै बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि यथार्थ वस्तुकूं जानै है बहुरि सम्यग्दर्शनकरि अपने स्वरूपकूं देखै है ऐसैं शुद्ध सम्यक् जाकै पाइये है ऐसी निर्ग्रन्थ सांयम स्वरूप प्रतिमा है सो बंदिबे योग्य है ॥

भावार्थ—जाननेवाला देखनेवाला शुद्ध सम्यक्त्व शुद्ध चारित्र्य स्वरूप निग्रेय संयमसहित ऐसा मुनिका स्वरूप है सो ही प्रतिमा है सो ही बंदिबेयोग्य अन्य कल्पित बंदिबेयोग्य नांही है, बहुरि तैसेही रूपसदृश धातुपाषाणकी प्रतिमा होय सो व्यवहारकरि बंदिबेयोग्य है ॥ ११ ॥

आगे फेरि कहै है;—

गाथा—दंसण अणंत णाणं अणंतवीरिय अणंसुखा य ।

सासयसुख अदेहा मुक्ता कम्मद्वंधेहि ॥ १२ ॥

निखममचलमखोहा णिम्विया जंगमेण रूपेण ।

सिद्धाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥ १३ ॥

संस्कृत—दर्शनं अनंतं ज्ञानं अनंतवीर्याः अनंतसुखाः च ।

शाश्वतसुखा अदेहा मुक्ताः कर्माष्टकबंधैः ॥ १२ ॥

निरुपमा अचला अक्षोभः निर्मापिता जंगमेन रूपेण ।

सिद्धस्थाने स्थिताः व्युत्सर्गप्रतिमा ध्रुवाः सिद्धाः १३

अर्थ—जो अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतवीर्य अनंतसुख इनिकारि सहित है, बहुरि शाश्वता अविनाशीमुखस्वरूप है, बहुरि अदेह है कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनिकै नांही है, बहुरि अष्टकर्मके बंधनकरि रहित है, बहुरि उपमाकरि रहित है जाकी उपमा दीजिये ऐसा लोकमें वस्तु नांही है, बहुरि अचल है प्रदेशनिका चलनां जिनिकै नांही है, बहुरि अक्षोभ है जिनिकै उपयोगमें किछु क्षोभ नांही है, निश्चल है, बहुरि जंगमरूप करि निर्मित है कर्मतैं निर्मुक्त हुये पीछे एक समय मात्र गमन रूप होय हैं, तातैं जंगमरूपकरि निर्मापित है, बहुरि सिद्ध-स्थान जो लोकका अग्रभाग ता विषे स्थित है याहां तैं व्युत्सर्ग कहिये

कायरहित है जैसा पूर्वे देहमें आकार था तैसाही प्रदेशनिका आकार किछु घाटे ध्रुव है, संसारतैं मुक्त होय एक समय गमनकारी लोककौ अग्रभाग-विषै जाय तिष्ठै पीछैं चलाचल नांही है ऐसी प्रतिमा सिद्ध है ॥

भावार्थ—पहलैं दोय गाथामैं तौ जंगम प्रतिमा संयमी मुनिनिकी देहसहित कही, बहुरे इनि दोय गाथानिमैं थिर प्रतिमा सिद्धनिकी कही ऐसैं जंगम थावर प्रतिमाका स्वरूप कह्या अन्य केई अन्यथा बहुत प्रकार कल्पैं हैं सो प्रतिमा बंदिवे योग्य नांहां है ॥

इहां प्रश्न—जो यह तौ परमार्थ स्वरूप कह्या अर बाह्य व्यवहारमें प्रतिमा पापाणादिककी बंदिये है सो कैसैं ! ताका समाधान—जो बाह्य व्यवहारमें मतांतरके भेद तैं अनेक रीति प्रतिमाकी प्रवृत्ति है सो इहां परमार्थकू प्रधानकारी कह्या है, बहुरि व्यवहार हैं सो जैसा प्रतिमाका परमार्थरूप होय ताहीकू सूचता होय सो निर्वात्र होय है जैसा परमार्थरूप आकार कह्या तैसाही आकाररूप व्यवहार होय सो व्यवहार भी प्रशस्त है, व्यवहारी जीवनिकै ये भी बंदिवेयोग्य है । स्याद्वाद न्यायकारि साधे परमार्थ व्यवहारमें विरोध नांहीं है ॥ १२-१३ ॥

ऐसैं जिनप्रतिमाका स्वरूप कह्या ।

आगैं दर्शनका स्वरूप कहैं हैं,—

गाथा—दंसेइ मोक्षमगं सम्मत्तं संयमं सुधम्मं च ।

जिग्मंयं णाणनयं जिणमग्गे दंसगं भणियं ॥ १४ ॥

संस्कृत—दर्शयति मोक्षमार्गं सम्यक्त्वं संयमं सुवर्णं च ।

निर्ग्रंथं ज्ञानमयं जिनमार्गे दर्शनं भणितम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जो मोक्षमार्गकू खोजैं सो दर्शन है, कैसा है मोक्ष-

मार्ग—सम्यक्त्व कहिये तत्वा सुद्धान लक्षण सम्यत्वस्वरूप है, बहुरि

कैसा है—संयम कहिये चारित्र्य पंच महाव्रत पंचसमिति तीन गुति ऐसे तेरह प्रकार चारित्र्यरूप है, बहुरि कैसा है—सुधर्म कहिये उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, बहुरि कैसा है—सुधर्म कहिये उत्तम क्षमादिक दशलक्षणधर्म रूप है, बहुरि कैसा है—निर्ग्रथरूप है बाह्य अम्यंतर परिग्रह रहित है, बहुरि कैसा है—ज्ञानमयी है जीव अजीवादि पदार्थानिक् जाननेवाला है; इहां निर्ग्रथ अर ज्ञानमयी ये दोय विशेषण दर्शनके भी होय हैं जातैं दर्शन है सो बाह्य तौ याकी मूर्ति निर्ग्रथ है बहुरि अंतरंग ज्ञानमयी है । ऐसा मुनिके रूपको जिनमार्गमें दर्शन कइया है तथा ऐसे रूपका श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्वरूपकूं दर्शन कहिये है ।

भावार्थ—परमार्थरूप अंतरंग दर्शन तौ सम्यक्त्व है अर बाह्य याकी मूर्ति ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रथरूप ऐसा मुनिका रूप है सो दर्शन है जातैं मतकी मूर्तिकूं दर्शन कहनां लोकमें प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं;—

गाथा—जह फुलं गंधमयं भवति हु खीरं स धियमयं चापि ।

तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ ख्वत्थं ॥ १५ ॥

संस्कृत—यथा पुष्पं गंधमयं भवति स्फुटं क्षीरं तत् घृतमयं चापि

तथा दर्शनं हि सम्यग्ज्ञानमयं भवति रूपस्थम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसे फूल है सो गंधमयी है बहुरि दूध है सो घृतमयी है तैसे दर्शन कहिये मत विषै सम्यक्त्व है कैसा है दर्शन अंतरंग तौ ज्ञानमयी है बहुरि बाह्य रूपस्थ है मुनिका रूप है तथा उक्त श्रावक आर्जिकाका रूप है ॥

भावार्थ—दर्शन नाम मतका प्राप्ति है सो इहां जिनदर्शनविषै मुनि-श्रावक आर्जिकाका जैसा बाह्य भेष कह्ये सो दर्शन जाननां अर याकी

अर्द्धा सो अंतर्ग दर्शन जाननां सो ये दोऊही ज्ञानमयी हैं यथार्थ तत्त्वार्थका जाननेरूप सम्यक्त्व जाँ पै पाइये है याही तैं फूलमैं गंधका अर दूधमें घृतका दृष्टांत युक्त है ऐसैं दर्शनका रूप कहा । अन्यमतमैं तथा कालदोषकरि जिनमतमैं जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहै हैं सो कल्याणरूप नाहीं संसारका कारण है ॥ १५ ॥

आगैं जिनबिंबका निरूपण करै है;—

गाथा—जिनिबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च ।

जं देहं दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ॥ १६ ॥

संस्कृत—जिनबिंबं ज्ञानमयं संयमशुद्धं सुवीतरागं च ।

यत् ददाति दीक्षाशिक्षे कर्मक्षयकारणे शुद्धे ॥ १६ ॥

अर्थ—जिनबिंब कैसा है—ज्ञानमयी है अर संयमकरि शुद्ध है बहुरि अतिशयकरि वीतराग है बहुरि ओ कर्मका क्षयका कारण अर शुद्ध है ऐसी दीक्षा अर शिक्षा दे है ॥

भावार्थ—जो जिन कहिये अरहंत सर्वज्ञका प्रतिबिंब कहिये ताकी जायगां तिसकी ज्यौ माननें योग्य होय, ऐसै आचार्य हैं सो दीक्षा कहिये व्रतका ग्रहण अर शिक्षा कहिये व्रतका विधान बतावनां ये दोऊ कार्य भव्यजिवानिकूं दे हैं, यातैं प्रथम तौ सो आचार्य ज्ञानमयी होय जिनसूत्रका जिनकूं ज्ञान होय ज्ञान बिना यथार्थ दीक्षा शिक्षा कैसैं होय अर आप संयमकरि शुद्ध होय ऐसा न होय तौ अन्यकूं भी संयम शुद्ध न करवै, बहुरि अतिशयकरि वीतराग न होय तौ कदापिसहित होय तब दीक्षा शिक्षा यथार्थ न दे, यातैं ऐसै आचार्यकूं जिनके प्रतिबिंब जाननें ॥ १६ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं ।
जस्स य दंमण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो ॥ १७ ॥
संस्कृत—तस्य च कुरुत प्रणामं सर्वा पूजां च विनयं वात्सल्यम् ।
यस्य च दर्शनं ज्ञानं अस्ति ध्रुवं चेतनाभावः ॥ १७ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त जिनबिबकुं प्रणाम करो बहुरि सर्व प्रकार पूजा करो विनय करो वात्सल्य करो, काहेतैं—जाकैं ध्रुव कहिये निश्चयतैं दर्शन ज्ञान पाइये है बहुरि चेतनाभाव है ॥

भावार्थ—दर्शन ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिब आचार्य है तिनिकुं प्रणामादिक करनां । इहां परमार्थ प्रधान कहा है तहां जड प्रतिबिंबकी गौणता है ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छे हि सुद्धसम्मत्तं ।
अरहंतमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य ॥ १८ ॥
संस्कृत—तपोव्रतगुणैः शुद्धः जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम् ।
अर्हन्मुद्रा एषा दात्री दीक्षाशिक्षाणां च ॥ १८ ॥

अर्थ—जो तप अर व्रत अर गुण कहिये उत्तरगुण तिनिकारि शुद्ध होय बहुरि सम्यग्ज्ञानकारि पदार्थनिकुं यथार्थ जाणैं बहुरि सम्यग्दर्शनकारि पदार्थनिकुं देखै याहीतैं शुद्ध सम्यक्त्व जाकैं ऐसा जिनबिब आचार्य है सो येही दीक्षा शिक्षाकी देनेवाली अरहंतकी मुद्रा है ॥

भावार्थ—ऐसा जिनबिब है सो जिनमुद्रानी है ऐसैं जिनबिबका स्वरूप कहा ॥ १८ ॥

आगैं जिनमुद्राका स्वरूप कहैं हैं ।

गाथा—दढसंजममुदाए ईदियमुदा कसायदढमुदा ।

मुदा इह णाणाए जिणमुदा एरिसा भणिया ॥ १९ ॥

संस्कृत—दढसंयममुद्रया इन्द्रियमुद्रा कषायदढमुद्रा ।

मुद्रा इह ज्ञानेन जिनमुद्रा ईदृशी भणिता ॥ १९ ॥

अर्थ—दढ कहिये वज्रवत् चलाया न चलै ऐसा संयम—इन्द्रिय मनका वश करना, षट्जीवनिकायकी रक्षा करना, ऐसे समयरूप मुद्राकरि तौ पांच इन्द्रियनिकुं विषयनिमें न प्रवर्त्तावना तिनिका संकोच करना यह तौ इन्द्रियमुद्रा है, बहुरि ऐसा संयम करिहा कषायनिकी प्रवृत्ति जामै नहीं ऐसी कषायदढमुद्रा है, बहुरि ज्ञानका स्वरूपविषै लगावना ऐसे ज्ञानकरि सर्व बाह्य मुद्रा शुद्ध होय हैं, ऐसैं जिनशासनविषै ऐसी जिनमुद्रा होय है ॥

भावार्थ—संयमसहित होय इन्द्रिय जाकै वशीभूत होय अर कषायनिकी प्रवृत्ति नाहीं होती होय अर ज्ञानस्वरूपमै लगावना होय ऐसा मुनि होय सो ही जिनमुद्रा है ॥ १० ॥

आगैं ज्ञानका निरूपण करै हैं;—

गाथा—संजमसंजुत्तस्स य मुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स ।

णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायच्चं ॥ २० ॥

संस्कृत—संयमसंयुक्तस्य च सुध्यानयोग्यस्य मोक्षमार्गस्य ।

ज्ञानेन लभते लक्षं तस्मात् ज्ञानं च ज्ञातव्यम् ॥ २० ॥

अर्थ—संयमकरि संयुक्त अर ध्यानके योग्य ऐसा जो मोक्षमार्ग ताका लक्ष्य कहिये लक्षण योग्य वेद्य निसानां जो आपका निजस्वरूप सो ज्ञानकरि पाइये है, ताँतै ऐसे लक्ष्यके जाननेकुं ज्ञानकुं जाननां ॥

(१) 'सुध्यानयोग्य' ऐसा संस्कृत प्रतिमें पाठ है जिसका श्रेष्ठ ध्यानसहित ऐसा अर्थ है (२) 'वे' 'क' ऐसा पाठ है ।

भावार्थ—संयम अर्गीकारकरि ध्यान करै अर आत्माका स्वरूप न जानै तौ मोक्षमार्गकी सिद्धि नाहीं तातैं ज्ञानका स्वरूप जाननां, याके जानैं सर्व सिद्धि है ॥ २० ॥

आगैं याकूं दृष्टांतकरि दृढ करै है;—

गाथा—जह ण वि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झय
विहीणो ।

तह ण वि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स
संस्कृत—यथा नापि लभते स्फुटं लक्षं रहितः कांडस्य वेध-
कविहीनः ।

तथा नापि लक्षयति लक्षं अज्ञानी मोक्षमार्गस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसैं वेधनेवाला वेधक जो बाण ताकरि विहीन कहिये रहित ऐसा पुरुष है सो कांड कहिये धनुष ताका अभ्यासकरि रहित होय सो लक्ष्य कहिये निशाना ताकूं न पावै तैसैं ज्ञानकरि रहित अज्ञानी है सो दर्शन चारित्र्यरूप जो मोक्षमार्ग ताका लक्ष्य कहिये लक्षणें योग्य परमात्माका स्वरूप ताकूं न पावै है ॥

भावार्थ—धनुषधारी धनुषका अभ्यास रहित अर वेधक जो बाण ताकरि रहित होय तौ निशानाकूं न पावै तैसैं ज्ञानकरि रहित अज्ञानी मोक्षमार्गका निशानां परमात्मा स्वरूप है ताकूं न पहचानै तब मोक्षमार्गकी सिद्धि न होय तातैं ज्ञानकूं जाननां, परमात्मारूप निशानां ज्ञानरूप बाणकरि वेधनां योग्य है ॥ २१ ॥

आगैं कहै है ऐसा ज्ञान विनय संयुक्त पुरुष होय सो मोक्ष पावै है;—

गाथा—णाणं पुरिसस्स हवदि ल । सुपुरिसो वि विणयसंयुत्तो ।
णाणेण लहदि लक्खं तं खंतो मोक्खमग्गस्स ॥ २२ ॥

संस्कृत—ज्ञानं पुरुषस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विनयसंयुक्तः ।

ज्ञानेन लभते लक्ष्यं लक्षयन् मोक्षमार्गस्य ॥ २२ ॥

अर्थ—ज्ञान होय है सो पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनय संयुक्त होय सो ज्ञानकूं पावै है, बहुरि ज्ञान पावै तब तिस ज्ञानहीकरि मोक्षमार्गकी लक्ष्य जो परमात्माका स्वरूप ताकूं लक्षता व्यावता संता तिस लक्षकूं पावै है ॥

भावार्थ—ज्ञान पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनयवान होय सो ज्ञानकूं पावै है तिस ज्ञानहीकरि शुद्धआत्माका स्वरूप जानिये है यातैं विशेष ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानकी प्राप्ति करनीं जातैं निज शुद्ध स्वरूपकूं जानि मोक्ष पाइये है, इहां जे विनयकरि रहित होय यथार्थ सूत्र पदतैं चिगे होय अष्ट भये होय तिनिका निषेध जाननां ॥ २२ ॥

आमैं याहीकूं दृढ करै है;—

माथा—मद्घणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणद्धं ।

परमत्थवद्धलक्खोण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स ॥ २३ ॥

संस्कृत—मतिधनुर्यस्य स्थिरं श्रुतं गुणः बाणाः सुसंति रत्नत्रयं ।

परमार्थवद्धलक्ष्यः नापि स्खलति मोक्षमार्गस्य ॥ २३ ॥

अर्थ—जो मुनिकै मतिज्ञानरूप धनुष थिर होय, बहुरि श्रुतज्ञानरूप जाकै गुण कहिये प्रत्यंचा होय, बहुरि रत्नत्रय रूप जाकै भला बाण होय, बहुरि परमार्थ स्वरूप निज शुद्धात्मस्वरूपका संबंधरूप किया है लक्ष्य जानैं ऐसा मुनि है सो मोक्षमार्गकूं नाहीं चूकै है ॥

भावार्थ—धनुषकी सर्व सामग्री यथावत मिलै तब निसानां नाहीं लूकै है तैसें मुनिके मोक्षमार्गकी यथावत सामग्री मिलै तब मोक्षमार्गतैं रहित ऐसी होय है ताका साधनकें मोक्ष पावै है यह ज्ञानका माहात्म्य होइ ॥

है तातैं जिनागम अनुसार सत्यार्थ ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानका साधन करनां ॥ २३ ॥

ऐसैं ज्ञानका निरूपण किया ।

आगैं देवका स्वरूप करै है;—

गाथा—सो देवो जो अर्थ धर्म काम सुदेइ णाणं च ।

सो देइ जस्म अत्थि हु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥ २४

संस्कृत—सः देवः यः अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च ।

सः ददाति यस्य अस्ति तु अर्थः कर्म च प्रव्रज्या ॥ २४ ॥

अर्थ—देव जाकू कहिये जो अर्थ कहिये धन अर धर्म अर काम कहिये इच्छाका विषय ऐसा भोग बहुरि मोक्षका कारण ज्ञान इनि च्यारि-निक्कू देवै । तहां यह न्याय है जो जाकै वस्तु होय सो देवै अर जाकै जो वस्तु न होय सो कैसैं दे, इस न्यायकरि अर्थ धर्म स्वर्गादिके भोग अर मोक्षका सुखका कारण जो प्रव्रज्या कहिये दीक्षा जाकै होय सो देव जाननां ॥ २४ ॥

आगैं धर्मादिका स्वरूप कहैं है जिनिके जाने देवादिका स्वरूप जान्या जाय;—

गाथा—धम्मो दयाविशुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरित्तता ।

देवो ववगयमो उदययरो भव्वजीवाणं ॥ २५ ॥

संस्कृत—धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता ।

देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम् ॥ २५ ॥

अर्थ—धर्म है सो तौ दयाकरि विशुद्ध है, बहुरि प्रव्रज्या है सो

गाथा—सर्व परिग्रहतै रहित है, बहुरि देव हैं तो नष्ट भया है मोह जाका ऐस-
सो भव्य जीवनिके उदयका करे है ॥

भावार्थ—लोकमें यह प्रसिद्ध है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पुरुषके प्रयोजन हैं इनिके अर्थ पुरुष काहू बंदै पूजै है, बहुरि यह न्याय है जो जाके जो वस्तु होय सो अन्यकूं दे अणछती कहाँतैं ल्यावै ताँतैं ये चार पुरुषार्थ जिनदेवकें पाइये हैं, धर्म तौ जिनकें दयारूप पाइये हैं ताकूं साधि तीर्थकर भये तब धनकी अर संसारके भोगकी प्राप्ति भई लोक पूज्य भएँ, बहुरि तीर्थकर परम पदवीमें दीक्षा ले सर्व मोहतैं रहित होय परमार्थस्वरूप आत्मीक धर्मकूं साधि मोक्षमुखकूं पाया सो ऐसैं तीर्थकर जिन हैं, सोही देव है लोक अज्ञानी जिनिकूं देव मानैं हैं तिनिकै धर्म अर्थ काम मोक्ष नांही जाँतैं केई हिंसक हैं केई विषयासक्त हैं मोही हैं तिनिकै धर्म काहेका ? बहुरि अर्थ कामको जिनिकै बांछः पाइये तिनिकै अर्थ काम काहेका ? बहुरि जन्म मरगतैं सहित हैं तिनिकै मोक्ष कैतैं ? ऐसैं देव सांचा जिनदेवही है येही भव्य जीवनिकै मनोरथ पूर्ण करै है, अन्य सर्व कल्पित देव हैं ॥ २५ ॥

ऐसैं देवका स्वरूप कथा ।

आगैं तीर्थका स्वरूप कहै हैं,—

गाथा—व्रतसम्यक्त्वविशुद्धे पंचेंद्रियसंजदे गिरावेकसे ।

गृहाण पुणी तित्थे दिक्खासिक्खासुगृहाणेण ॥ २६ ॥

संस्कृत—व्रतसम्यक्त्वविशुद्धे पंचेंद्रियसंयते निरपेक्षे ।

स्नातु शानिः तीर्थे दीक्षाशिक्षासुस्नानेन ॥ २६ ॥

अर्थ—व्रत सम्यक्त्वकरि विशुद्ध अर पांच इंद्रियनिकरि संयत कहिये संवरसहित बहुरि निरपेक्ष कहिये ख्याति लाभ पूजादिक इस लोकका फलकी तथा परलोकनिर्वाण स्वर्गादिकानिके भोगनिकी अपेक्षातैं रहित ऐसा आत्म स्वरूप तीर्थमें दीक्षा शिक्षारूप स्नानकरि पवित्र होइ ॥

स्वयम्

भावार्थ—तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण साहित पंच महाव्रतकरि शुद्ध अर पंच इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त इस लोक परलोक विषैं विषय भोग-निकी वांछातैं रहित ऐसैं निर्मल आत्माका स्वभावरूप तीर्थविषैं स्नान किये पवित्र होय हैं ऐसी प्रेरणा करै है ॥ २६ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—जं गिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं ।

तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि संतिभावेण ॥ २७ ॥

संस्कृत—यत् निर्मलं सुधर्मं सम्यक्तत्वं संयमं तपः ज्ञानम् ।

तत् तीर्थं जिनमार्गे भवति यदि शान्तभावेन ॥ २७ ॥

अर्थ—जिनमार्गविषैं सो तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित सम्यक्त्व तथा निर्मल इंद्रिय मनका वशकरण। षट्कायके जीवनिकी रक्षा करनां ऐसा निर्मल संयम तथा अनशन अवमौदर्य व्रतपरिसंख्यान रसपरित्याग विविकृतशय्यासन काय-क्लेश ऐसा बाह्य तौ छह प्रकार बहुरि प्रायश्चित्त विनय वैयाकृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार अंतरंग ऐसैं बारह प्रकार निर्मल तप, बहुरि जीव अजीव आदिक पदार्थनिका यथार्थ ज्ञान ये तीर्थ हैं ये भी जो शांतभावसहित होय कपायभाव न होय तब निर्मल तीर्थ है जातैं ये क्रोधादिभावसहित होय तौ मलिनता होय निर्मलता न रहै ॥

भावार्थ—जिनमार्गविषैं ऐसा तीर्थ कहा है लोक सागर नदीनिकूं तीर्थ मानि स्नान करि पवित्र भया चाहै है सो शरीरका बाह्य मल इनितैं किंचित् उतै है अर शरीरमें धातु उग्धातु रूप अन्तर्मल इनितैं उतै नांही अर ज्ञानावरण आदि कर्मरूप । देह अर अज्ञान राग द्वेष मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्माके अन्तर्गत करै सो तौ इनितैं किंचित् मात्र

भी उ नांही उलटा हिंसादिकतैं पापकर्मरूप मल ढगै है यातैं सागर नदी दिकूं तीर्थ माननां भ्रम है । जाकरि तिरिये सो तीर्थ है ऐसा जि गिमें कहा है सो ही संसारसमुद्रतैं तारनेवाला जाननां ॥ २७ ॥

सैं तीर्थका स्वरूप कहा ।

आगैं अरहंतका स्वरूप कहै है;—

तथा—गामे ठवणे हि य संदब्बे भावे हि सगुणपज्जाया ।

चउणागदि संपदिमे भावा भावन्ति अरहंतं ॥ २८ ॥

संस्कृत—नाम्नि संस्थापनायां हि च संद्रव्ये भावे च सगुणपर्यायाः

च्यवनमागतिः संपत् इमे भावा भावयन्ति अर्हन्तम् २८

अर्थ:—नाम स्थापना द्रव्य भाव ये चार भाव कहिये पदार्थ हैं ते अरहंतकूं जनावैं हैं बहुरि सगुणपर्यायाः कहिये अरहंतके गुण पर्यायनि-सहित बहुरि चउणा कहिये च्यवन अरआगति बहुरि संपदा ऐसे ये भाव अरहंतकूं जनावैं हैं ॥

भावार्थ—अरहंत शब्दकरि यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी होय ते सर्वही अरहंत है तथापि इहां तीर्थकरपदकूं प्रधानकरि कथन करिये है तातैं नामादिककरि जनावनां कहा है । तहां लोकव्यवहारमें नाम आदिकी प्रवृत्ति ऐसैं है जो जा वस्तुका नाम होय तैसा गुण न होय ताकूं नामानिक्षेप कहिये । बहुरि जिस वस्तुका जैसा आकार होय तिस आकार ताकी काष्ठ पाषाणदिककी मूर्ति बनाय ताका संकल्प करिये ताकूं स्थापना कहिये । बहुरि जिस वस्तुकी पहली अवस्था होय

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'संपदिमें' ऐसा पाठ है ।

२—'सगुणपज्जाया' इस पदकी 'स्वगुणपर्यायाः' ऐसी संस्कृत मुद्रित संस्कृत प्रतिमें है ।

तिसहीकू आगली अवस्था प्रधान करि कहै ताकू द्रव्य कहिये। बहुरि वर्तमानमें जो अवस्था होय ताकू भाव कहिये। ऐसैं च्यार निक्षेपकी प्रवृत्ति है ताका कथन शास्त्रमें भी लोककू समझावनेकू कियाहै, जो निक्षेपविधान करि नाम स्थापना द्रव्यकू भाव न समझनां, नामकू नाम समझनां, स्थापनाकू स्थापना समझनी, द्रव्यकू द्रव्य समझनां, भावकू भाव समझनां, अन्यकू अन्य समझे व्यभिचारनामा दोष आवै है ताहि भेटनेकू लोगकू यथार्थ समझानेकू शास्त्रविपै कथन है सो इहां तैसा निक्षेपका कथन न समझनां, इहां तौ निश्चयनयकू प्रधानकरि कथन है सो जैसा अरहंतका नाम है तैसाही गुणसहित नाम जाननां, बहुरि स्थापनां जैसी जाकी देह सहित मूर्ति है सो ही स्थापना जाननीं, बहुरि जैसा जाका द्रव्य है तैसा द्रव्य जाननां, बहुरि जैसा जाका भाव है तैसाही जाननां ॥ २८ ॥

ऐसैंही कथन आगैं करिये है तहां प्रथमही नामकू प्रधान करि कहै है;—

गाथा—दंशण अणंत णागे मोक्खो णट्टकम्मबंधेण ।

णिरुवम गुणमारुढो अरहंतो एरिसो होई ॥ २९ ॥

संस्कृत—दर्शनं अनंतं ज्ञानं मोक्षः नष्टाटकर्मबंधेन ।

निरुधमगुणमारुढः ईदृशो भवति ॥ २९ ॥

अर्थ—जाकै दर्शन अर ज्ञान ये तौ अनंत हैं धातिकर्मके नाशतैं सर्व ज्ञेय पदार्थनेकू देखनां जाननां जाकै है, बहुरि नष्ट भया जे अष्ट कर्मनिका बंध ताकरि जाकै मोक्ष है, इहां सत्त्वकी अर उदयकी विवक्षा लेनीं केवलीकै आठौंही कर्मका बंध नाहीं यद्यपि साता वेदनीयका बंध सिद्धांतमें कछा है तथापि स्थिति अनुभागरूप नाहीं तातैं अबंधतुल्यही

है ऐसा आठूही कर्म बंधके अभावकी अपेक्षा भावमोक्ष कहिये, बहुरि उपमारहित गुणनिकारि आरूढ है सहित है ऐसे गुण छद्मस्थमें कइंही नांही तातैं उपमारहित गुण जामैं है ऐसा अरहंत होय ॥

भावार्थ—केवल नाममात्रही अरहंत होय ताकूं अरहंत न कहिए ऐसे गुणनिकारि सहित होय ताकूं नाम अरहंत कहिये ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—जरवाहिजन्ममरणं चउगइगमणं च पुण्य पावं च ।

हंतूण दोसकम्मे हुउ पाणमयं च अरहंतो ॥ ३० ॥

संस्कृत—जराव्याधिजन्ममरणं चतुर्गतिगमनं पुण्यं पापं च ।

हत्वा दोषकर्माणि भूतः ज्ञानमयश्चार्हन् ॥ ३० ॥

अर्थ—जरा कहिये बुढापा अर व्याधि कहिये रोग अर जन्म मरण च्यार गतिनिविधैं गमन पुण्य बहुरि पाप बहुरि दोषनिका उपजावनेवाला कर्म तिनिका नाशकीरि अर केवल ज्ञानमयी अरहंत बूवा होय सो अरहंत है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ गुणनिका सद्भावकरि अरहंत नाम कइया बहुरि इस गाथामैं दोषनिका अभावकरि अरहंत नाम कइया । तहां राग द्वेष मद मोह अरति चिंता भय निद्रा विषाद खेद त्रिस्मय ये ग्यारह दोष तौ घातिकर्मके उदयतैं होय हैं, बहुरि क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग खेद ये अघातिकर्मके उदयतैं होय हैं; तहां इस गाथामैं जरा रोग जन्म मरण च्यार गतिनिधैं गमनका अभाव कहनेतैं तौ अघातिकर्मतैं भये दोषनिका अभाव जाननां जातैं अघातिकर्ममें इनि दोषनिकी उपजावन-हारी पापप्रकृतिनिका उदयका अरहंतकै अभाव है, बहुरि रागद्वेषादिक दोषनिका घातिकर्मके अभावतैं अभाव है । इहां कोई पूछै—मरणका

अर पुण्यका अभाव कह्या सो मोक्षगमन होना यह मरण अरहंतकै है अर पुण्यप्रकृतिनिका उदय पाइये है, तिनिका अभाव कैसैं ? ताका समाधान—इहां मरण होय करि फेरि संसारमें जन्म होय ऐसा मरणकी अपेक्षा है ऐसा मरण अरहंतकै नांही तैसैंही जो पुण्यप्रकृतिका उदय पापप्रकृति सापेक्ष करै ऐसे पुण्यके उदयका अभाव जाननां अथवा बंध अपेक्षा पुण्यकाभी बंध नांही हे सातावेदनीय बंधे सो स्थिति अनुभाग-विना अवंधतुल्यही है । बहुरि कोई पूछै—केवलीकै असाता वेदनीयका उदयभी सिद्धांतमें कह्या है ताकी प्रवृत्ति कैसैं है ? ताका समाधान—ऐसा जो असाताका निपट मंद अनुभाग उदय है अर साताका अति-तीव्र अनुभाग उदय है ताके वशतैं असाता कछु बाह्य कार्य करनें समर्थ नांही सूक्ष्म उदय देय खिरि जाय है तथा संक्रमणरूप होय सातारूप होय जाय है ऐसैं जाननां । ऐसैं अनंत चतुष्टयकरि सहित सर्व दोषरहित सर्वज्ञ वीतराग होय सो नामकरि अरहंत कहिये ॥ ३० ॥

आगैं स्थापनाकरि अरहंतका वर्णन करैं हैं;—

गाथा—गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं ।

ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स ॥ ३१ ॥

संस्कृत—गुणस्थानमार्गणाभिः च पर्याप्तिप्राणजीवस्थानैः ।

स्थापना पंचविधैः प्रणेतव्या अर्हत्पुरुषस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ—गुणस्थान मार्गणास्थान पर्याप्ति प्राण बहुरि जीवस्थान इनि पांच प्रकार करि अरहंत पुरुषकी स्थापनां प्राप्त करनीं । अथवा ताकूं प्रणाम करनां ॥

भावार्थ—स्थापनानिक्षेपमें काष्ठपाषाणादिकमें संकल्प करनां कह्या है सो इहां प्रधान नांही, इहां निश्चय प्रधान करि कथन है तहां गुण-स्थानादिककरि अरहंतका स्थापन कह्या है ॥ ३१ ॥

आगँ विशेष कहै है;—

गाथा—तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो ।

चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा॥३२॥

संस्कृत—त्रयोदशे गुणस्थाने सयोगकेवलिकः भवति अर्हन् ।

चतुस्त्रिंशत् अतिशयगुणा भवंति स्फुटं तस्याष्ट प्रातिहार्याः

अर्थ—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिनिमें सयोगकेवली नाम तेरहमां गुणस्थान है तिसविधै योगनिकी प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानकरि सहित सयोगकेवली अरहंत होय है, बहुरि चौतीस अतिशय ते हैं गुण जाकैं बहुरि ताकै आठ प्रातिहार्य होय हैं ऐसा तौ गुणस्थानकरि स्थापना अरहंत कहिये ॥

भावार्थ—इहां चौतीस अतिशय अर आठ प्रातिहार्य कहने तैं तौ समवसरणमें विराजमान तथा विहार करता अरहंत है, बहुरि सयोग कहनेतैं विहारकी प्रवृत्ति अर वचनकी प्रवृत्ति सिद्ध होय है बहुरि केवली कहनेतैं केवलज्ञानकरि सर्व तत्त्वका जाननां सिद्ध होय है । तहां चौतीस अतिशय तौ ऐसैं—जन्मतैं प्रगट होंय दश—मलमूत्रका अभाव १ पसेवका अभाव २ बबल राखेर होय ३ समचतुरस्र-संस्थान ४ वज्रवृषभनाराच संहनन ५ सुंदररूप ६ सुगंधशरीर ७ भले लक्षण होय ८ अनंतबल ९ मधुरवचन १० ऐसैं दश । बहुरि केवलज्ञान उपजे दश होय—उपसर्गका अभाव १ अदयाका अभाव २ शरीरकी छाया पड़ै नहीं ३ चतुर्मुख दीखै ४ सर्व विद्याका स्वामीपणां ५ नेत्र टिम-कारै नहीं ६ शतयोजनसुभिक्षता ७ आकाशगमन ८ कबलाहार नाहीं ९ नख केश बढ़ै नांही १० ऐसैं दश । बहुरि चौदह देवकृत—सकलार्द्रमागधी भाषा १ संकलजीवनिमें मैत्रीभाव २ सर्व ऋतुके फल फूल फलैं ३ दर्प-

णसमान भूमि ४ कंटकरहित भूमि ५ मंद सुगंधपवन ६ सर्वकें आनंद ७ गंधोदकशृष्टि ८ पाद तलै कमलरचै ९ सर्वधान्यनिष्पत्ति १० दशों दिशा निर्मल ११ देवानिको आह्वानन शब्द १२ धर्मचक्र आगै चलै १३ अष्ट मंगलद्रव्य आगै चालै १४ । अष्ट मंगल द्रव्यके नाम छत्र १ ध्वजा २ दर्पण ३ कलश ४ चामर ५ भृंगार ६ ताल ७ सुप्रतीच्छक ८ ऐसैं आठ । ऐसैं चौतीसके नाम कहे । बहुरि अष्ट प्रातिहार्य होय हैं तिनिके नाम अशोकवृक्ष १ पुष्पशृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर ४ सिंहासन ५ भामंडल ६ हुंदुभिवादित्र ७ छत्र ८ ऐसैं आठ । ऐसैं तौ गुणस्थानकरि अरहंतका स्थापन कहा ॥ ३१ ॥

अब मार्गणाकरि कहै हैं—

गाथा—गड इंदियं च काए जोग वेए कषाय णाणे य ।

संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३२॥

संस्कृत—गतौ इन्द्रिये च काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने च ।

संयमे दर्शने लेख्यायां भव्यत्वे सम्यक्त्वे संज्ञिनि

आहारे ॥ ३३ ॥

अर्थ—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान संयम, दर्शन, लेख्या; भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार ऐसैं चौदह । तहां अरहंत सयोगकेवललीं तेरह गुणस्थान हैं तहां मार्गण लगाइये तब गति च्यारमें मनुष्यगति है, इन्द्रियजाति पांचमें पंचेन्द्रिय जाति है, काय छहमें त्रसकाय है—योग पंदरामें योग मनोयोग सत्य अनुभय ऐसैं दोय बहुरि तेही वचनयोग दोय बहुरि काययोग औदारिक ऐसैं पांच हैं अर समुद्धात करै ताकै औदारिकमिश्र कार्माण ये दोय मिलि सात हैं बहुरि वेद तीनों हीका अभाव है, बहुरि कषाय पच्चीस सर्वही का अभाव है, बहुरि ज्ञान आठमें केवलज्ञान है, संयम सातमें एक यथाख्यात है, दर्शन च्यारमें

एक केवल दर्शन है लेश्या छहमें एक शुक्लयोगनिमित्त है बहुरि भव्य दोयमें एक भव्य है, सम्यक्त्व छहमें क्षायिक सम्यक्त्व है संज्ञी दोयमें संज्ञी है सो द्रव्यकरि हैं भावकरि क्षयोपशमरूपभाव मनका अभाव है आहारक अनाहारक दोयमें आहारक है सो नोकर्मवर्गणा अपेक्षा है कवलाहार नांही है अर समुद्रात करै तो अनाहारक भी है ऐसैं दोऊ है। ऐसैं मार्गणा अपेक्षा अरहंतका स्थापन जाननां ॥ ३३ ॥

आगैं पर्याप्तिकरि कहै है;—

गाथा—आहारो य शरीरो इन्द्रियमणआणपाणभासा य ।

पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो ह्वइ अरहो ॥ ३४ ॥

संस्कृत—आहारः च शरीरं इन्द्रियमनआनप्राणभाषाः च ।

पर्याप्तिगुणसमृद्धः उत्तमदेवः भवति अर्हन् ॥ ३४ ॥

अर्थ—आहार बहुरि शरीर इन्द्रिय मन आनप्राण कहिये श्वासोच्छ्वास भाषा ऐसैं छह पर्याप्ति हैं, इस पर्याप्तिगुण करि समृद्ध कहिये युक्त उत्तमदेव अरहंत हैं ॥

भावार्थ—पर्याप्तिका स्वरूप ऐसा जो-अन्य पर्यायितैं च्यवनकरि अन्य पर्यायमें प्राप्त होय तब तीन समय उत्कृष अंतरालमें रहै पीछैं सैनी पंचेन्द्रिय उपजै सो जहां तीन जातिकी वर्गणाका ग्रहण करै; आहारवर्गणा भाषावर्गणा मनोवर्गणा; ऐसैं ग्रहण करि आहारजातिकी वर्गणातैं तौ आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास ऐसै च्यार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त कालमें पूरण करै पीछैं भाषाजाति मनोजातिकी वर्गणातैं अन्तर्मुहूर्तहीमें भाषा मन पर्याप्ति पूर्ण करै ऐसैं छह पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण करै है पीछैं आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहावै अर नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करबोही करै, इहां आहार नाम कवलाहारका न जाननां । ऐसैं तेरहैं गुणस्थान भी अर-हंतकै पर्याप्ति पूर्णही है ऐसैं पर्याप्तिकरि अरहंतका स्थापना है ॥ ३४ ॥

आगै प्राणकरि कहै हैं;—

गाथा—पंच वि इंद्रियपाणा मणवयकाएण तिणिण बलपाणा ।

आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥३५॥

संस्कृत—पंचापि इंद्रियप्राणाः मनोवचनकायैः त्रयो बलप्राणाः ।

आनप्राणप्राणाः आयुष्कप्राणेन भवंति दशप्राणाः ॥३५॥

अर्थ—पांच तौ इंद्रिय प्राण बहुरि मन वचन कायकरि तीन बल-प्राण एक श्वासोच्छास प्राण एक आयुप्राणकरि सहित दश प्राण हैं ॥

भावार्थ—ऐसैं दश प्राण कहे तिनिमें तेरहैं गुणस्थान भावइंद्रिय अर भावमनका क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नाहीं तिस अपेक्षा तौ कायबल वचनबल श्वासोच्छास आयु ये च्यार प्राण कहिये अर द्रव्य अपेक्षा दशौही कहिये, ऐसैं प्राणकरि अरहंतका स्थापन है ॥ ३५ ॥

आगै जीवस्थानकरि कहै हैं;—

गाथा—मणुयभवे पंचिंद्रिय जीवहाणेषु होइ चउदसमे ।

एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो ॥ ३६ ॥

संस्कृत—मनुजभवे पंचेंद्रियः जीवस्थानेषु भवति चतुर्दशे ।

एतद्गुणगणयुक्तः गुणमारूढो भवति अर्हन् ॥३६॥

अर्थ—मनुष्यभवविषै पंचेंद्रियनामा चौदमां जीवस्थान कहिये जीव-समास ताविषै इतने गुणानिके समूहकरि युक्त तेरमें गुणस्थानकूं प्राप्त अरहंत होय है ॥

भावार्थ—जीवसमास चौदह कहेहैं ऐकेंद्रिय सूक्ष्मवादर २ वेइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय ऐसैं त्रिकलत्रय ३ पंचेंद्रिय असैनी सैनी २ ऐसैं सात भये ते पर्याप्त अपर्याप्त करि चौदह भये तिनिमें चौदहमां सैनी पंचेंद्रिय जीवस्थान अरहंतकैहैं । गाथामें सैनीका नाम न लिया अर मनुष्यभवका

नाम लिया सो मनुष्य सैनीही हांयहै असैनी न होय तातैं मनुष्य कहनेतैं
सैनीही जाननां ॥ ३६ ॥

ऐसैं गुणनिकरि सहित स्थापना अरहंतका वर्णन किया ।

आमैं द्रव्यकूं प्रधानकरि अरहंतका निरूपण करै है;—

गाथा—जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं ।
सिंहाण खेल सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य ॥ ३७ ॥

दस पाणा पज्जती अट्टसहस्सा य लक्खणा भणिया ।
गोक्षीरसंखधवलं मांसं रुधिरं च सव्वंगे ॥ ३८ ॥

एरिसगुणोहिं सव्वं अट्टसयवंतं सुपरिमलामोयं ।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स ॥ ३९ ॥

संस्कृत—जराव्याधिदुःखरहितः आहारनीहारवर्जितः विमलः ।
सिंहाणः खेलः स्वेदः नास्ति दुर्गन्धः च दोषः च ३७
दश प्राणाः पर्याप्तयः अष्टसहस्राणि च लक्षणानि
भणितानि ।

गोक्षीरशंखधवलं मांसं रुधिरं च सर्वाङ्गे ॥ ३८ ॥

ईदृशगुणैः सर्वः अतिशयवान् सुपरिमलामोदः ।

औदारिकश्च कायः अर्हत्पुरुषस्य ज्ञातव्यः ॥ ३९ ॥

अर्थ—अरहंत पुरुषकै औदारिक काय ऐसा जाननां—जरा बहुरि
व्याधि रोग इनिसंबंधी दुःख जामैं नाहीं है बहुरि आहारनीहारकरि वर्जित
हैं बहुरि त्रिमूत्र कहिये मलमूत्रकरि रहित है बहुरि सिंहाण श्लेष्म खेल
कहिये थूक पसेव बहुरि दुर्गंधी कहिये जुगुप्सा ग्लानिता दुर्गंधादि दोष जामैं
नाहीं है ॥ ३७ ॥

दश तौ जामैं प्राण हैं ते द्रव्य प्राण जाननां बहुरि पूर्ण पर्याप्ति है बहुरि एक हजार आठ लक्षण जाँनै कहै हैं बहुरि गोक्षीर कहिये कपूर अथवा चंदन तथा शंख सारिखा जामैं सर्वांग धवल सधेर मांस है ॥ ३८ ॥

ऐसे गुणनिकरि संयुक्त सर्वही देह अतिशयनिकरि साहित निर्मल हैं आमोद कहिये मुगंध जामैं ऐसा औदारिक देह अरहंत पुरुषका जाननां ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इहां द्रव्य निक्षेप नाहीं समझनां आत्मातैं जुदा ही देहकूं प्रधान करि द्रव्य अरहंतका वर्णन है ॥ ३७—३८—३९ ॥

ऐसैं द्रव्य अरहंतका वर्णन किया ।

आगैं भावकूं प्रधानकरि वर्णन करै है;—

गाथा—मयरायदोसरहिओ कषायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो ।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुण्येयव्वो ॥ ४० ॥

संस्कृत—मदरागदोपरहितः कषायमलवर्जितः च सुविशुद्धः ।
चित्तपरिणामरहितः केवलभावे ज्ञातव्यः ॥ ४० ॥

अर्थ—केवलभाव कहिये केवलज्ञानरूपही एक भाव होतैं सतैं अरहंत ऐसा जाननां—मद कहिये मान कषायतैं भया गर्व बहुरि राग द्वेष कहिये कषायनिके तीव्र उदयतैं होय ऐसी प्रीति अर अप्रीतिरूप परिणाम इनितैं रहित है, बहुरि पच्चीस कषायरूप मल तौँको द्रव्य कर्म तथा तिनिके उदयतैं भया भावमल ताकरि वर्जित है याहाँतैं अतिशयकरि विशुद्ध है निर्मल है, बहुरि चित्तपरिणाम कहिये मनका परिणमनरूप विकल्प ताकरि रहित है ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमरूप मनका विकल्प नाहीं है, ऐसा केवल एक ज्ञानरूप वीतरागस्वरूप भाव अरहंत जाननां ॥ ४० ॥

आगैं भावहीका विशेष कहै है;—

गाथा—सम्मद्दसणि पस्सइ जाणदि णाणेण दच्चपज्जाया ।

सम्मत्तगुणविसुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो ॥ ४१ ॥

संस्कृत—सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान् ।

सम्यक्त्वगुणविशुद्धः भावः अर्हतः ज्ञातव्यः ॥ ४१ ॥

अर्थ—भावअरहंत—सम्यग्दर्शनकरि तौ आपकूं तथा सर्वकूं सत्ता-
मात्रकरि देखै है ऐसा केवल दर्शन जाकै है बहुरि ज्ञानकरि सर्व द्रव्य
पर्यायनिकूं जानै है ऐसा जाके केवल ज्ञान है बहुरि सम्यक्त्व गुणकरि
विशुद्ध है क्षायिक सम्यक्त्व जाकै पाहिये है ऐसा अरहंतका भाव जाननां ॥

भावार्थ—अरहंत होय है सो घातियाकर्मके नाशतैं होय है सो यह
मोहकर्मके नाशतैं तौ मिथ्यात्व कषायके अभावतैं परमवृत्तरागपणां सर्व-
प्रकार निर्मलता होय है, बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके नाशतैं
अनंतदर्शन अनंतज्ञान प्रगट होय है तिनकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं एकै
काल प्रत्यक्ष देखै जानै है । तहां द्रव्य छह हैं—तिनिमें जीवद्रव्य तौ
संख्याकरि अनंतानंत है, बहुरि पुद्गल द्रव्य तिनिमें अनंतानंत गुणे हैं,
बहुरि आकाश द्रव्य एक है सो अनंतानंत प्रदेशी है ताकै मध्य सर्व
जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेशमें तिष्ठें हैं, बहुरि एक धर्मद्रव्य एक अधर्म-
द्रव्य ये दोऊ असंख्यात प्रदेशी हैं इनितैं आकाशके लोक अलोकका
विभाग है तिस लोकहीमें कालद्रव्यके असंख्यात कालाणु तिष्ठै हैं ।
इनि सर्व द्रव्यके परिणामरूप पर्याय हैं ते एक एक द्रव्यके अनंतानंत
हैं तिनिकूं कालद्रव्यका परिणाम निमित्त है ताके निमित्ततैं क्रमरूप
होता समयादिक व्यवहारकाल कहावै है तिसकी गणनातैं अतीत अना-
गत वर्त्तमान द्रव्यनिके पर्याय अनंतानंत हैं तिनि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं
अरहंतका दर्शन ज्ञान एकै काल देखै जानै है याही तैं अरहंतकूं सर्व
दर्शी सर्वज्ञ कहिये है ॥

भावार्थ—ऐसे अरहंतका निरूपण चौदह गाथानिमै किया तहां प्रथम गाथामै नाम स्थापना द्रव्य भाव गुण पर्याय सहित च्यवन आगति संपत्ति ये भाव अरहंतकूं जानावै हैं ताका व्याख्यान नामादि कथनमै सर्वही आयगया ताका संक्षेप भावार्थ लिखिये है—तहां प्रथम तौ गर्भकल्याणक होय है सो गर्भमै आवतैं छह महीने पहली इन्द्रका प्रेन्या धनद जिस राजाका राणीके गर्भमै आवसी ताका नगरकी शोभा करै, रत्नमयी सुवर्णमयी मंदिर रचै, नगरकै कोट खाई दरवाजे सुंदर वन उपवनकी रचना करै, सुन्दर जिनके भेष ऐसे नर नारी पुरमैं बसावै, बहुरि नित्य राजमंदिरपरि रत्ननिकी वर्षा होवो करै बहुरि माताके गर्भमैं आवै तब माताकूं सोलै सपन आवै, रुचकद्वीपकी बसबावाली देवांगना माताकी नित्य सेवा करै, ऐसे नव मास बीते प्रभुका तीन ज्ञान दश अतिशय लिये जन्म होय, तब तीन लोकमैं क्षोभ होय, देवनिकै विना बजाए बाजा वाजै, इंद्रका आसन कंपै, तब इन्द्र प्रभुका जन्म हुवा जानि स्वर्गतैं ऐरावति हस्ती चढ़ि आवै, सर्व च्यार प्रकारके देव देवी भेले होय आवैं, शची (इन्द्राणी) माता पासि जाय प्रच्छन्न प्रभुकौ ले आवै, इन्द्र हर्षित हजार नेत्रनिकारि देखै, सौधर्म इन्द्र अपनी गोदमैं लेय ऐरावति हस्तीपरि चढ़ि मेरुपर्वतनैं चालै, ईशान इंद्र छत्र राखै, सनत्कुमार माहेन्द्र इन्द्र चमर ढारै, मेरुके पांडुकवनकी पांडुकशिलापरि सिंहासनपरि प्रभुकूं थापै, सारे देव क्षीरसमुद्रतैं एक हजार आठ कलशनिमैं जल ल्याय देव देवांगना गीत नृत्य बादित्र बड़े उत्साहसहित प्रभुके मस्तकपरि ढारि जन्मकल्याणकका अभिषेक करै, पीछैं शंगार वस्त्र आभूषण पहराय माताकै मंदिर ल्याय माताकूं सौपै, इन्द्रादिक देव अपने स्थानक जांय, कुबेर सेवाकूं रहै, पीछैं कुमार अवस्था तथा राज्य अवस्था भोगै तामैं मनोवांछित भोग भोग, पीछैं

गाथा—मुष्णहरे तरुहिदे उज्जाणे तह मसाणवासे वा ।
 गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा ॥४२॥
 संवसासक्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं ।
 जिणभवणं अह वेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति ॥४३॥
 पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया गिरावेक्खा ।
 सज्झायझाणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छंति ॥४४॥
 कृत- शून्यगृहे तरुमूले उद्याने तथा श्मशानवासे वा ।
 गिरिगुहायां गिरिशिखरे वा भीमवने अथवा वसतौ वा॥
 स्ववशासक्तं तीर्थं वचश्चैत्यालयत्रिकं च उक्तैः ।
 जिनभवनं अथ वेध्यं जिनमार्गे जिनवरा विदन्ति ॥४५॥
 पंचमहाव्रतयुक्ताः पंचेन्द्रियसंयताः निरपेक्षाः ।
 स्वाध्यायध्यानयुक्ताः मुनिर्वैश्वभाः नीच्छन्ति॥४६॥

अर्थ—मनुष्य, वृक्षका मूल कोटर, उद्यान वन, मसाण भूमि,
 गिरिकी गुफा, गिरिका शिखर, भयानकवन, अथवा वसितका, इतिविधै
 दीक्षासहित मुनि तिष्ठे ये दीक्षायोग्य स्थान हैं ॥

बहुरि स्ववशासक्त कहिये स्वाधीन मुनिनिकरि आसक्त जे क्षेत्र तिनमें
 मुनिवसै, बहुरि जहांतैं मुक्ति पत्रारे ऐसे तौ तीर्थस्थान बहुरि वच चैत्य
 आलय ऐसा त्रिक जे, पूर्व उक्त कहिये आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी
 मुनि अरहत सिद्ध स्वरूप तिनिका नामके अक्षररूप मंत्र तथा तिनिकी

(१) संस्कृत प्रतिमें 'सवसा' 'सर्सा' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत
 स्ववशा 'सर्व' इस प्रकार लिखी हैं ।

(२) वचचइदालत्तयं इसके भी दो ही पद किये हैं 'वचः' 'चैत्यालयं' इस
 प्रकार ।

कछु वैराग्यका कारण पाय संसार देह भोगतैं विरक्त होय, तब लौकिक देव आय वैराग्यकी वधावन हारी प्रभुकी स्तुति करै, पाँछैं इन्द्र आय तपकल्याणक करै पालकामैं बैठाय बड़े बड़े उत्सवतैं वनमैं लेजाय, तहां प्रभु पवित्र शिलापरि बैठे पंचमुष्टीतैं लौंचकरि पंच महाव्रत अंगीकार करै समस्त परिग्रहका त्यागकरि दिगंबररूप धारि ध्यान करै, तत्काल मनःपर्य-यज्ञान उपजै, पाँछैं केतेक काल बांते तपके बलकरि धातिकर्मका प्रकृति ४७ अवाति कर्मप्रकृति १६ ऐसैं तरेसठि प्रकृतिका सत्तामैंसूं नाशकरि केवर-इपजाय अनंतचतुष्टय पाय क्षुधादिक अठारह दोषनितैं रहित होय । होय, तब इन्द्र आय समवसरण रचै सो आगमोक्त अनेक सहेत मणिसुवर्णमयी कोट खाई वेदी च्याखूं दिशा च्यार दरवाजा । स्तंभ नाव्यशाला वन आदि अनेक रचना करै, ताके मध्य सभामें बारह सभा, तिनिमें मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका देव देवी ति-तिष्ठैं, प्रभुके अनेक अतिशय प्रगट होयें, सभामंडपके बीचि तीन पीठ परि गंधकुटीकैं बीचि सिंहासनपरि व कमलासन ऐतरेकि प्रभु । शिव अर अष्ट प्रातिहार्ययुक्त होय बाणी खिरै ताकूं सुनि गणधर द्वादशांग शास्त्र रचै, ऐसैं केवलकल्याणकका उत्सव इन्द्र करै है पीछैं प्रभु बिहार करै ताका बड़ा उत्सव देव करै, पाँछैं केतेक कारूपीछैं आयुके दिन थोरे रहैं तब योगनिरोध करि अधातिकर्मका नाशकरि मुक्ति पधारै, तब पीछैं शरीरका संस्कार इन्द्र उत्सवसहित निर्वाण कल्याण करै । ऐसैं तीर्थकर पंच कल्याणककी पूजा पाय अरहंत कहाय निर्वाण प्राप्त होय है ऐसैं जाननां ॥

आगैं प्रव्रज्याका निरूपण करै है ताकूं दीक्षा कहिये ताकूं प्रथमही दीक्षाके योग्य स्थानकविशेषकूं तथा दीक्षासहित मुनि जहां तिष्ठै ताका स्वरूप कहै है,—

शास्त्ररूपवाणी सो तो वच, अर तिनि कै आकार धातु पाषाणकी प्रतिमा स्थापन सो चैत्य, अर सो प्रतिमा तथा अक्षर मंत्र वाणी जाँ मैं स्थापिये ऐसा आलय मंदिर यंत्र पुस्तक ऐसा वच चैत्य आलयकात्रिक, बहुरि अथवा जिनमंदिर कहिये अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर ऐसा आयतनादिक तिनि कै समानासी तिनि का व्यवहार, ताहि जिनमार्गविषै जिनवर देव वेध्य कहिये दीक्षासहित मुनिनि कै ध्यानेयोग्य चितवन करनेयोग्य कहै है ॥

बहुरि जे मुनि प्रथम कहिये मुनिनि मैं प्रधान हैं ते कहे ते शून्यगृहादिक तथा तीर्थ नाम मंत्र स्थापनरूप मूर्ति अर तिनि का आलय मंदिर अर अकृत्रिम जिनमंदिर तिनि कूँ णिइच्छंति कहिये निश्चयकरि मुनि मैं सूना घर आदिक मैं बसैं हैं अर तीर्थ आदिका ध्यान में हैं अर अन्यत्र तहां दीक्षा देहैं । इहां 'णिइच्छंति' का 'णिइच्छंति' ऐसागी है ताका काकांत्तिकरि तौ ऐसा अर्थ होय है "इहा न इष्ट करै है करैही है" । अर एक टिप्पणी मैं ऐसा अर्थ है : ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक तिन कूँ स्ववशासक्त णिच्छाचारी भ्रष्ट आचारी तिनि करि आसक्त होय युक्त होय तौ ते ध्यान इष्ट न करै तहां न बसैं । कैसे हैं ते मुनिप्रधान—पांच मंडलानिका संयुक्त हैं, बहुरि कैसे हैं—पांच इन्द्रियनिका है भलै प्रकार जोत जिनके बहुरि कैसे हैं—निरपेक्ष हैं काहू प्रकारकी वांछाकरि मुनि भये है, न्हुरि कैसे हैं—स्वाध्याय अर ध्यानकरि युक्त हैं कई तौ शास्त्रापद पढ़ावैं कई धर्म शुद्धध्यान करैं हैं ॥

भकार्थ—इहां दैवयोग्य स्थानक तथा दीक्षासहित दीक्षा देनेवाला मुनि तथा तिनि के चितवन योग्य व्यवहारका स्वरूप कहा है ॥ ४२-४३-४४ ॥

आगैं प्रव्रज्याकां स्वरूप है :—

गाथा—गिहग्रंथमोहमुक्ता बावीसपरीषदा जितकषाया
पावारंभविमुक्ता पञ्चज्जा एरिसा भणिप्पा ॥ ४५ ॥

संस्कृत—गृहग्रंथमोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीषदा जितकषाया
पापारंभविमुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४५ ॥

अर्थ—गृह कहिये घर अर ग्रंथ कहिये परिग्रह इति दोऊनितैं
तिनिका मोह ममत्व इष्ट अनिष्टबुद्धि ताहें रहित हैं, बहुदूरि बावीस
पहनिका सहनां जामैं होय है, बहुदूरि जीते है कषाय जामैं, बहुदूरि
रूप जो आरंभ ताकीर रहित है, ऐसी प्रव्रज्या जिनेश्वर देखव क

भावार्थ—जैन दीक्षामैं कछुभी परिग्रह नांही, सर्व संस
बाईस परीषहनिका जामैं सहनां, कषायनिष्ठा जीतनां प
अभाव । ऐसी दीक्षा अन्य मतमैं नांही ॥ ४५ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

करण

तथा

गाथा—धनधण्यवत्तदाणं हिरण्यसयणसनादि छत्रा
कुदाणविरहरहिया पञ्चज्जा एरिसा भणिप्पा ॥

संस्कृत—धनधान्यवस्त्रदानं हिरण्यशयनसनादि छत्रा
कुदानविरहरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥

अर्थ—धन धान्य वस्त्र इनिका दान बहुदूरि हिरण्य कहिये
सोना आदिक बहुदूरि शय्या आसन आदि शब्दतैं छत्र चामरभूमि
क्षेत्र आदिक ये कुदान ताका देना ताकीर रहित ऐसी प्रव्रज्या कहै

भावार्थ—अन्यमती केई ऐसी प्रव्रज्या कहैं है—जो गऊ घस ध
वस्त्र सोना रूपा शयन आसन छत्र चामर भूमि आदिका दान करना
सो प्रव्रज्या है ताका या गाथामैं निषेध किया है—जो प्रव्रज्या तौ निर्प्र
यस्वरूप है जो धन धान्य आदि राखि दान करै ताकै काहेकरी प्रव्रज्या !

ये जो गृहस्थका कर्म है, बहुरि गृहस्थकै भी इनि वस्तुनिके दानतैं विशेष पुण्यतौ नाहीं उपजै है जातैं पाप बहुत है सो पुण्य अल्प है सो बहुत पाप कार्य तौ गृहस्थकूं करनेमें लाभ नाहीं जामें बहुत लाभ होय सो ही करनां योग्य है, दीक्षा तौ इनि वस्तुनिकरि रहित ही जाननां ४६
आगैं फेरि कहै है;—

गथा—सत्तुमित्ते य समा पसंमणिदाअलद्विलद्विसमा ।

तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥

संस्कृत—शत्रौ मित्रे च समा प्रशंसानिन्दाऽलब्धिलब्धिसमा ।

तृणे कनके समभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥४७॥

अर्थ—बहुरि जामें शत्रु मित्रविषैं समभाव है, बहुरि प्रशंसा निंदा विषैं लाभ अलाभविषैं समभाव है बहुरि तृणकंचन विषैं समभाव है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षाविषैं रागद्वेषका अभाव है जातैं वैरी मित्र निंदा प्रशंसा लाभ अलाभ तृण कंचनविषैं तुल्य भाव है, जैनके मुनिनिकैं ऐसी दीक्षा है ॥ ४७ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं;—

गथा—उत्तममज्झिमगेहे दारिद्रे ईसरे गिरावेक्खा ।

सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

संस्कृत—उत्तममध्यमगेहे दरिद्रे ईश्वरे निरपेक्षा ।

सर्वत्र गृहीतपिंडा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥४८॥

अर्थ—उत्तम गेह कहिये शोभासहित ऐसा राजमंदिरादिक अर मध्यम गेह कहिये शोभारहित सामान्य जनका घर इनि विषैं तथा दरिद्री,

धनवान इनिविषैं निरपेक्ष कहिये जाँ मैं अपेक्षा नाहीं ऐसी सर्व जायगां प्रह्ला है पिंड कहिये आहार जाँ मैं ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—मुनि दीक्षासहित होय है अर आहार लेनेकू जाय तब ऐसी न विचारै जो बडे घर जानां अथवा छोटे घर जानां तथा दरिद्रीके जाना धनवानकै जाना ऐसी वांछा रहित निर्दोष आहारकी योग्यता होय तहां सर्वत्रही जायगां योग्य आहार ले, ऐसी दीक्षा है ॥ ४८ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—गिग्गंथा गिस्संगा गिम्माणासा अराय गिहोसा ।

गिम्मम गिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४९॥

संस्कृत—निर्ग्रथा निःसंगा निर्मानाशा अरागा निर्द्वेषा ।

निर्ममा निरहंकारा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥४९॥

अर्थ—बहुिर कैसी है प्रव्रज्या-निर्ग्रथस्वरूप है परिग्रहतैं रहित है, बहुिर कैसी है—निःसंग कहिये स्त्री आदि परद्रव्य का संग मिटाप जाँ मैं नाहीं है, बहुिर निर्माना कहिये मान कषाय जाँ मैं नाहीं है मदरहित है बहुिर कैसी है निराशा है जाँ मैं आशा नाहीं है संसारभोगकी आशारहित है, बहुिर कैसी है—अराग कहिये रागका जाँ मैं अभाव है संसार देह भोगसूं जाँ मैं प्रीति नाहीं है, बहुिर कैसी है निर्दोष कहिये काहूसूं द्वेष जाँ मैं नाहीं है, बहुिर कैसी है निर्ममा कहिये जाँ मैं काहूसूं ममत्व भाव नांही है, बहुिर कैसी है निरहंकारा कहिये अहंकाररहित है जो कछुं कर्मका उदय है सो होय है ऐसैं जाननें तैं परद्रव्यभैं कर्ताङ्गणांका अहंकार नांही है अपनां स्वरूपका ही जाँ मैं साधन है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती भेष पहिरि तिसमात्र दीक्षा मानैं हैं सो दीक्षा नांहीं है, जैनदीक्षा ऐसी कही है ॥ ४९ ॥

आगै फेरि कहै है;—

गाथा—णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिकलुसा ।

णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५०॥

संस्कृत—निःस्नेहा निर्लोभा निर्मोहा निर्विकारा निष्कलुषा ।

निर्भया निराशभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५०॥

अर्थ—बहुिर प्रव्रज्या ऐसी कही है—निःस्नेहा कहिये जाँमैं काहूँसू स्नेह नाहीं परद्रव्यसूँ रागादिरूप सचिक्कगभाव जाँमैं नाहीं है, बहुरि कैसी है निर्लोभा कहिये जाँमैं कछु परद्रव्यके लेनेकी बाँछा नाहीं है, बहुरि कैसी है निर्मोहा कहिये जाँमैं काहूँ परद्रव्यसूँ मोह नाहीं है भूलिकरि भी परद्रव्यमें आत्मबुद्धि नाहीं उपजे है, बहुरि कैसी है निर्विकार है बाह्य अभ्यंतर विकारसूँ रहित है बाह्य शरीरका चेष्टा तथा वस्त्रभूषणादिकका तथा अंग उपांगका विकार जाँमैं नाहीं है अंतरंग काम क्रोधादिकका विकार जाँमैं नाहीं है, बहुरि कैसी है निःकलुषा कहिये मलिनभावरहित है आत्माकूँ कषाय मलिन करै है सो कषाय जाँमैं नाहीं है, बहुरि कैसी है निर्भया कहिये काहूँ प्रकारका भय जाँमैं नाहीं है, आपका स्वरूपकूँ अविनाशी जाँमैं ताकै काहेका भय होय, बहुरि कैसी है निराशभाव कहिये जाँमैं काहूँ प्रकार परद्रव्यकी आशाका भाव नाहीं है आशा तौ किछू वस्तुकी प्राप्ति न होय ताकी लगी रहै है अर जहां परद्रव्यकूँ अपनां जान्यां नाहीं अर अपने स्वरूपकी प्राप्ति भई तब किछू पावना न रखा तब काहेकी आशा होय । प्रव्रज्या ऐसी कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा ऐसी है, अन्यमतमें स्वरूप द्रव्यका भेदज्ञान नाहीं है तिनिकै ऐसी दीक्षा काहेतैं होय ॥ ५० ॥

आगै दीक्षाका बाह्य स्वरूप कहै है;—

गाथा—जहजायरूपसरिसा अवलंबियभुज गिराउहा संता ।

परकियणिलयणिवासा पव्वजा एरिसा भणिया ॥ ५१ ॥

संस्कृत—यथाजातरूपसदृशी अवलंबितभुजा निरायुधा शांता ।

परकृतनिलयनिवासा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५१ ॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—यथाजातरूपसदृशी कहिये जैसा जन्म्या बालकका नग्न रूप हांय तैसा नग्न रूप जामें है, बहुरि कैसी है अवलंबितभुजा कहिये लंबायमान किये हैं भुजा जामें बाहुल्य अपेक्षा कायो-त्सर्ग खड़ा रहनां जामें होय है, बहुरि कैसी है निरायुधा कहिये आयुधनिकरि रहित है, बहुरि शांता कहिये अंग उपांगके विकार रहित शांत मुद्रा जामें होय है, बहुरि कैसी है परकृतनिलयनिवासा कहिये परका किया निलय जो वस्तिका आदिक तामें है निवास जामें आपकूं कृत कारित अनुमोदना मन वचन काय करि जामें दोष न लाग्या होय ऐसी परका करां वस्तिका आदिकमै बसनां होय है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती केई बाह्य वस्त्रादिक राखैं है केई आयुध राखैं हैं केई सुखनिमित्त आसन चलाचल राखैं हैं केई उपाश्रेय आदि बसनेका निवास बनाय तामें बसैं हैं अर आपकूं दीक्षा सहित मानैं हैं तिनि कै भेषमात्र है, जैनदीक्षातौ जैसी कही तैसीही है ॥ ५१ ॥

आगैं पेरि कहै है—

गाथा—उवसमखमदमयुक्ता शरीरसंस्कारवर्जिया रूक्षा ।

मयरायदोसरहिंया पव्वजा एरिसा भणिजा ॥ ५२ ॥

संस्कृत—उपशमक्षमदमयुक्ता शरीरसंस्कारवर्जिता रूक्षा ।

मदरागदोषरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या उपशमक्षमदमयुक्ता कहिये उपशमतौ मोहकर्मका उदयका अभावरूप शांतपरिणाम अर क्षमा क्रोधका अभाव

रूप उत्तमक्षमा अर दम कहिये इन्द्रियनिक्कू विषयनिमै न प्रवर्त्तावनां
इनि भावनिकरि युक्त है बहुरि कैसी है शरीरसंस्कारवर्जिता कहिये
स्नानादिक करि शरीर का संवारनां ताकरि रहित है, बहुरि रूक्ष कहिये
तैलादिकका मर्दन शरीरके जामें नाहीं है, बहुरि कैसी है मद राग द्वेष
इनिकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमतके भेषी क्रोधादिकरूप परिणमै हैं शरीरकूं संवारि
सुंदर राखै हैं इन्द्रियनिके विषय सेवै हैं अर आपकूं दीक्षासाहित मानै हैं
सो वै तो गृहस्थतुल्य हैं अतीत कहाय उलटा मिथ्यात्व दृढ करै
हैं; जैनदीक्षा ऐसी है सो सत्यार्थ है याकूं अंगीकार करै ते सांचे
अतीत हैं ॥ ५२ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—विचरीयमूढभावा पणटकम्मट णटमिच्छता ।

सम्मत्तगुणविसुद्धा पण्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५३ ॥

संस्कृत—विपरीतमूढभावा प्रणष्टकर्माष्टा नष्टमिथ्यात्वा ।

सम्यक्त्वगुणविशुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५३ ॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या—विपरीत भया है दूरि भया है मूढ-
भाव कहिये अज्ञानभाव जाके, अन्यमती आत्माका स्वरूप सर्वथा एकां-
तकरि अनेक प्रकार न्यारे न्यारे कहि वाद करै हैं तिनिकै आत्माका
स्वरूपविषै मूढभाव है जैनी मुनिनि तै अनेकांततै साध्या हुवा यथार्थ-
ज्ञान है तातैं मूढभाव नाहीं है, बहुरि कैसी है प्रणष्ट भया है मिथ्यात्व-
जामें जैनदीक्षामें अतत्त्वार्थग्रद्धानरूप मिथ्यात्वका अभाव है याहीतैं
सम्यक्त्वनामा गुणकरि विशुद्ध है निर्मल है सम्यक्त्वसाहित दीक्षामें दोष
नाहीं रहै है; ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥ ५३ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा ।

भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया ॥५४॥

संस्कृत—जिनमार्गे प्रव्रज्या षट्संहननेषु भणिता निर्ग्रंथा ।

भावयंति भव्यपुरुषाः कर्मक्षयकारणे भणिता ॥५४॥

अर्थ—प्रव्रज्या है सो जिनमार्गविषैं छह संहननवाले जीवकै होनां कह्या है निर्ग्रंथस्वरूप है सर्वपरिग्रहतैं रहित यथाजातस्वरूप है याकूं भव्यपुरुष हैं ते भावैं हैं ऐसी प्रव्रज्या कर्मका क्षयका कारण कही है ॥

भावार्थ—वज्र ऋषभनाराच आदि छह शरीरके संहनन कहे हैं तिनिमें सर्वहीमें दीक्षा होनां कह्या है सो जे भव्यपुरुष हैं ते कर्मक्षयका कारण जानि याकूं अंगीकार करौ । ऐसा नांही है—जो दृढ संहनन वज्रऋषभ आदिक हैं तिनिहीमें होय अर स्फाटिक संहननमें न होय है, ऐसी निर्ग्रंथरूप दीक्षा स्फाटिक संहननविषैं भी होय है ॥ ५४ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—तिलतुसमत्तणिमित्तसम वाहिरगंथसंगहो णत्थि ।

पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं ॥५५॥

संस्कृत—तिलतुषमात्रनिमित्तसमः बाह्यग्रंथसंग्रहः नास्ति ।

प्रव्रज्या भवति एषा यथा भणिता सर्वदर्शिभिः ॥५५॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याविषैं तिलके तुषमात्रका संग्रहका कारण ऐसा भावरूप इच्छानामा अंतरंग परिग्रह बहुरि तिस तिलके तुष मात्र बाह्य परिग्रहका संग्रह नांही ऐसी प्रव्रज्या जैसें सर्वज्ञदेव कही है सो ही है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नाहीं है ऐसा नियम जाननां । श्वेतांबर आदि कहैं हैं जो अपवादमार्गमें वस्त्रादिकका संग्रह साधुकै कह्या है सो सर्वज्ञके

सूत्रमें तो कहा है नांही तिननै कल्पित सूत्र बनाये हैं तिनिमें कहा है सो कालदोष है ॥

आगै फेरि कहै है;—

गाथा—उपसर्गपरिसहसहा णिज्जणदेसेहि णिच्च अत्थेइ ।

सिल कट्टे भूमितले मव्वे आरुहइ मव्वत्थ ॥ ५६ ॥

संस्कृत—उपसर्गपरीषहसहा निर्जनदेशे हि नित्यं तिष्ठति ।

शिलायां काष्ठे भूमितले सर्वाणि आरोहति सर्वत्र ॥ ५६ ॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—उपसर्ग कहिये देव मनुष्य तिर्यञ्च अचे-
तनकृत उपद्रव अर परीषह कहिये दैवकर्मयोगतैं आये जे बाईस परीषह
तिनिकूं समभावनिनैं सहना जामैं ऐसी प्रव्रज्यासहित मुनि हैं ते जहां
अन्य जन नांही ऐसा निर्जन वनादिक प्रदेश तहां सदा तिष्ठैं हैं, तहां
भी शिलातल काष्ठ भूमितलविषैं तिष्ठैं इनि सर्वही प्रदेशनिकूं आरोहण-
करि बैठैं सोवैं, सर्वत्र कहनेतैं वनमें रहैं अर किंचित्काल नगरमें रहैं नौ
ऐसेही ठिकानैं रहैं ॥

भावार्थ—जैनदीक्षावाले मुनि उपसर्गपरीषहमें समभाव रहैं अर जहां
सोवैं बैठैं तहां निर्जन प्रदेशमें शिला काष्ठ भूमि ही विषैं बैठैं सोवैं,
ऐसा नांही जो अन्यमतके भेषीकी ज्यों स्वच्छन्द प्रमादी रहैं, ऐसैं
जाननां ॥ ५६ ॥

आगै अन्य विशेष कहै है;—

गाथा—पशुमहिलसंढसंगं कुशीलसंगं ण कुण्डं विकहाओ ।

सज्झायझाणजुत्ता पव्वजा एरिसा भणिया ॥ ५७ ॥

संस्कृत—पशुमहिलाषंढसंगं कुशीलसंगं न करोति विकथाः ।

स्वाध्यायध्यानयुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५७ ॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याभिषे पशु तिर्यैच महिला (स्त्री) पंड (नपुंसक) इनिका संग तथा कुंशील (व्यभिचारी) पुरुषका संगन करै है बहुरि स्त्री राजा भोजन चोर इत्यादिककी कथा ते विकथा तिनिक् न करै, तौ कहा करै ? स्वाध्याय कहिये शास्त्र जिनवचननिका पठन पाठन अर ध्यान कहिये धर्म शुद्ध ध्यान इनिकरि युक्त रहै; प्रव्रज्या ऐसी जिनदेव कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा लेकर कुसंगति करै विकथादिक करै प्रमादी रहै तौ दीक्षाका अभाव होजाय यातैं कुसंगति निषिद्ध है अन्य भेषकी ज्यो यह भेष नांही है ये मोक्षमार्ग है अन्य संसारमार्ग हैं ॥ ५७ ॥

आगैं फेरि विशेष कहैं हैं;—

गाथा—तववयगुणेहिं शुद्धा संजमसम्मत्तगुणविशुद्धा य ।

शुद्धा गुणेहिं शुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५८ ॥

संस्कृत—तपोव्रतगुणैः शुद्धा संयमसम्यक्त्वगुणविशुद्धा च ।

शुद्धा गुणैः शुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५८ ॥

अर्थ—प्रव्रज्या जिनदेव ऐसी कही है—कैसी है—तप कहिये बाह्य अभ्यंतर बारह प्रकार अर व्रत कहिये पांच महाव्रत अर गुण कहिये इनिके भेदरूप उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध है, बहुरि कैसी है—संयम कहिये इन्द्रिय मनका निरोध पट्कायका जीवनिकी रक्षा सम्यक्त्व कहिये तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन बहुरि इनिका गुण कहिये मूलगुण तिनिकरि शुद्ध अतीचार रहित निमज्ज है, बहुरि जे प्रव्रज्याके गुण कहे तिनि करि शुद्ध है, भेषमात्र ही नांही; ऐसी शुद्ध प्रव्रज्या कही है इनि गुणानि बिना प्रव्रज्या शुद्ध नांही है ॥

भावार्थ—तप व्रत सम्यक्त्व इनिकार सहित अर इनिके मूलगुण अर अतीचारनिका सोधनां जामें होय ऐसी दीक्षा शुद्ध है, अन्य बादी तथा श्वेतांबर आदि जैसें तैसें कहें हैं सो दीक्षा शुद्ध नांही ॥ २५ ॥

आगे प्रव्रज्याका कथनकूं संकोच है;—

गाथा—एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविसुद्धसम्मत्ते ।

णिगंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं ॥ ५९ ॥

संस्कृत—एवं आयतनगुणपर्याप्ता बहुविशुद्धसम्यक्त्वे ।

निर्ग्रंथे जिनमार्गे संक्षेपेण यथाख्यातम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार आयतन जो दीक्षाका ठिकानां निर्ग्रंथ मुनि ताके गुण जे ते हैं तिनकरि पज्जत्ता कहिये परिपूर्ण, बहुरि अन्य भी जे बहुत दीक्षामें चाहिये ते गुण जामें होय ऐसी प्रव्रज्या जिनमार्गमें जैसें ख्यात कहिये प्रसिद्ध है तैसें संक्षेपकरि कही, कैसा है जिनमार्ग—विशुद्ध है सम्यक्त्व जामें अतीचार रहित सम्यक्त्व जामें पाइये है बहुरि कैसा है जिनमार्ग—निर्ग्रंथरूप है जामें बाह्य अंतर परिग्रह नांही है ॥

भावार्थ—ऐसी पूर्वोक्त प्रव्रज्या निर्मल सम्यक्त्वसहित निर्ग्रंथरूप जिनमार्गविषैं कही है, अन्य नैयायिक वैशेषिक सांख्य वेदान्त मीमांसक पातंजलि बौद्ध आदिक मतमें नांही है, बहुरि कालदोषतैं जैनमततैं च्युत भये अर जैनी कहावैं ऐसे श्वेतांबर आदिक तिनमें भी नांही है ॥५९॥

ऐसें प्रव्रज्याका स्वरूपका वर्णन किया ।

आगे बोधपाहुडकूं संकोचता संता आचार्य कहै है;—

गाथा—स्वत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।

भव्वज्जणबोहणत्थं लक्कायहियंकरं उत्तं ॥ ६० ॥

(१) संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आयतन' इसकी संस्कृत 'आत्मत्व' इस प्रकार है ।

**संस्कृत—रूपस्थं शुद्धयर्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम् ।
भव्यजनबोधनार्थं षट्कायहितंकरं उक्तम् ॥ ६० ॥**

अर्थ—शुद्ध है अंतरंग भावरूप अर्थ जामैं ऐसा रूपस्थ कहिये बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्गविपै जिनदेव कहा है तैसा छह कायके जीवनिका हित करनेवाला मार्ग भव्यजीवनिके संबोधनेकै अर्थ कहा है ऐसा आचार्यनैं अपना अभिप्राय प्रकट किया है ॥

भावार्थ—इस बोधपाहुडविपै आयतन आदि प्रव्रज्यापर्यन्त ग्यारह स्थल कहे तिनिका बाह्य अंतरंग स्वरूप जैसैं जिनदेवनैं जिनमार्गमें कहा तैसैं कहा है । कैसा हूं यह रूप—छह कायके जीवनिका हित करनेवाला है एकेन्द्रिय आदि असेंनी पर्यन्त जीवनिकी रक्षाका जामैं अधिकार है बहुरि संनी पंचेन्द्रिय जीवनिकी रक्षामी करावै हैं अर मोक्षमार्गका उपदेश करि संसारका दुःख भेटि मोक्षकूं प्राप्त करै है ऐसा मार्ग भव्य-जीवनिके संबोधनेकै अर्थ कहा है, जगतके प्राणी आनादितैं लगाय मिथ्यामार्गमें प्रवर्ति संसारमें भ्रमैं हैं सो दुःख भेटनेकूं आयतन आदि ग्यारह स्थानक धर्मके ठिकानेका आश्रय लेहैं ते ठिकाने अन्यथा स्वरूप स्थापि तिनितैं सुख लिया चाहैं है सो यथार्थविना सुख कहा तातैं आचार्य दयालु होय जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसैं आयतन आदिकका स्वरूप संक्षेप करि यथार्थ कहा है ताकूं वांचो पढ़ो धारण करो याकी श्रद्धा करो इनि स्वरूप प्रवर्तों यातैं वर्तमानमें सुखी रहो अर आगाबी संसार दुःखतैं छूटि परमानन्दस्वरूप मोक्षकूं प्राप्त होहू ऐसा आचार्यका कहनेका अभिप्राय है ।

इहां कोई पूछै जो—इस बोधपाहुडमें धर्मव्यवहारकी प्रवृत्तिके ग्यारह स्थानक कहे तिनिका विशेषण किया जो छह कायके जीवनिके हितके

करनेवाले ये हैं सो अन्यमती इनिकूं अन्यथा स्थापि प्रवृत्ति करै हैं ते हिंसारूप हैं अर जीवनिके हित करनेवाले नाहीं तहां ये ग्यारह ही स्थानक संयमी मुनि अर अरहंत सिद्धहीकूं कहे तहां ये तौ छह कायके जीवनिके हित करनेवालेही हैं ताँ पूज्य हैं यह तौ सत्य है, अर जहां वसै ऐसे आकाशके प्रदेशरूप क्षेत्र तथा पर्वतकी गुफा वनादिक तथा अकृत्रिम चैत्यालय ये स्वयमेव वणि रहे हैं तिनिंकूं भीः प्रयोजन अर निमित्त विचार उपचारमात्र करि छह कायके जीवनिके हित करनेवाले कहिये तौ विरोध नाहीं जातै ये प्रदेश जड है ते बुद्धिपूर्वक काहूका बुरा भला करै नाहीं तथा जडकूं सख दुःख आदि फलका अनुभव नाहीं ताँ ये भी व्यवहार करि पूज्य है जाँ अरहंतादिक जहां तिष्ठै वै क्षेत्र निवास आदिक प्रशस्त हैं ताँ तिनि अरहंतादेकै आश्रयते ये क्षेत्रादिकभी पूज्य हैं बहुरि गृहस्थ जिनमंदिर बनावै वंस्तिका प्रतिमा बनावै प्रतिष्ठा पूजा करै ताँ तौ छह कायके जीवनिकी विराधना होय है सो ये उपदेश अर प्रवृत्तिकी बाहुल्यता कैसे हैं ।

ताका समाधान ऐसा जो—गृहस्थ अरहंत सिद्ध मुनिनिका उपसक है सो ये जहां साक्षात् होय तहां तौ तिनिकी वंदनां पूजनां करैही है, अर ये साक्षात् नाहीं तहां परोक्ष संकल्पमें लेय वंदनां पूजनां करै तथा तिनिका वसनेका क्षेत्र तथा ये मुक्तिप्राप्त भये तिस क्षेत्रमें तथा अकृत्रिम चैत्यालयमें तिनिका संकल्प करि वंदै पूजै यामें अनुराग विशेष सूचै है, बहुरि तिनिकी मुद्रा प्रतिमा तदाकार बनावै अर तिसकूं मंदिर बनाय प्रतिष्ठा करि स्थापै तथा नित्य पूजन करै यामें अत्यंत अनुराग सूचै है तिस अनुरागतै विशिष्ट पुण्यबंध होय है अर तिस मंदिरमें छह कायके जीवनिका हितकी रक्षाका उपदेश होय है तथा निरंतर सुननेवाला धारनेवालाकै अहिंसा धर्मकी श्रद्धा दृढ होय है तथा तिनिकी तदाकार

प्रतिमा देखनेवालाकै शांत भाव होयहै ध्यानकी मुद्राका स्वरूप जान्या जाय है वीतराग धर्मतैं अनुराग विशेष होनैं तैं पुण्यबंध होय है तातैं इनिक्कू भी छह कायके जीवनिके हितके करनेवाले उपचार करि कहिये, अर जिनमंदिर बस्तिका प्रतिमा बनावै ताभैं तथा पूजा प्रतिष्ठा करनेमैं आरंभ होयहै ताभैं किछू हिंसा भी होयहै सो ऐसा आरंभ तौ गृहस्थका कार्य है यामैं गृहस्थकू अल्प पाप कहाहै पुण्य बहुत कहाहै जातैं गृहस्थकी पदवीमैं न्यायकार्य करि न्यायपूर्वक धन उपार्जन करनां रहनेकू जायगा बनावनां विवाहादिक करनां यत्नपूर्वक आरंभ करि आहारादिक आप करि अर खानां इत्यादिक कार्यानिमैं यद्यपि हिंसा होयहै तौऊ गृहस्थकू इनिका महापाप न कहिये, गृहस्थकै तौ महापाप मिथ्यात्वका सेवनां अन्याय चोरी आदिकरि धन उपार्जनां त्रस जीवनिक्कू मरि मांस आदि अभक्ष्य खानां परस्त्री सेवा करनां ये महापाप हैं, अर गृहस्थाचार छोड़ि मुनि होय तब गृहस्थके न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं, अर मुनिकै भी आहार आदिकी प्रवृत्तिमैं किछू हिंसा होय है ताकारि मुनिक्कू हिंसक न कहिये तैसैं ही गृहस्थकै न्यायपूर्वक पदवीयोग्य आरंभके कार्यानिमैं अल्प पापही कहिये, तातैं जिनमंदिर बस्तिका पूजा प्रतिष्ठाके कार्यानिमैं आरंभका अल्प पापहै, अर मोक्षमार्गमैं प्रवर्तनेवालेनितैं अति अनुराग होयहै अर तिनिकी प्रभावना करै हैं तिनिकू आहारदानादिक दे हैं तिनिका बैयावृत्त्यादि करै है सो ये सम्यक्त्वका अंग हैं अर महान पुण्यका कारण है तातैं गृहस्थकू सदा करनां उचितहै, अर गृहस्थ होय ये कार्य न करै तौ जानिये याकै धर्मातुराग विशेष नाहीं ।

इहां फेरि कोई कहै जो गृहस्थकू सरे नांही ते तौ करैही करै अर धर्मपद्धतिमैं आरंभका कार्यकरि पाप क्यों मिलवै सामाजिक प्रतिक्रमण प्रोषध आदिकरि पुण्य उपजावै । ताकू कहिये—जो तुम ऐसैं कहौ

जहां तुम्हारे परिणामकी तौ ऐसी जाति नांही, केवल बाह्य क्रिया मात्रमें स्त्री पुण्य समझौ हौ बाह्य वहु आरंभी परिग्रहीका मन सामायिक प्रतिक्रमण आदि निरारंभ कार्यनिमें विशेष लागै नांही है यह अनुभव गोचर है, सो तेरै अपने भावनिका अनुभव नांही केवल बाह्य सामायिकादि निरारंभ कार्यका भेषधरि बैठैतौ किछू विशिष्ट पुण्य है नांही शरीरादिक बाह्य वस्तु तौ जड है केवल जडको लिया फल तौ आत्माकूं लागै नांही अर अपने भाव जेता अंसा बाह्य क्रियामें लागै तेता अंसा शुभाशुभ फल आपकूं लागै है, ऐसैं विशिष्ट पुण्य तौ भावनिकै अनुसार है, बहुरि आरंभी परिग्रहीका भाव तौ पूजा प्रतिष्ठादिक बड़े आरंभनैही विशेष अनुराग सहित लागै है, अर जो गृहस्थाचारके बड़े आरंभतैं विरक्त होगा सो त्याग करि अपनी पदवी बनावैगा तब गृहस्थाचारके बड़े आरंभ छोड़ैगा तब ताही रीति बड़े आरंभ धर्म प्रवृत्तिकेभी पदवीकी रीति घटावैगा मुनि होगा तब सर्वही आरंभ काहेकूं बरैगा, तातैं मिथ्यादृष्टि बाह्यबुद्धि जे बाह्य कार्यमात्रही पुण्य पाप मोक्षमार्ग समझै है तिनिका उपदेश मुनि आपकूं अज्ञानी न होनां, पुण्य पापका बंधमें शुभाशुभ भावही प्रधान हैं अर पुण्य पाप रहित मोक्षमार्ग हं ताभैं सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्म परिणाम प्रधान हैं अर धर्मानुराग है सो मोक्षमार्गका सहकारी है अर धर्मानुरागके तीव्र मंदके भेद बहुत हैं तातैं अपने भावनिकूं यथार्थ पहचानि अपनी पदवी सामर्थ्य पहचानि समझिकरि श्रद्धानज्ञान प्रवृत्ति करनीं अपनां भला बुरा अपने भावानेकैं आशीन है बाह्य परद्रव्य तौ निमित्त मात्र है, उपादान कारण होय तौ निमित्तभी सहकारी होय अर उपादान न होय तौ निमित्त कछुभी न करै है, ऐसैं इस बोधपाहुडका आशय जाननां । याकूं नीकैं समझि आयतनादिक जैसैं कहे तैसैं अर इनिका व्यवहारभी बाह्य तैसाही अर चैत्यगृह प्रतिमा जिनबिंब जिन-

मुद्रा आदि धातु पाषाणादिककाभी व्यवहार तैसाही जानि श्रद्धान करनां अर प्रवृत्ति करनीं । अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाडि प्रवृत्ति करै हैं तिनिंकुं बुद्धिकल्पित जानि उपासना न करनीं । इस द्रव्य व्यवहारका प्ररूपण प्रव्रज्याके स्थलमै आदितैं दूसरी गाथामै विव्रैकैत्यालयत्रिक अर जिनभवन ये भां मुनिनिके ध्यावनें योग्य हैं ऐसैं कहा है सो जे गृहस्थ इन्की प्रवृत्ति करै हैं तव ते मुनिनिके ध्यावनें योग्य होय हैं तातैं जिनमन्दिर प्रतिमा पूजा प्रतिष्ठा आदिकके सर्वथा निषेध करनेवाले सर्वथा एकान्तीकी ज्यौं मिथ्यादृष्टि हैं, तिन्की संगति न करनीं ॥

आगै आचार्य इस बोधपाहुडका कहनां अपनी बुद्धिकल्पित नाहीं है पूर्वाचार्यनिके अनुसार कहा है ऐसैं कहै हैं ।

गाथा—सहवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं ।

सो तह कहियं णायं सीसेग य भद्वाहुस्त ॥६१॥

संस्कृत—शब्दविकारो भूतः भाषामूत्रेषु यज्जिनेन कथितम् ।

तत् तथा कथितं ज्ञातं शिष्येण च भद्रबाहोः॥६१॥

अर्थ—शब्दका विकारतैं उपज्या ऐसा अक्षररूप परिणया भाषासूत्रनिविधैं जिनदेवनैं कहा सोही श्रवणमैं अक्षररूप आया बहुरि जैसा जिनदेव कहा तैसा परंपराकरि भद्रबाहुनाम पंचम श्रतकेवलीनैं जान्यां अपने शिष्य विशाखाचार्य आदिकुं कहा सो तिनिनैं जान्यां सोही अर्थ-रूप विशाखाचार्यकी परंपरायतैं चल्या आया सोही अर्थ आचार्य कहै है हमनैं कहा है सो हमारी बुद्धिकरि कल्पित न कहा है; ऐसा अभिप्राय है ॥ ६१ ॥

आगै भद्रबाहु स्वामीकी स्तुतिरूप वचन कहै है—

१ गाथारमैं बिबकी जगह 'वच' ऐसा पाठ है ॥

गाथा—बारस अंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलविस्तरणं ।

सुयणाणि भद्रबाहु गमयगुरु भयवओ जयओ ॥६२॥

संस्कृत—द्वादशांगविज्ञानः चतुर्दशपूर्वांगविपुलविस्तरणः ।

श्रुतज्ञानिभद्रबाहुः गमकगुरुः भगवान् जयतु ॥६२॥

अर्थ—भद्रबाहु नाम आचार्य है सो जयवंत होहु कैसे हैं बारह अंगनिका है विज्ञान जिनिकूं, बहुरि कैसे है चौदह पूर्वनिका है विपुल विस्तार जिनिकै याहीतैं कैसे है श्रुतज्ञानी है पूर्ण भावज्ञानसहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान जिनिकै पाइये है, बहुरि कैसे है 'गमक गुरु' हैं जे सूत्रके अर्थकूं पाय जैसाका तैसा वाक्यार्थ करै तिनिकूं गमक कहिये तिनिके गुरु हैं तिनिमैं प्रधान हैं, बहुरि कैसे हैं भगवान हैं सुरासुरनिकार पूज्य है, ऐसे हैं सो जयवंत होऊ । ऐसैं कहनेमैं स्तुतिरूप तिनिकूं नमस्कार सूचै है 'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थमैं है सो सर्वोत्कृष्ट कहनेतैं नमस्कारही आवै ॥

भावार्थ—भद्रबाहुस्वामी पांचवा श्रुतकेवली भये तिनिकी परंपरायतैं शास्त्रका अर्थ जानि यह बोधपादुड ग्रंथ रच्य है तातैं तिनिकूं अंतमंगल अर्थ आचार्य स्तुतिरूप नमस्कार किया है । ऐसैं बोधपादुड समाप्त किया है ॥ ६२ ॥

छप्पय ।

प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा

दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा ।

ज्ञान सातभूं देव आठभूं नवभूं तीरथ

दसभूं है अरहंत ग्यारभूं दीक्षा श्रीपथ ॥

इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेष सब निंद्य हैं । ,
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी बंद्य है ॥१॥

दोहा ।

भयो बीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि ।
वरतायो पंचमगुरु, नमूं तिनहिं मद छारि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुडकी
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रछावड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥
अथ भावपाहुड ।
(५)

—:०:—
आगे भावपाहुडकी वचनिका लिखिये है;—

दोहा ।

परमात्मकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार ।

करूं भावपाहुडतर्णीं देशवचनिका सार ॥१॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृतभावपाहुड गाथा-
बंध ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है । तहां प्रथम आचार्य इष्टके
नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञाका सूत्र कहै है;—

गाथा—णमिरुण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे ।

वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा ॥ १ ॥

संस्कृत—नमस्कृत्य जिनवरेन्द्रान् नरसुरभवनेन्द्रवंदितान्

सिद्धान् ।

वक्ष्यामि भावप्राभृतमवशेषान् संयतान् शिरसा ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो मैं भावपाहुड नाम ग्रंथ है ताहि कहुंगा
पूर्वैं कहाकरि—जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकर परमदेव बहुरि सिद्ध कहिये
अष्टकर्मका नाशकरि सिद्धपदकूं प्राप्त भये बहुरि अवशेष संयत कहिये
आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु ऐसैं पंच परमेष्ठी तिनहिं मस्तककरि वंदना
करिकै कहुंगा; कैसें हैं पंच परमेष्ठी—नर कहिये मनुष्य सुर कहिये
स्वर्गवासी देव भवन कहिये पातालवासी देव इनिके इन्द्र तिनिकरि
वंदनें योग्य हैं ॥

भावार्थ—आचार्य भावपाहुड ग्रंथ रचै हैं सो भाव प्रधान पंचपरमेष्ठी हैं तिनिक् आदिमै नमस्कार युक्त है जातैं जिनवरेंद्र तौ ऐसैं हैं—जिन कहिये गुणश्रेणी निर्जराकरि युक्त ऐसे अधिरतसम्यग्दृष्टी आदिक तिनिमै वर कहिये श्रेष्ठ गुणधरादिक तिनिमै इन्द्र तीर्थकर परमदेव है सो गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभावहीतैं होय है सो तीर्थकरभावके फलकूं पहुँचे घातिकर्मका नाशकरि केवलज्ञान पाया, बहुरि तैसँही सर्वकर्मका नाशकरि परम शुद्ध भावकूं पाय सिद्ध भये, बहुरि आचार्य उपाध्याय शुद्ध भावके एकदेशकूं पाय पूर्णताकूं आप साधैं हैं अन्यकूं शुद्ध भावकी दीक्षा शिक्षा दे हैं, बहुरि साधु हैं ते भी तैसँही शुद्ध भावकूं आप साधैं हैं बहुरि शुद्ध भावहीके माहात्म्यकरि तीन लोकके प्राणीनिकरि पूजनेयोग्य वंदनेयोग्य कहै हैं; तातैं भावप्राभृतकी आदित्रियै इनिकूं नमस्कार युक्त है बहुरि मस्तककरि नमस्कार करने में सर्व अंग आय गये जातैं मस्तक अंगनिमै उत्तम है, बहुरि आप नमस्कार किया तब अपनां भावपूर्वक भयाही तब ‘मन वचन काय’ तीनूही आय गये ऐसैं जाननां ॥ १ ॥

आगैं कहै है जो लिंग द्रव्यभाव करि दोय प्रकार है तिनिमै भाव-लिंग परमार्थ है;—

गाथा—भावो हि पदमलिंगं न द्रव्यलिंगं च जाण परमत्वं ।

भावो कारणभूतो गुणदोषाणां जिना विंति ॥२॥

संस्कृत—भावः हि प्रथमलिंगं न द्रव्यलिंगं च जानीहि परमार्थम् ।

भावो कारणभूतः गुणदोषाणां जिना विदन्ति ॥२॥

अर्थ—भाव है सो प्रथमलिंग है याहीतैं हे भव्य ! तू द्रव्यलिंग है ताहि परमार्थरूप मति जाणैं जातैं गुण अर दोष इनिका कारणभूत भावही है ऐसैं जिन भगवान कहैं हैं ॥

भावार्थ—जातैं गुण जे स्वर्ग मोक्षका होनां अर दोष जे नरकादिक संसारका होनां इनिका कारण भगवान भावहीकूं कहा है यातैं कारण होय सो कार्यकैं पहलैं प्रवर्तैं सो इहां मुनि श्रावककैं द्रव्य लिंगकैं पहलै भावलिंग होय तां सांचा मुनि श्रावक होय है तातैं भावलिंगही प्रधान है प्रधान होय सोही परमार्थ है, तातैं द्रव्यलिंगकूं परमार्थ न जाननां ऐसैं उपदेश किया है ।

इहां कोई प्रछै—भावस्वरूप कहा है ? ताका समाधान—जो भावका स्वरूप तौ आचार्य आगैं कहसी तथापि इहांमी किछु कहिये है—या लोकमें पट् द्रव्य हैं तिनिमें जीव पुद्गलका वर्त्तन प्रकट देखनेमें आवै है—तहां जीव तौ चेतनास्वरूप है अर पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण स्वरूप जड है इनिका अवस्थातैं अवस्थारतरूप होनां ऐसा परिणामकूं भाव कहिये है तहां जीवका स्वभाव परिणामरूप भाव तौ दर्शन ज्ञान है अर पुद्गल कर्मके निमित्ततैं ज्ञानमें मोह राग द्वेष होनां सो विभाव भाव है बहुरि पुद्गलके स्पर्शतैं स्पर्शान्तर रसतैं रसान्तर इत्यादि गुणतैं गुणान्तर होनां सो तौ स्वभावभाव हैं अर परमाणुतैं स्कंध होनां तथा स्कंधतैं अन्यस्कंध होनां तथा जीवके भावके निमित्ततैं कर्मरूप होनां ये विभाव भाव है, ऐसैं इनिकै परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव प्रवर्तैं है । तहां पुद्गल तौ जड है ताके नैमित्तिकभावतैं किछु सुख दुःख आदि नांही अर जीव चेतन है याके निमित्ततैं भाव होय तिनिमें सुखदुःख आदि प्रवर्तैं है तातैं जीवकूं स्वभाव भावरूप रहनेका अर नैमित्तिक-भावरूप न प्रवर्तनेका उपदेश है । अर जीवकैं पुद्गल कर्मके संयोगतैं देहादिक द्रव्यका संबंध है सो इस बाह्यरूपकूं द्रव्य कहिये सो भावतैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय है ऐसैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय है । ऐसैं द्रव्य भावका स्वरूप जाणि स्वभावमें प्रवर्तैं विभावमें न प्रवर्तैं ताकै परमानंद सुख होय

है, विभाव रागद्वेष मोहरूप प्रवर्तै ताकै संसारसंबंधी-दुःख होय हैं, अरु द्रव्यरूप है सो पुद्गलका विभाव है या संबंधी जीवकै दुःख सुख होय है तातैं भावही प्रधान है, ऐसैं न होतैं केवली भगवानकै भी सांसारिक सुख दुःखकी प्राप्ति आवै, सो है नाहीं । ऐसैं जीवकै ज्ञानदर्शन अरु रागद्वेष मोह ये तौ स्वभाव विभाव हैं अरु पुद्गलकैं स्पर्शादिक अरु स्कंधादिक स्वभाव विभाव हैं तिनिमें जीवका हित अहित भाव प्रधान है पुद्गलद्रव्यसंबंधी प्रधान नाहीं, बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है, उपादान बिना निमित्त किछु करै नाहीं; ये तौ सामान्यपणें स्वभावका स्वरूप है बहुरि याहीका विशेष सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तौ जीवका स्वभाव भाव हैं तिनिमें सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है याविनां सर्व बाह्य क्रिया मिथ्या-दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो विभाव हैं सो संसारका कारण है, ऐसैं जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो बाह्य द्रव्य निमित्त मात्र है सो याका अभाव जीवकै भावकी विशुद्धिताका निमित्त जाणि बाह्यद्रव्यका त्याग कीजिये है;—

गाथा—भावविशुद्धिनिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरण चाओ ।

बाहिरचाओ बिहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स ॥ ३ ॥

संस्कृत—भावविशुद्धिनिमित्तं बाह्यग्रंथस्य क्रियते त्यागः ।

बाह्यत्यागः विफलः अभ्यन्तरग्रंथयुक्तस्य ॥ ३/॥

अर्थ—बाह्य परिग्रहका त्याग कीजिये है सो भावकी विशुद्धि ताकै अर्थ कीजिए है बहुरि अभ्यन्तर परिग्रह जो रागादिक तिनिकरि युक्त है ताकै बाह्य परिग्रहका त्याग निष्फल है ॥

भावार्थ—अंतरंगभावविना बाह्य त्यागादिककी प्रवृत्ति निष्फल है यह प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

आगै कहै है—जो कोट्यां भव विषै तप करै तौऊ भाव विना सिद्धि नांही;—

गाथा—भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो ॥४॥

संस्कृत—भावरहितः न सिद्ध्यति यद्यपि तपश्चरति कोटिकोटी ।
जन्मान्तराणि बहुशः लंबितहस्तः गलितवस्त्रः ॥४॥

अर्थ—जो बहुत जन्मांतरताई कोडाकोडि संख्या काल ताई हस्त लंबायमानकरि वस्त्रादिक त्यागकरि तपश्चरण करै तौऊ भावरहितकै सिद्धि नांही होय है ॥

भावार्थ—भावमैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र रूप विभाव रहित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप स्वभावकै विषै प्रवृत्ति न होय तौ कोडा कोडि भव ताई कायोत्सर्गकरि नग्न मुद्रा धारि तपश्चरण करै तौऊ मुक्तिकी प्राप्ति न होय, ऐसैं भावमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भाव प्रधान है तिनिमैंभी सम्यग्दर्शन प्रधान है जातैं या विनां ज्ञान चारित्र मिथ्या कहे हैं, ऐसैं जाननां ॥ ४ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृढ़ करै है;—

गाथा—परिणामम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहरे य जई ।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ ॥ ५ ॥

संस्कृत—परिणामे अशुद्धे ग्रंथान् मुंचति बाह्यान् च यदि ।
बाह्यग्रंथत्यागः भावविहीनस्य किं करोति ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मुनि होय परिणाम अशुद्ध होतैं बाह्य ग्रंथकूं छोड़ै तौ बाह्य परिग्रहका त्याग है सो भावरहित मुनिकै कहा करै ? कछूमै न करै ॥

भावार्थ—जो बाह्य परिग्रहकूं छोड़ि मुनि होय अर परिग्रहपरिणामरूप अशुद्ध होय अम्यंतर परिग्रह न छोड़ै तौ बाह्य त्याग किछु कल्याणरूप फल न करिसकै है, सम्यग्दर्शनादिभाव विना कर्मनिर्जरा-रूप कार्य न होय है ॥ ५ ॥

पहली गाथातैं यामैं यह विशेष हैं जो मुनिपदभी ले अर परिणाम उज्ज्वल न रहै आत्मज्ञानकी भावना न गहै तौ कर्म कटै नाहीं ॥

आगैं उपदेश करै है जो भावकूं परमार्थ जाणि याहीकूं अंगीकार करौ—

गाथा—जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिण ।

पंथिय ! सिवपुरिपंथं जिणउवइदं पयत्तेण ॥ ६ ॥

संस्कृत—जानीहि भावं प्रथमं किं ते लिंगेन भावरहितेन ।

पथिक शिवपुरीपंथाः जिनोपदिष्टः प्रयत्नेन ॥ ६ ॥

अर्थ—हे मुने ! मोक्षपुरीका मार्ग जिनदेव प्रयत्नकरि उपदेश्या भावही है तातैं हे शिवपुरीका पथिक ! कहिये मार्ग चलनेवाला तू भावहीकूं प्रथम जाणि परमार्थभूत जाणि, भावरहित द्रव्यमात्र लिंगकरि तेरै कहा साध्य है किछु भी नाहीं ॥

भावार्थ—मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आत्मभाव-स्वरूप परमार्थकरि कहा है तातैं याहीकूं परमार्थ जानि-अंगीकार करनां केवल द्रव्यमात्र लिंगकरि कहा साध्य है ऐसैं उपदेश है

आगैं कहै है जो द्रव्यलिंग आदि तैं बहुत धारे तिनितैं किछु सिद्धि न भई;—

गाथा—भावरहिण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे ।

गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिगंथरूवाइं ॥ ७ ॥

संस्कृत—भावरहितेन सत्पुरुष ! अनादिकालं अनंतसंसारे ।

गृहीतोऽज्झितानि बहुशः बाह्यनिर्ग्रथरूपाणि ॥ ७ ॥

अर्थ—हे सत्पुरुष ! अनादिका ठतैं लगाय इस अनंत संसारविषैं तैं भावरहित निर्गंथरूप बहुत बार ग्रहण किया अर छोडया ॥

भावार्थ—भाव जो निश्चय सन्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र तिस विना बाह्य निर्ग्रथरूप द्रव्यलिंग संसारविषैं अनंतकालतैं लगाय बहुतबार धारे अर छोडे तथापि किछू सिद्धि न भई चतुर्गतिविषैं भ्रमता ही रह्या ॥ ७ ॥

सो ही कहै है;—

गाथा—भीषणनरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए ।

पत्तोसि तिव्वदुखं भावहि जिणभावणा जीव ! ॥

संस्कृत—भीषणनरकगतौ तिर्यग्गतौ कुदेवमनुष्यगतयोः ।

प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं भावय जिनभावनां जीव ! ॥ ८ ॥

अर्थ—हे जीव ! तैं भीषण भयकारी नरकगति तथा तिर्यग्गति बहुदि कुदेव कुमनुष्यगतिविषैं तीव्र दुःख पाये तातैं अब तू जिनभावनां कहिये शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना भाय यातैं तेरैं संसारका भ्रमण मिटै ॥

भावार्थ—आत्माकी भावना विना च्यार गतिके दुःख अनादि काल तैं संसारविषैं पाये यातैं अब हे जीव ! तू जिनेश्वरदेवका शरण ले अर शुद्धस्वरूपका बारबार भावनारूप अभ्यास करि यातैं संसारका भ्रमणतैं रहित मोक्षकू प्राप्त होय, यह उपदेश है ॥ ८ ॥

आगैं च्यारि गतिके दुःखानिकू विशेषकरि कहै है, तहां प्रथम ही नरकगतिके दुःखानिकू कहै है;—

गाथा—सत्तसुणरयावासे दारुणभीसाइं असहणीयाइं ।

श्रुत्ताइं सुहरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं सहिय ॥ ९ ॥

संस्कृत—सप्तसु नरकावासेषु दारुणभीषणानि असहनीयानि ।
भुक्तानि सुचिरकालं दुःखानि निरंतरं सोढानि ॥९॥

अर्थ—हे जीव ! तैं सात नरकभूमिनिविषैं नरक आवास जे बिले तिनिविषैं दारुण कहिये तीव्र अर भयानक अर असहनीय कहिये सहे न जाय ऐसे घणें कालपर्यन्त दुःखनिक्कू निरंतरही भोग्या अर सहा ॥

भावार्थ—नरककी पृथ्वी सात हैं तिनिमें बिल बहुत हैं तिनिविषैं एक सागरतैं लगाय तेतीस सागरपर्यन्त तहां आयुहै जहां आयुपर्यन्त अतितीव्र दुःख यहू जीव अनंतकालतैं सहता आयाहै ॥ ९ ॥

आमैं तिर्यग्गतिके दुःखनिक्कू कहै है;—

गाथा—खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च ।

पत्तोसि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं ॥१०॥

संस्कृत—खननोत्तापनज्वालनवेदनंविच्छेदनानिरोधं च ।

प्राप्तोऽसि भावरहितः तिर्यग्गतौ चिरं कालं ॥१०॥

अर्थ—हे जीव ! तैं तिर्यग्गतिविषैं खनन उत्तापन ज्वलन वेदन व्युच्छेदन निरोधन इत्यादि दुःख बहुतकालपर्यंत पाये, कैसा भया संता—भावरहितकरि सम्यग्दर्शन आदि भावरहित भया संता ॥

भावार्थ—या जीवनैं सम्यग्दर्शनादि भाव विनां तिर्यग्गतिविषैं चिर-काल दुःख पाये—पृथ्वीकायमें तौ कुदाल आदि खोदनेकरि दुःख पाये, अपकायविषैं अग्निंतैं तपनां ढोलनां इत्यादिकरि दुःख पाये, तेजकाय-विषैं ज्वालनां बुझावनां आदिकरि दुःख पाये, पवनकायविषैं भारेतैं हलका चलनां फटनां आदिकरि दुःख पाये, वनस्पतिकायविषैं फाडनां

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सप्तसु नरकावासे' ऐसा पाठ है ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'स्वहित' ऐसा पाठ है, 'सहिय' इसकी छायामें ।

३—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'वेयण' इसकी संस्कृत 'व्ययन' इस प्रकार है ।

छेदनां रांधनां आदिकारि दुःख पाये, विकलत्रयविषै अन्यतै रुकनां अल्प आयुतै मरनां इत्यादिकारि दुःख पाये, पंचेंद्रिय पशु पक्षी जलचर आदि-विषै परस्पर घात तथा मनुष्यादिकारि वेदना भूख तृषा रोकनां बंधन देनां इत्यादिकारि दुःख पाये, ऐसै तिर्यचगतिविषै असंख्यात अनंतकाल-पर्यन्त दुःख पाये ॥ १० ॥

आगै मनुष्यगतिके दुःखनिक्कू कहै है;—

गाथा—आगंतुक माणसियं सहजं शारीरियं च चत्तारि ।

दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तोसि अणंतयं कालं ॥ ११ ॥

संस्कृत—आगंतुकं मानसिकं सहजं शारीरिकं च चत्वारि ।

दुःखानि मनुजजन्मनि प्राप्तोऽसि अनंतकं कालं ११

अर्थ—हे जीव ! तैं मनुष्यगतिविषै अनंतकालपर्यन्त आगंतुक कहिये अकस्मात् वज्रपातादिक आयपडै ऐसा बहुरि मानसिक कहिये मनही विषै भया ऐसा विषयनिकी वांछा होय अर मिलै नांही ऐसा बहुरि सहज कहिये माता पितादिकारि सहजर्हा उपज्या तथा राग द्वेषादिकतै वस्तुक्कू इष्ट अनिष्ट दुःख होना बहुरि शारीरिक कहिये व्याधि रोगादिक तथा परकृत छेदना भेदन आदिकतै भये दुःख ये प्यार प्रकार अर चकारतै इनिक्कू आदिले अनेक प्रकार दुःख पाये ॥ ११ ॥

आगै देवगतिविषै दुःखनिक्कू कहै है;—

गाथा—सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिब्बं ।

संयत्तोसि महाजस दुःखं सुहभावणारहिओ ॥१२॥

संस्कृत—सुरनिलयेषु सुराप्सरावियोगकाले च मानसं तीव्रम् ।

संप्राप्तोऽसि महायशः ! दुःखं शुभभावनारहितः ॥१२

अर्थ—हे महाजस ! तैं सुरनिलयेषु कहिये देवलोकविषै सुराप्सरा कहिये प्यारा देव तथा प्यारी अप्सराका वियोग कालविषै तिसके वियोग

संबंधी दुःख तथा इंद्रादिक बड़े ऋद्धिधारीनिकुं देखि आपकुं हीन मानना :
ऐसा मानसिक दुःख ऐसैं तीव्र दुःख शुभ भावनांकरि रहित भये
संते पाया ॥

भावार्थ—इहां महाजस ऐसा संबोधन किया ताका आशय यह है
जो मुनि निर्ग्रन्थ लिंग धारै अर द्रव्यलिंग मुनिकी समस्त क्रिया करै
परन्तु आत्माका स्वरूप शुद्धोपयोगक सन्मुख न होय ताकुं प्रधानपणै
उपदेश है—जो मुनि भया सो तौ बड़ा कार्य किया तेरा जस लोकमें
प्रसिद्ध भया परन्तु भलीभावना जो शुद्धात्मतत्त्वका अभ्यास ताविना
तपश्चरणादिकरि स्वर्गविषै देवभी भया तौ वहां भी विषयनिका लोभी
भया संता मानसिक दुःखहीतैं तप्तायमान भया ॥ १२ ॥

आगैं शुभभावनातैं रहित अशुभ भावनाका निरूपण करै है;—

गाथा—कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणार्इ य ।

भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ ॥ १३ ॥

संस्कृत—कांदर्पीत्यादीः पंचापि अशुभादिभावनाः च ।

भावयित्वा द्रव्यलिंगी प्रहीणदेवः दिवि जातः॥१३॥

अर्थ—हे जीव ! तू द्रव्यलिंगी मुनि होय करि कान्दर्पीकुं आदि
लेकरि पांच अशुभ शब्द हैं आदि जिनकैं ऐसी अशुभ भावना भायकरि
प्रहीणदेव कहिये नीचदेव स्वर्गविषै उपज्या ॥

भावार्थ—कान्दर्पी, किल्बिषिकी, संभोही, दानवी, आभियोगिकी,
ये पांच अशुभ भावना हैं तहां निर्ग्रन्थ मुनि होय करि सम्यक्त्व भावना
बिना इनि अशुभ भावनांकुं भावै तब किल्बिष आदि नीच देव होय
मानसिक दुःखकुं प्राप्त होय है ॥ १३ ॥

आगैं द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होय हैं तिनिकुं कहै है;—

गाथा—पासत्थभावणाओ अणइकालं अणेयवारो ।

भाऊण दुहं पत्तो कुभावणा भाववीएहिं ॥ १४ ॥

संस्कृत—पार्श्वस्थभावनाः अनादिकालं अनेकवारान् ।

भावयित्वा दुःखं प्राप्तः कुभावनाभावबीजैः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू पार्श्वस्थ भावनातैं अनादिकालतैं लेकरि अनंत-
तवार भाय करि दुःखकूं प्राप्त भया, काहे करि दुःख पाया—कुभावना
कहिये खोटा भावना ताका भाव ते ही भये दुःखके बीज तिनिकरि
दुःख पाया ॥

भावार्थ—जो मुनि कहावै अर वस्तिका बांधि आजीविका करै सो
पार्श्वस्थ भेषधारी कहिये, बहुरि जो कपायी होय व्रतादिकतैं भ्रष्ट रहै
संघका अधिनय करै ऐसा भेषधारीकूं कुशील कहिये, बहुरि जो वैद्यक
ज्योतिष विद्यामंत्रकी आजीविका करै राजादिकका सेवक होय ऐसा भेष-
धारीकूं संसक्त कहिये, बहुरि जो जिनसूत्रतैं प्रतिकूल चारित्रतैं भ्रष्ट
आलसी ऐसा भेषधारीकूं अवसन कहिये, बहुरि गुरुका आश्रय छोड़ि
एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्तै जिन आज्ञा लोपै ऐसा भेषधारीकूं मृगचारी
कहिये, इनिकी भावना भावै सो दुःखहीकूं प्राप्त होय है ॥ १४ ॥

ऐसैं देव होय करि मानसिक दुःख पाये ऐमें कहै है;—

गाथा—देवाण गुण विहई इड्डी माहप्प बहुविहं दट्ठं ।

होऊण हीनदेवो पत्तो बहुमाणसं दुक्खं ॥ १५ ॥

संस्कृत—देवानां गुणान् विभूतीः ऋद्धीः माहात्म्यं बहुविधं दृष्ट्वा

भूत्वा हीनदेवः प्राप्तः बहु मानसं दुःखम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू हीनदेव होय करि अन्य महद्भिक देवनीकी गुण
विभूति ऋद्धिका माहात्म्य बहुत प्रकार देखिकरि बहुत मानसिक दुःखकूं
प्राप्त भया ॥

भावार्थ—स्वर्गमें हीन देव होय करि बड़े ऋद्धिधारी देवकै अणि-
मादि गुणकी विभूति देखै तथा देवांगना आदिका बहुत परिवार देखै
तथा आज्ञा ऐश्वर्य आदिका माहात्म्य देखै तब मनमें ऐसैं विचारी जो
में पुण्यरहित हूं ये बड़े पुण्यवान है जिनिकै ऐसी विभूति माहात्म्य
ऋद्धि है ऐसे विचार तैं मानसिक दुःख होय है ॥ १५ ॥

आगैं कहै है जो अशुभ भावनातैं नीच देव होय ऐसे दुःख पावै है
ऐसैं कहि इस कथनकूं संकोचै है—

गाथा—चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो ।

होऊण कुदेवत्तं पत्तोसि अण्येयवाराओ ॥ १६ ॥

संस्कृत—चतुर्विधविकथासक्तः मदमत्तः अशुभभावप्रकटार्थः ।

भूत्वा कुदेवत्वं प्राप्तः असि अनेकवारान् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू चार प्रकार विकथाविषैं आसक्त भया संता
मदकरि मांता अशुभ भावनाहीका है प्रकट प्रयोजन जाकै ऐसा होय
करि अनेकवार कुदेव पणाकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—स्त्रीकथा भोजन कथा देशकथा राजकथा ऐसी चार
विकथा तिनिविषैं परिणाम आसक्त होय लगाया तथा जाति आदि अष्ट
मदनिकरि उन्मत्त भया ऐसैं अशुभ भावनाहीका प्रयोजन धारि अर
अनेकवार नीचदेवपणाकूं प्राप्त भया तहां मानसिक दुःख पाया । इहां यह
विशेष जाननां जो विकथादिक करि तौ नीच देवभी न होय पूरन्तु इहां
मुनिक्क उपदेश है सो मुनिपद धारि कछू तपश्चरणादिक भी करै अर
भेषमें विकथादिकमें रक्त होय नीच देव होय है, ऐसैं जाननां ॥ १६ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं कुदेवयोनि पाय तहांतैं चय जो मनुष्य तिर्यच
होय तहां गर्भमें आवै ताकी ऐसी व्यवस्था है ।

गाथा—असुईवीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गम्भवसहीहि ।
वसिओसि चिरं कालं अणेयजणणीग मुनिप्रवर ॥१७॥

संस्कृत—अशुचिवीभत्सासु य कलिमलबहुलासु गर्भवसतिषु ।
उषितोऽसि चिरं कालं अनेकजननीनां मुनिप्रवर ! ॥१७॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर ! तू कुदेययोनिमें चयकरि अनेक माताकी गर्भकी वसतीविषै बहुत काल वस्या, कैसी है—अशुचि कहिये अपवित्र है, बहुरि वीभत्स है विणावणी है, बहुरि कैसी है कलिमल बहुत है जामैं पापरूप मलिन मलकी बहुलता है ॥

भावार्थ—इहां मुनिप्रवर ऐसा संबोधन है सो प्रधानपणैं मुनिनिकूं उपदेश है जो मुनेपदले मुनिनिमें प्रधान कहावै अर शुद्धात्मरूप निश्चय चारित्रकै सन्मुख न होय ताकूं कहै है जो बाह्य द्रव्यलिंग तौ बहुतवार धारि च्यार गतिमेंही भ्रमण किया देवभी हुवा तौ तहांतैं चयकरि ऐसे मलिन गर्भवास विषै आया तहांभी बहुतवार वस्या ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै—जो ऐसे गर्भवासतैं नीसरि जन्मले अनेक माता-निका दूध पिया;—

गाथा—पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं ।
अण्णाण्णाण महाजस ! सायरसलिलाहु अहिययरं ॥१८॥

संस्कृत—पीतोऽग्नि स्तनक्षीरं अनंतजन्मांतराणि जननीनाम् ।
अन्यासामन्यासां महायशः ! सागरसलिलात्
अधिकतरम् ॥ १८ ॥

अर्थ—हे महाजस ! तिस पूर्वोक्त गर्भवासविषै अन्य अन्य जन्म विषै अन्य अन्य माताका स्तनका दूधतैं समुद्रके जलतैं भी अतिशयकरि अधिक पिया ॥

भावार्थ—जन्म जन्म विपै अन्य अन्य माताके स्तनका दूध एता पीया ताकूं एकत्र कीजिये तौ समुद्रके जलतैंभी अतिशयकरि अधिक होय, इहां अतिशयका अर्थ अनंतगुणां ज्ञाननां जातैं अनंतकालका एकत्रित किया अनंतगुणां होय ॥ १८ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं जो जन्म लेकर मरण किया तत्र माताका रुदनका अश्रुपातका जलभी एता भया;—

गाथा—तुह मरणे दुःखेण अण्णणाणं अणेयजणणीणं ।

रुणाण गयणणीरं सागरसलिलाहु अहिययरं ॥१९॥

संस्कृत—तव मरणे दुःखेन अन्यासामन्यासां अनेकजननीनाम् ।

रुदितानां नयननीरं सागरसलिलात् अधिकतरम् १९

अर्थ—हे मुने ! तैं माताका गर्भमें बसि जन्म लेकर मरण किया सो तेरे मरण करि अम्य अन्य जन्मविपै अन्य अन्य माताका रुदनतैं नयननिका नीर एकत्र कीजिये तब समुद्रके जलतैंभी अतिशय करि अधिकगुणा होय अनंतगुणा होय ॥

आगैं फेरि कहैं हैं जो संसारमें जन्म लीए तिनमें केश नख नाळ कटे तिनिका पुंज कीजिये तौ मेरुतैं अधिकराशि होय;—

गाथा—भवसागरे अणंते छिण्णुज्झय केशणहरणालट्ठी ।

पुंजइ जइको वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी ॥

संस्कृत—भवसागरे अनंते छिन्नोज्झितानि केशनखरनालास्थानि ।

पुंजयति यदि कोऽपि देवः भवति च गिरिसमधिकः राशिः

अर्थ—हे मुने ! या अनंत संसार सागरमें तैं जन्म छिये तिनमें केश नख नाळ अस्थि कटे टूटे तिनिका जो कोई देव पुंज करै तौ मेरु गिरितैं भी अधिक राशि होय अनंतगुणा होय ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो—हे आत्मन् ! तू जल थल आदि स्थानक विषैं सर्वत्र वस्या;—

गाथा—जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ ।
वसिओसि चिरं कालं तिहुवणमज्जे अणप्पवसो ॥२१॥

संस्कृत—जलस्थलशिखिपवनांवरगिरिसरिदरीतरुवनादिषु सर्वत्र
उषितोऽसि चिरं कालं त्रिभुवनमध्ये अनात्मवशः॥२१॥

अर्थ—हे जीव ! तू जलविषैं, थल कहिये भूमिविषैं, शिखि कहिये
अग्निविषैं, तथा पवनविषैं, अंवर कहिये आकाश विषैं गिरि कहिये
पर्वतविषैं, सरित कहिये नदीविषैं, दरी कहिये पर्वतकी गुफाविषैं, तरु
कहिये वृक्षनिविषैं, वननिविषैं ब्रह्म कहा कहिये सर्वही स्थानकनिविषैं
तीनलोकविषैं बहुतकालपर्यन्त वस्या निवास किया; कैसा भया संता—
अनात्मवश कहिये पराधीन भया संता ॥

भावार्थ—निज शुद्धात्माकी भावनाविना कर्मके आधीन भया तीन
लोकमें सब दुःखसहित सर्वत्र वास किया ॥ २१ ॥

आगैं केरि कहै है जो हे जीव ! तैं या लोकमें सर्व पुद्गल भखे तौ
हू तूत न भया;—

गाथा—गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं ।
पत्तोसि तो ण तित्तिं पुंणरुत्तं ताइं भुंजंतो ॥ २२ ॥

संस्कृत—ग्रसिताः पुद्गलाः भुवनोदरवर्तिनः सर्वे ।
प्राप्तोऽसि तन्न वृत्तिं पुनरुत्तान् तान् भुंजानः॥२२॥

१—शुद्धिम संस्कृत प्रतिमें 'पुणरुत्तं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'पुनरुत्तं' इस
प्रकार है ।

अर्थ—हे जीव ! तैं या लोकका उदरविषैं वर्त्तते जे पुद्गल स्कंध तिनि सर्वनिकूं प्रसे भखे बहुरि तिनिक्ं पुनरुक्त फेरि फेरि भोगता संता हू तृप्तिकूं प्राप्त न भया ॥

फेरि कहै है;—

गाथा—तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाइ पीडिएण तुमे ।

तो वि ण तण्हालेओ जाओ चिंतेह भवमहणं ॥२३॥

संस्कृत—त्रिभुवनसलिलं सकलं पीतं तृष्णाया पीडितेन त्वया ।

तदपि न तृष्णाछेदः जातः चिन्तय भवमथनम् ॥२३॥

अर्थ—हे जीव ! तैं या लोकविषैं तृष्णाका पीड्या तीन भुवनका जल समस्त पिया तौऊ तृपाका व्युच्छेद न भया ते तातैं तू या संसारका मथन कहिये तेरै नाश होय तैसैं निश्चय स्तनत्रय चितवन करि ॥

भावार्थ—संसारमैं काहू प्रकार तृप्तिता नाहीं तातैं जैसैं अपने संसारका अभाव होय तैसैं चितवन करनां निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रिक सेवनां यह उपदेश है ॥ २३ ॥

आगे फेरि कहै है,—

गाथा—गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं ।

ताणं णत्थिपमाणं अणंतभवसागरे धीर ॥ २४ ॥

संस्कृत—गृहीतोऽज्झितानि मुनिवर कलेवराणि त्वया अनेकानि ।

तेषां नास्ति प्रमाणं अनन्तभवसागरे धीर ! ॥२४॥

अर्थ—हे मुनिवर ! हे धीर ! तैं या अनंत भवसागरविषैं कलेवर कहिये शरीर अनेक ग्रहण किये अर छोड़े तिनिका परिमाण नांही है ॥

भावार्थ—हे मुनिप्रधान ! तू किछू इस शरीरसूं स्नेह किया चाहै तौ या संसारविषैं ऐसे शरीर छोड़े अर गहे तिनिका कछू परिमाण न किया जाय है ॥ २४ ॥

आगै कहै है जो—पर्याय थिर नाहीं है आयुकर्मके आधीनहै सो अनेक प्रकार क्षीण होय है,—

गाथा—विसवेयणरक्तक्वयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं ।
आहारुस्सासाणं गिरोहणा खिज्जए आऊ ॥ २५ ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारग अणणपसंगेहिं विविहेहिं ॥ २६ ॥
इय तिरिय मणुय जम्मे सुइरं उववज्जिऊण बहुवारं ।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तोसि तं मित्त ॥ २७ ॥

संस्कृत—विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंकलेशानाम् ।
आहारोच्छ्वासानां निरोधनात् क्षीयते आयुः ॥ २५ ॥
हिमज्वलनसलिलगुरुतरपर्वततरुहणपतनभङ्गैः ।
रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगैः विविधैः ॥ २६ ॥
इति तिर्यग्मनुष्यजन्मनि सुचिरं उत्पद्य बहुवारम् ।
अपमृत्युमहादुःखं तीव्रं प्राप्तोऽसि त्वं मित्र ! ॥ २७ ॥

अर्थ—विषभक्षणतै वेदनाकी पीडाके निमित्ततै रक्त कहिये रुधिर ताका क्षयतै भय शस्त्रकरि घाततै संक्लेश परिणामतै आहारका तथा स्वासका निरोधतै, इनि कारणानितै आयुका क्षय होय है ॥

बहुति हिम कहिये शीत पाऊतै अग्नितै जलतै बडे पर्वतके चढनेतै पडनेतै बडे वृक्ष परि चढकारे पडनेतै शरीरका भंग होनेतै बहुति रस कहिये पारा आदिककी त्रिशा ताका संयोग करि धारण करै भखै तातै बहुति अन्याय कार्य चोरी व्यभिचार आदिके निमित्ततै ऐसै अनेक प्रकारके कारणतै आयुका व्युच्छेद होय कुमरण होय हैं ॥

यातैं कहै है जो—हे मित्र ! ऐसैं तिर्यंच मनुष्य जन्मविषैं बहुत-काल बहुतवार उपजि करि अपमृत्यु कहिये कुमरण तिससंबंधी तीव्र महादुःखकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—या संसारविषैं प्राणीकी आयु तिर्यंच मनुष्य पर्यायविषैं अनेक कारणनितैं छिदै है तातैं कुमरण होय है तातैं मरतैं तीव्र दुःख होय है तथा खोटे परिणामनितैं मरणकरि फेरि दुर्गतिहीमैं पड़ैं है, ऐसैं यह जीव संसारमें महादुःख पावै है यातैं आचार्य दयालु होय बारबार दिखावैं हैं अर संसारतैं मुक्त होनेका उपदेश करैं हैं ऐसैं जाननां ॥ २५—२६—२७॥

आनैं निगोदका दुःखकूं कहै है;—

गाथा—छत्तीसं तिण्णि सया छावटिसहस्सवारमरणाणि ।

अंतोमुहुत्तमज्जे पत्तोसि निगोयवासम्मि ॥ २८ ॥

संस्कृत—षट्त्रिंशत् त्रीणि शतानि षट्षष्टिसहस्रवारमरणानि ।

अन्तर्मुहूर्त्तमध्ये प्राप्तोऽसि निकोतवासे ॥ २८ ॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू निगोदके वासमें एक अंतर्मुहूर्त्तमें छयासठि हजार तीनसैं छत्तीस वार मरणकूं प्राप्तहूवा ।

भावार्थ—निगोदमें एक श्वासकै अठारवैं भाग प्रमाण आयु पावै है तहां एक मुहूर्त्तकै सैंतीससै तिहत्तरि श्वासोच्छ्वास गिणै है तिनिमें छत्तीससैपिन्यासी श्वासोच्छ्वास अर एक श्वासका तीसरा भागके छयासठि हजार तीसैं छत्तीस वार निगोदमें जन्म मरण होय है ताके दुःख यह प्राणी सन्यदर्शनभाव पाये बिना मिथ्यात्वका उदयकै वशीभूत भया सहै है । भावार्थ—अंतर्मुहूर्त्तमें छयासठि हजार तीनसैं छत्तीस वार जावन मरण कइया सो अठ्यासी श्वास घाटि मुहूर्त्त ऐसा अन्तर्मुहूर्त्त-विषैं जाननां ॥ २८ ॥

इसही अन्तर्मुहूर्त्तके जन्म मरणमें क्षुद्र भवका विशेष कहै है,

गाथा—वियलिंदए असीदी सट्टी चालीसमेव जाणेह ।

पंचिंदिय चउवीसं खुद्भवंतो मुहुत्तस्स ॥ २९ ॥

संस्कृत—विकलेंद्रियाणामशीतिं षष्टिं चत्वारिंशतमेव जानीहि ।

पंचेंद्रियाणां चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्त्तस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—इनि अन्तर्मुहूर्त्तके भवनिमें बेंद्रियके क्षुद्रभव अस्सी तेंद्रियके साठि चौइंद्रियके चालीस पंचेंद्रियके चौबीस ऐसैं—हे आत्मन् ! तू क्षुद्रभव जानि ॥

भावार्थ—क्षुद्रभव अन्य शास्त्रमें ऐसैं गिनैं हैं पृथ्वी अप तेज वायु साधारण निगोदके सूक्ष्म बादरकरि दश अर सप्रतिष्ठित वनस्पति एक ऐसैं ग्यारह स्थानकके भव तौ एक एकाके छह हजार बार ताके छयासठि हजार एकसौ बत्तीस भये, बहुरि इस गाथामें कहें ते बेंद्रिय आदिके दोयसौ च्यार ऐसैं ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त्तमें क्षुद्रभव कहै है ॥ २९ ॥

आगैं कहै है कि हे आत्मन् ! तू इस दीर्घसंसारविषैं ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयकी प्राप्ति बिना भ्रम्या यातैं अब रत्नत्रय अंगीकार करि,

गाथा—रयणत्तये अलब्धे एवं भमिओसि दीहसंसारे ।

इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तं समायरह ॥ ३० ॥

संस्कृत—रत्नत्रये अलब्धे एवं भ्रमितोऽसि दीर्घसंसारे ।

इति जिणवरैर्भणितं तत् रत्नत्रयं समाचर ॥ ३० ॥

अर्थ—हे जीव ! तू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय ताकूं न पाये यातैं इस दीर्घ अनादिसंसारविषैं पूर्वैं कहा तैसैं भ्रम्या ऐसा जानि-करि अब तू तिस रत्नत्रयका आचरणकरि, ऐसैं जिनेश्वरदेव कहा है ॥

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय पाये बिना यह जीव मिथ्यात्वके उदयतै संसारमें भ्रम है यातै रत्नत्रयका आचरणका उपदेश है ॥ ३० ॥

आगै शिष्य पूछै जो वह रत्नत्रय कैसा है ताका समाधान करै है जो रत्नत्रय ऐसा है;—

गाथा—अप्या अप्पम्मि रओ सम्माइटी हवेइं फुडु जीवो ।

जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्गुत्ति ॥ ३१ ॥

संस्कृत—आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः ।

जानाति तत् संज्ञानं चरतीह चारित्रं मार्ग इति ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो आत्मा आत्माविषै रत होय यथार्थस्वरूपका अनुभव करि तद्रूप होय, श्रद्धान करै सो प्रगट सम्यग्दृष्टी होय, बहुरि तिस आत्माकूं जानै सो सन्यज्ञान है, बहुरि तिस आत्माकूं आचरण करै रागद्वेषरूप न परिणमै सो चारित्र है; ऐसैं यह निश्चय रत्नत्रय है सो मोक्षमार्ग है ॥

भावार्थ—आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सो निश्चय रत्नत्रय है, अर बाह्य याका व्यवहारजीवअजीवादितत्त्वनिंका श्रद्धान जाननां परद्रव्य परभावका त्याग करनां है ऐसैं निश्चय व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है । तहां निश्चय तौ प्रधान है या बिना व्यवहार संसारस्वरूपही है, बहुरि व्यवहार है सो निश्चयका साधनस्वरूप है या बिना निश्चयकी प्राप्ति नाहीं है, अर निश्चयकी प्राप्तिभये पीछैं व्यवहार कइ है नाहीं ऐसैं जाननां ॥ ३१ ॥

आगै संसारविषै या जीवनै जन्म मरण किये ते कुमरण किये अब सुमरणका उपदेश करै है;—

गाथा—अण्णे कुमरणमरणं अणोयजम्मंतराईं मरिओसि ।

भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव ॥ ३२ ॥

संस्कृत—अन्यस्मिन् कुमरणमरणं अनेकजन्मान्तरेषु मृतः असि ।

भावय सुमरणमरणं जन्ममरणविनाशनं जीव ! ॥३२॥

अर्थ—हे जीव या संसारविषै अनेक जन्मान्तरविषै अन्य कुमरण मरण जेसैं होय तैसैं तू मूवा अब तू जा मरणतैं जन्म मरणका नाश होय ऐसा सुमरण भाय ॥

भावार्थ—मरण संक्षेपकरि अन्य शास्त्रविषै सतरह प्रकार कहा है, सो ऐसैं—आवीचिकामरण १ तद्भवमरण २ अवधिमरण ३ आद्यान्त-मरण ४ बालमरण ५ पंडितमरण ६ आसन्नमरण ७ बालपंडितमरण ८ सशल्यमरण ९ पलायमरण १० वशार्त्तमरण ११ विप्राणसमरण १२ गृध्रपृष्ठमरण १३ भक्तप्रत्याख्यानमरण १४ इंकिनीमरण १५ प्रायो-पगमनमरण १६ केवलमरण १७ ऐसैं सतरह ।

इनिका स्वरूप ऐसा—जो आयुका उदय समय समय करि घटे है सो समय समय मरण है ये आवीचिकामरण है ॥ १ ॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका अभाव सो तद्भवमरण है ॥ २ ॥

बहुरि जो जैसा मरण वर्त्तमान पर्यायका होय तैसाही अगिली पर्यायका होयगा सो अवधिमरण है, याका दोय भेद तहां जैसा प्रकृति स्थिति अनुभाग वर्त्तमानका उदय आया तैसाही अगिलीका उदय आवै सो सर्वावधिमरण है; अर एकदेशबंध उदय होय तो देशावधि मरण कहिये ॥ ३ ॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था तैसा अगिलीका सर्वतो वा देशतो बंध उदय न होय सो आद्यन्तमरण है ॥४॥

पांचवां बालमरण है, सो बाल पांच प्रकार है;—अव्यक्त बाल, व्यवहारबाल, ज्ञानबाल, दर्शनबाल, चरित्रबाल ! तहां जो धर्म अर्थ काम

इनिकार्यनिकूं न जानैं इनिका आचरणकूं समर्थ जाका शरीर नाहीं होय^५ सो अव्यक्तबाल है। जो लोकका अर शास्त्रका व्यवहारकूं न जानैं तथा बालक अवस्था होय सो व्यवहारबाल है। वस्तुका यथार्थ ज्ञानरहित ज्ञानबाल है। तत्वब्रह्मानराहेत मिथ्यादृष्टी दर्शनबाल है। चारित्र रहित प्राणी चारित्रबाल है। इनिका मरनां सो बालमरण है। इहां प्रधानपणैं दर्शनबालहीका ग्रहण है जातैं सम्यग्दृष्टीकें अन्य बालपणां होतैंभी दर्शनपंडितताका सद्भावतैं पंडितमरणविषैही गणिये है। तहां दर्शनबालका संक्षेपतैं दोय प्रकार मरण कहा है—इच्छाप्रवृत्त १ अनिच्छाप्रवृत्त २ तहां अग्निकरि धूमकरि शस्त्रकरि विषकरि जलकरि पर्वतके तटतैं पडनेकरि अति शीत उष्णकी बाधाकरि बंधनकरि शुधा-तृषाके अवरोधकरि जीम उपाडनेकरि विरुद्ध आहार सेवनेकरि बाल आज्ञानी चाहि करि मरै सो इच्छाप्रवृत्त है। अर जीवनेका इच्छुक होय अर मरै सो अनिच्छाप्रवृत्त है ॥ ५ ॥

बहुरि पंडितमरण चार प्रकार हैं;—व्यवहारपंडित सम्यक्त्वपंडित, ज्ञानपंडित, चारित्रपंडित। तहां लोकशास्त्रका व्यवहारविषै प्रवीण होय सो व्यवहारपंडित है। सम्यक्त्व सहित होय सो सम्यक्त्वपंडित है। सम्यग्ज्ञानसहित होय सो ज्ञानपंडित है। सम्यक् चारित्रकरि सहित होय सो चारित्रपंडित है। इहीं दर्शन ज्ञान चारित्रसहित पंडितका ग्रहण है जातैं व्यवहारपंडित मिथ्यादृष्टी बालमरणमें आय गया ॥ ६ ॥

बहुरि जो मोक्षमार्गमें प्रवर्तनेवाला साधु संघतैं द्रव्या ताकूं आसन्न कहिये है तिनमें पार्श्वस्थ स्वच्छंद कुशील संसक्तभी लेने, ऐसैं पंच प्रकार भ्रष्ट साधुनिका मरण सो आसन्नमरण है ॥ ७ ॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी श्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है ॥ ८ ॥

बहुिर सशल्यमरण दोय प्रकार—तहां मिथ्यादर्शन माया निदान ये तीन शल्य तौ भावशल्य है, अर पंच स्थावर अर त्रसमें असैनी ये द्रव्यशल्यसहित हैं ऐसैं सशल्यमरण है ॥ ९ ॥

बहुिर जो प्रशस्तक्रियाविषैं आलसी होय व्रतादिविषैं शक्तिकूं छिपावै ॥ ध्यानदिकतैं दूरि भागैं ऐसाकामरण सो पलाय मरण है ॥ १० ॥

वशार्तमरण च्यार प्रकार है—सो आर्तरांद्र ध्यानसहित मरण है तहां पांच इंद्रियनिके त्रिषयनिविषैं रागद्वेषसहित मरण सो इन्द्रियवशात् मरण हैं; साता असाताकी वेदनासहित मरै सो वेदनाशार्तमरण है, क्रोध मान माया लोभ कषायके वशतैं मरै सो कषायवशार्तमरण है, हास्य बिनोद कषायके वशतैं मरै सो नोकषायवशार्तमरण है ॥ ११ ॥

बहुिर जो अपना व्रत क्रिया चारित्रविषैं उपसर्ग आवै सो कदाभी न जाय अर भ्रष्ट होनैका भय आवै तब अशक्त भया अन्नपानीका त्यागकरि मरै सो विप्राणसमरण है ॥ १२ ॥

बहुिर जो शस्त्रग्रहणकरि मरण होय सो गृध्रपृष्ठमरण है ॥ १३ ॥

बहुिर जो अनुक्रमसूं अन्नपानीका यथाविधि त्यागकरि मरै सो भक्त-प्रत्याख्यान मरण है ॥ १४ ॥

बहुिर जो संन्यास करै अर अन्यपास वैयावृत्त्य करावै सो इंगिनी-मरण है ॥ १५ ॥

बहुिर जो प्रायोपगमन संन्यास करै काहू पास वैयावृत्त्य न करावै अपने आपभी न मरै प्रतिमायोग रहै सो प्रायोपगमनमरण है ॥ १६ ॥

बहुिर जो केवली मुक्तिप्राप्त होय सो केवलिमरण है ॥ १७ ॥

ऐसैं सतरह प्रकार कहे तिनिका संक्षेप ऐसा किया है—जो मरण पांच प्रकार है;—पंडितपंडित, पंडित, बालपंडित, बाल, बालबाल ।

तहां दर्शन ज्ञान चारित्रिका अतिशयकरि सहित होय सो तौ पंडितपंडित है, अर इनिकी प्रकर्षता जाकै न होय सो पंडित है, सम्यग्दृष्टी श्रावण सो बाल पंडित, अर पूर्वैं चार प्रकार पंडित कहे तिनिमें सूं एकमी भाव जाकै नांही सो बाल है, अर जो सर्वतैं न्यून होय सो बालवाल है । इनिमें पंडितपंडितमरण अर पंडितमरण अर बालपंडितमरण ये तीन प्रशस्त सुमरण कहै हैं अन्यरीति होय सो कुमरण है । ऐसैं जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र एकदेशसहित भै सो सुमरण है, ऐसा सुमरण करनेका उपदेश है ॥ ३३ ॥

आगैं यह जीव संसारमें भ्रमैं है तिस भ्रमणके परावर्तनका स्वरूप मनमें धारि निरूपण करै है, तहां प्रथमही सामान्यकरि लोकके प्रदेश-निकी अपेक्षाकरि कहै है;—

गाथा—सो णत्थि दब्बसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ ।

जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सब्बो ॥३३॥

संस्कृत—सः नास्ति द्रव्यभ्रमणः परमाणुप्रमाणमात्रो निलयः ।

यत्र न जातः न मृतः त्रिलोकप्रमाणकः सर्वः ॥३३॥

अर्थ—यह जीव द्रव्यलिंगका धारक मुनिपणां होतैं संतैं भी यहू तीन लोक प्रमाण सर्व स्थानक हैं तामैं एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्रभी ऐसा स्थान नांही जामैं जनम्यां नांही तथा मूवा नांही ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारकरिभी सर्वलोकमें यहजीव जनम्या मन्या ऐसा प्रदेश न रहा जामैं जनम्या मन्या नांही, ऐसा भावलिंगविना द्रव्यलिंगतैं मुक्तिप्राप्त न भया ऐसा जाननां ॥ ३३ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ़ करनेकूं भावलिंगकूं प्रधानकरि कहै है,

गाथा—कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं ।

जिणलिगेण वि पत्तो परंपराभावरहिण्ण ॥३४॥

संस्कृत—कालमनंतं जीवः जन्मजरामरणपीडितः दुःखम् ।

जिनलिङ्गेन अपि प्राप्तः परम्पराभावरहितेन ॥३४॥

अर्थ—यह जीव या संसारविषैं जामैं परंपरा भावलिंग न भया संता अनंतकालपर्यन्त जन्म जरा मरणकरि पीडित दुःखहीकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—द्रव्यलिङ्ग धान्या अर तामैं परंपराकरि भी भावलिंगकी प्राप्ति न भई यातैं द्रव्यलिङ्ग निष्फल गया मुक्तिकी प्राप्ति न भई संसारहीमैं भ्रम्या ।

इहां आशय ऐसा जो द्रव्यलिङ्ग है सो भावलिंगका साधन है परन्तु काललब्धिविनां द्रव्यलिङ्ग धारेभी भावलिंगकी प्राप्ति न होय यातैं द्रव्यलिङ्ग निष्फल जाय है ऐसैं मोक्षमार्ग प्रधानकरि भावलिंगही है । इहां कोई कहै है ऐसैं है तौ द्रव्यलिङ्ग पहले काहेकूं धारणां ? ताकूं कहिये ऐसैं मानेतौ व्यवहारका लोप होय है तातैं ऐसैं, माननां जो द्रव्यलिङ्ग पहले धारणां, ऐसा न जानना जो याहीतैं सिद्धि है भावलिंगकूं प्रधान मानि तिसकै सन्मुख उपयोग राखनां द्रव्यलिङ्गकूं यत्नतैं साधना ऐसा श्रद्धान भला है ॥ ३४ ॥

आगैं पुद्गल द्रव्यकूं प्रधानकरि भ्रमण कहै है;—

गाथा—पडिदेशसमयपुद्गलआउगपरिणामणामकालद्वं ।

गहिउज्झियाई बहुसो अणंतभवसायरे जीवो ॥ ३५ ॥

संस्कृत—प्रतिदेशसमयपुद्गलायुः परिणामनामकालस्थम् ।

गृहीतोऽज्झितानि बहुशः अनंतभवसागरे जीवः ॥३५॥

अर्थ—इस जीवनैं या अनंत अपार भवसमुद्रविषैं लौकाकाशके जेतु प्रदेश हैं तिनि प्रति समय समय अर पर्यायके आयुप्रमाण काल अर अपने जैसा योगकषायके परिणमन स्वरूप परिणाम अर जैसा गतिजाति

आदि नाम कर्मके उदयतै भया नाम अर काल जैसा उत्सर्पिणी अवस-
र्पिणी तिनि विषै पुद्रलके परमाणुरूप स्कंध ते बहुतवार अनंतवार ग्रहण
किये अर छोड़े ॥

भावार्थ—भावलिंग विना लोकमें जे ते पुद्रल स्कंध है ते ते सर्वही
ग्रहे अर छोड़े तौऊ मुक्त न भया ॥ ३५ ॥

आगैं क्षेत्रकूं प्रधान करि कहै है;—

गाथा—तेयाला तिणि मया रज्जूनं लोयखेत्तपरिमाणं ।

मुत्तूणट्ट पएसा जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो ॥३६॥

संस्कृत—त्रिचत्वारिंशत् त्रीणि शतानि रज्जूनां लोक-

क्षेत्रपरिमाणं ।

मुत्त्वाऽष्टौ प्रदेशान् यत्र न भ्रमितः जीवः ॥३६॥

अर्थ—यहु लोक तीनसैं तियालीस राजू परिमाण क्षेत्र है ताकै बीचि
मेरुकैं तऊ गोस्तनाकार आठ प्रदेश हैं तिनिंकूं छोड़िकार अन्य प्रदेश
ऐसा न रह्या जायै यह जीव नांही जनम्या मया ॥

भावार्थ—‘दुरुदुल्लिओ’ ऐसा प्राकृतमें भ्रमण अर्थका धातुका
आदेश है, अर क्षेत्र परावर्तनमें मेरुकैं तलैं आठ प्रदेश लोकके मध्यके
हैं तिनिंकूं जीव अपने प्रदेशनिके मध्यदेश उपजै हैं तहांतैं क्षेत्रपरावर्त-
नका प्रारंभ कीजिये है तातैं तिनिंकूं पुनस्त भ्रमणमें न गिणिये है ॥३६॥

आगैं यह जीव शरीरसहित उपजै मरै है तिस शरीरमें रोग होय हैं
तिनिका संख्या दिखावै है;—

गाथा—एकेकेंगुलि बाही छणवदी होंति जाण मणुयाणं ।

अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया ॥३७॥

संस्कृत—एकैकांगुलौ व्याधयः षण्णवतिः भवंति
जानीहि मनुष्यानां ।

अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः ॥

अर्थ—इस मनुष्यके शरीरविषै एक एक अंगुलमें छिनवै छिनवै रोग होय है तब कहो अवशेष समस्त शरीरविषै केते रोग कहै ऐसैं जानि ॥३७॥

आगैं कहै है हे जीव ! तिनि रोगनिका दुःख तैं सखाः—

गाथा—ते रोया वि य सयला महिया ते परवसेण पुव्वभवे ।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं ॥३८॥

संस्कृत—ते रोगा अपि च मकलाः मोढास्त्वया परवशेण
पूर्वभवे ।

एवं सहसे महायशः ! किं वा बहुभिः लपितैः ॥३८॥

हे महायश ! हे मुने ! तैं पूर्वोक्त सब रोगनिकूं पूर्वभवविषै तौ परवश सहे, ऐसैं ही फेरि सहंगा, बहुत कहनेकरि कहा ?

भावार्थ—यह जीव पराधीन हुवा सर्व दुःख सहै है जां ज्ञान भावना करै अर दुःख आयौं तासूं चिगै नांही ऐसैं स्ववाशि सहै तौ कर्मका नाश करि मुक्त होजाय, ऐसैं जाननां ॥ ३८ ॥

आगैं कहै है जो—अपवित्र गर्भवासमें भी बस्याः—

गाथा—पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले ।
उयरे वसिओसि चिरं नवदसमासेहिं पत्तेहिं ॥३९॥

संस्कृत—पित्तांत्रमूत्रफेफसयकृद्रुधिरखरिमकृमिजाले ।

उदरे उपितोऽसि चिरं नवदशमासैः प्राप्तैः ॥३९॥

अर्थ—हे मुने ! तू ऐसे मलिन अपवित्र उदरकै विषै नव मास तथा दश मास प्राप्ति करि बस्या, कैसाहै उदर जामें पित्त अर आंतनि-

करि वेढ्या अर मूत्रका स्रवण अर फेफस कहिये जो रुधिर विना मेद
 फूलिजाय बहुरि कालिज्ज कहिये कालजो बहुरि रुधिर बहुरि खरिस
 कहिये जो अपक्व मलसूं मिल्या रुधिर श्लेष्म बहुरि कृमिजाल कहिये
 लट जीवनिके समूह ये सर्व पाइये, ऐसा स्त्रीका उदरविषै बहुत बार
 बस्या ॥ ३९ ॥

फेरि याहीकूं कहै है;—

गाथा—दिशसंगद्वियमसणं आहारिय मायमुत्तमणांते ।

छदिखरिसाण मज्झे जठरे वसिओसि जणणीए ॥४०॥

संस्कृत—द्विजसंगस्थितमशनं आहत्य मातृमुक्तमन्त्रान्ते ।

छर्दिखरिसयोर्मध्ये जठरे उषितोऽसि जनन्याः ॥४०॥

अर्थ—हे जीव ! तू जननी जो माता ताके उदरगर्भविषै वस्या
 तहां माताका अर पिताका भोगकै अंत छर्दि कहिये वमनका अन्न
 खरिस कहिये अपक्व मल रुधिरसूं मिल्या तिनिकै मध्य वस्या, कहा
 करि वस्या—माताका दांतनिकरि चाब्या तनि दांतनिकै लग्या तिष्ठया
 औठ्या जो भोजन माताके खाये पीछै जो उदरमें गया ताका रस आहा-
 रकरि वस्या ॥ ४० ॥

आगै कहै है जो गर्भतैं नीसरि बालपणां ऐसा भोग्या;—

गाथा—सिसुकाले य अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओसि तुमं ।

असुई असिया बहुसो मुणिवर ! बालत्तपत्तेण ॥४१॥

संस्कृत—शिशुकाले च अज्ञाने अशुचिमध्ये लोलितोऽसि त्वम् ।

अशुचिः अशिता बहुशः मुनिवर ! बालत्वप्राप्तेन ॥४१॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू बालपणके कालविषै अज्ञान अवस्थामें
 अशुचि अपवित्र स्थाननिविषै अशुचिकै वीचि लौठ्या बहुरि बहुतबार
 अशुचि वस्तु ही खाई, बालपणांकूं पाय ऐसी चेष्टा करी ॥

भावार्थ—इहां 'मुनिवर' ऐसा संबोधन है सो पूर्ववत् जाननां, बाह्य आचरणसहित मुनि होय ताहींकूं इहां प्रधानपणै उपदेश है जो बाह्य आचरण किया सो तौ बडा कार्य किया परन्तु भावविना यह निष्फल है ताँतै भावकै सन्मुख रहनां, भावविना ये अपवित्र स्थान मिले हैं ॥ ४१ ॥

आगैं कहै है—यह देह ऐसा है ताकूं विचारै;—

गाथा—मंसट्टिसुकसोणियपित्ततमवत्तकुणिमदुग्गंधं ।

खरिसवसपूयखिब्भिस भरियं चिंतेहि देहउडं ॥४२॥

गाथा—मांसास्थिशुक्रश्रोणितपित्तांत्रस्रवत्कुणिमदुर्गन्धम् ।

खरिसवसापूयकिल्बिषभरितं चिन्तय देहकुट्टम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू देहरूप घटकूं ऐसा विचारि, कैसा है देहघट—मांस अर हाड अर शुक्र कहिये कीर्य अर श्रोणित कहिये रुधिर अर पित्तकहिये उष्ट्रविकार अर अंत्र कहिये आंतरे ऊरते तिनिकरि तत्काल मृतककी ज्यों दुर्गंध है, बहुते कैसा है देहघट खरिस कहिये रुधिरसूं मिल्या अपक्वमल, वसा कहिये मेद अर पूय कहिये त्रिगड्या लोही राधि ये सर्व मलिन वस्तुनिकरि पूर्ण भन्या है ऐसा देहरूप घटकूं विचारि ॥

भावार्थ—यह जीव तौ पवित्र है बुद्धज्ञानमयी है अर ये देह ऐसा तामैं बसना अयोग्य है ऐसा जनाया है ॥ ४२ ॥

आगैं कहै हं—जो कुटुंबतैं छूट्या सो नाहीं छूट्या भावतैं छूटे छूट्या कहिये;—

गाथा—भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो वंधवाइमिसेण ।

इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतंरं धीर ॥४३॥

संस्कृत—भावविमुक्तः मुक्तः न च मुक्तः बांधवादिमित्रेण ।
इति भावयित्वा उज्ज्वय गन्धमाभ्यन्तरं धीर ! ॥४३॥

अर्थ—जो मुनि भावनिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त कहिये अर बांधव आदि कुटुंब तथा मित्र आदिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त न कहिये यातैं हे धीर ! मुनि तू ऐसा जानिकरि अभ्यन्तरकी वासनाकूं छोड़ि ॥

भावार्थ—जो बाह्य बांधव कुटुंब तथा मित्र इनिकूं छोड़िकरि निर्ग्रंथ भया अर अभ्यन्तरका ममत्व भावरूप वासना तथा इष्ट अनिष्ट विषैं रागद्वेष वासना न छूटीतौ ताकूं निर्ग्रंथ न कहिये, अभ्यन्तर वासना छूटे निर्ग्रंथ है तातैं यह उपदेश है जो अभ्यन्तर मिथ्यात्व कपाय छोड़ि भाव-मुनि होनां ॥ ४३ ॥

आगैं कहैं है जे पूर्वं मुनि भये तिनिकैं भाव शुद्ध बिना सिद्धि न पाई तिनिका उदाहरणमात्र नाम कहैं है, तहां प्रथमहीं बाहुवलीका उदाहरण कहैं है:—

गाथा—देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर !
अत्तावणेण जादो बाहुवली कित्तियं कालं ॥४४॥

संस्कृत—देहादित्यक्तसंगः मानकषायेन कलुषितः धीर ! ।
आतापनेन जातः बाहुवली कियन्तं कालम् ॥४४॥

अर्थ—देखो, बाहुवली श्रीकृष्णभदेवका पुत्र सो देहादिकतैं छोड़्या है परिह्र जानैं ऐसा निर्ग्रंथ मुनि भया तांऊ मानकषाय करि कलुष परिणामरूप भया संता केतयक काल आतापन योग करि तिष्ठया सिद्धि न पाई ॥

भावार्थ—बाहुवलीतैं भरत चक्रवर्ती विरोध करि युद्ध आरंभ्या तहां भरत अपमान पाया तापीछैं बाहुवली विरक्त होय निर्ग्रंथ मुनि भये परन्तु कछ

मानकषायकी कलुषता रही जो भरतकी भूमिमें मैं कैसें रहूं तब कायो-
त्सर्ग योगकरि एकवर्षताई तिष्ठे केवलज्ञान न पाया पीछै कलुषता मिटी
तब केवलज्ञान उपज्या, तातैं कहै है जो ऐसे महान पुरुष बड़ी शक्तिके
धारकभी भावशुद्धिविना सिद्धि न पाई तब अन्यकी कहा कथा ? तातैं भाव
शुद्ध करनां यह उपदेश है ॥ ४४ ॥

आगैं मधुपिंगमुनिका उदाहरण कहै है;—

गाथा—मधुपिंगो नाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो ।

सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय ॥ ४५ ॥

संस्कृत—मधुपिंगो नाम मुनिः देहाहारादित्यक्तव्यापारः ।

श्रमणत्वं न प्राप्तः निदानमात्रेण भव्यनुत ! ॥ ४५ ॥

अर्थ—मधुपिंगनामा मुनि है सो कैसा भया देह आहारादिविषैं
छोड्या है व्यापार जानैं तौऊ निदानमात्रकरि भावश्रमणपणाकूं प्राप्त न
भया ताहि भव्यजीवनिकरि नमने योग्य मुनि तू देखि ॥

भावार्थ—मधुपिंगलनामा मुनिकी कथा पुराणमें है ताका संक्षेप
ऐसा;—इस भरतक्षेत्रविषैं सुरम्यदेशमें पौदनापुरका राजा तृणपिंग-
लका पुत्र मधुपिंगल था सो चारणयुगलनगरका राजा सुयोधनकी पुत्री
सुलसाका स्वयंवरमें आयाथा अर तहांही साकेतापुरीका राजा सगर
आयाथा सो सगरके मंत्री, मधुपिंगलकूं कपटकरि सामुद्रिक शास्त्रकूं
नवीन वणाय दूषणदिया जो याके नेत्र पिंगल है मांजरा है जो याकूं कन्या
चै सो मरणकूं प्राप्त होय तब कन्या सगरकै गलै वरमाला गेरी मधुपि-
गलकूं वन्या नांही, तब मधुपिंगल विरक्त होय दीक्षा लई पीछैं कारणपाय
सगरका मंत्रीका कपटकूं जाणि क्रोधकरि निदान किया जो भैरै तंपका
फल यह होइ “जन्मान्तरविषैं सगरके कुलकूं निर्मूल करूं” तापीछैं

मधुपिंगल मरि करि महाकालासुरनामा असुर देव भया तब सगरकूं मंत्री सहित मारणेंका उपाय हेरता भया तब क्षीरकदंब ब्राह्मणका पुत्र पर्वत पापी याकूं भिन्या तब पशुनिकी हिंसारूप यज्ञका सहायी होय कही, सगर राजाकूं यज्ञका उपदेश करि यज्ञ कराय तेरा यज्ञका सहायी हूंगा तब पर्वत सगर पासि यज्ञ कराया पशु होमें, तिस पापतैं सगर सात बै नरक गया अर कालासुर साहायी भया सो यज्ञके कर्ताकूं स्वर्ग गये दिखाये । ऐसैं मधुपिंगल नामा मुनि निदानकरि महाकालसुर होय महापाप उपाज्या, तातैं आचार्य कहै है मुनि होय तौऊ भाव विगडे सिद्धिकूं न पावै याकी कथा पुराणनितैं विस्तारतैं जाननी ॥

आगैं वशिष्ठ मुनिका उदाहरण कहै है;—

गाथा—अणं च वसिष्ठमुणि पत्तो दुःखं नियाणदोसेण ।

सो णत्थि वासठानो जत्थ ण दुरुद्धिओ जीवो ॥४६॥

संस्कृत—अन्यथ वसिष्ठमुनिः प्राप्तः दुःखं निदानदोषेण ।

तन्नास्ति वासस्थानं यत्र न भ्रमितः जीव ! ॥ ४६ ॥

अर्थ—बहुनि अन्य कहिये और एक वशिष्ठनामा मुनि निदानके दोषकरि दुःखकूं प्राप्तभया यातैं ऐसा लोकमें वासस्थान नाहीं जामैं यह जीव जन्ममरणसहित भ्रमणकूं प्राप्त नाहीं भया ॥

भावार्थ—वशिष्ठमुनिकी कथा ऐसैं है;—गंगा अर गंधवती दोऊ नदीका जहां संग भया है तहां जठरकौशिकनामा तापसीकी मल्ली है तहां एक वशिष्ठ नामा तापसी पंचाभितैं तपै था तहां गुणभद्र वीरभद्र नामा दोय चारणमुनि आये तिनि वशिष्ठ तापसकूं कही जो तू अज्ञानतप करै है यामैं जीवनिकी हिंसा होय है, तब तापस प्रत्यक्ष हिंसा देखि अर विरक्त होय जैनदीक्षा लई भासोपवाससहित आतापनयोग स्थाप्या, तिस तपके माहात्म्यतैं सात व्यन्तरदेव आय कही, हमकूं

आज्ञा दो सोही करौं, तब वशिष्ठ कही अवारतौ मेरै कछू प्रयोजन नांही जन्मान्तरमें तुमकुं यादि करुंगा । पाछैं वशिष्ठ मथुरापुरी आय मासोपवाससहित आतापन जोग स्थाप्या ताकुं मथुरापुरीके राजा उग्र-सेननै देखि भक्ति थकी या विचारी जो याकुं मैं पारणां कराऊंगा ऐस नगरमें घोषणा कराई जो या मुनिकुं और कोई आहार न दे । पीछैं पारणाकै दिन नगरमें आया तहां अग्निका उपद्रव देखि अंतराय जानि उलटा फिन्या । फेरि मासोपवास स्थाप्या फेरि पारणाकै दिन नगरमें आया तब हस्तीका क्षोभ देखि अंतराय जानि उलटा फिन्या फेरि मासो-पवास स्थाप्या । पीछैं पारणाकै दिन फेरि नगरमें आया तब राजा जरा-संधका पत्र आया ताके निमित्त तैं राजाका व्यग्र चित्त था सो मुनिकुं पडगाहे नांही तब अंतराय करि उलटा वनमें जाता लोकनिके वचन सुने—जो राजा मुनिकुं आहार दे नहीं अन्यकुं देतेकुं मनें किये ऐसे लोकनिके वचन सुनि राजापरि क्रोध करि निदान किया जो—या राजाकै पुत्र होय राजाका निग्रह करि मैं राज करुं या तपका मेरै यह फल होहु; ऐसैं निदा-नकरि भूवा राजा उग्रसेनकी राणी पद्मावतीका गर्भमें आया पूर्ण मास भये जनम्या तब याकुं क्रूरदृष्टि देखि कांसीकी मंजूपामै स्थाप्या अर वृत्तान्तका लेख सहित यमुनानदीमें बहाया, तब कौशांबीपुरमें मंदोदरी नाम कलाली ताकुं लेय पुत्रबुद्धिकरि पाल्या, कंस नाम दिया, तहां बड़ा भया तब बाल-कनिसूं क्रीडा कौ तब सर्वकुं दुःख दे, तब मंदोदरी उलाहनाके दुःखतैं याकुं निकासि दिया, तब यह कंस शौर्यपुर गया, वहां वसुदेव राजाकै पयादा चाकर रह्या । पीछैं जरासंध प्रति नारायणका पत्र आया जो पोद-नांपुरका राजा सिंहस्थनै बांधि ल्यावै ताकुं आया राज्य सहित पुत्री परणाऊं । तब वसुदेव तहां कंससहित जाय युद्धकरि तिस सिंहस्थकुं बांधि ल्याया, जरासंधकुं सौप्या, तब जरासंध जीव्यशा पुत्रीसहित आधा-

राज्य दिया, तब वसुदेव कही—सिंहरथकूं कंस बांधि ल्याया है याकूं
 सो, तब जरासंध याका कुल जाणिबेकूं मंदोदरीकूं बुलाय कुलका निश्च-
 यकरि याकूं जीवंयंशा पुत्री परणाई, तब कंस मथुराका राज लेय आय
 पिता उग्रसेन राजाकूं अर पद्मावती माताकूं बंदीखानैं दिया । पीठैं कृष्ण
 नारायणकरि मृत्युकूं प्रात भया ताकी कथा विस्तारसूं उत्तरपुराणादिकतैं
 जाननीं । ऐसैं वशिष्ठमुनि निदानकरि सिद्धिकूं न पाई तातैं भावलिंगहीतैं
 सिद्धि है ॥ ४६ ॥

आगैं कहै है—भावरहित चौरासीलाख योनिमें भ्रमैं है;—

गाथा—सो णत्थि तं एसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि ।

भावविरओ वि सवणो जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो ॥

संस्कृत—सः नास्ति त्वं प्रदेशः चतुरशीतिलक्षयोनिवासे ।

भावविरतःअपि श्रमणः यत्र न भ्रमितः जीवः॥४७॥

अर्थ—या संसारमें चौरासीलाख योनि तिनिके वासमें ऐसा प्रदेश
 नांही है जामैं यह जीव द्रव्यलिंग मुनि होय करि भी भावरहित भया
 संता न भ्रमण किया ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारि निर्ग्रंथ मुनि होय करि शुद्धस्वरूपका
 अनुभवरूप भावविना यह जीव चौरासी लाख योनिमें भ्रमताही रह्या,
 ऐसा ठिकानां नांही रह्या जामैं जनम्या मन्या न होय; ऐसैं जातनां ॥

आगैं चौरासी लाख योनिका भेद कहै है;—पृथ्वी, आप, तेज,
 वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद ये तौ सात सात लाख हैं ते वयालीस
 लाख भये; बहुरि वनस्पति दश लाख हैं, वेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय,
 दोय दोय लाख हैं; पंचेंद्रिय तिर्यंच च्यार लाख, देव च्यार लाख, नारकी
 च्यार लाख, मनुष्य चौदह लाख । ऐसैं चौरासी लाख हैं । ये जीवनिके
 उपजनेके ठिकानें जानें ॥ ४७ ॥

आगै कहै है जो—द्रव्यमात्रकरि लिंगी न होय, भावकरि लिंगी होय है;—

गाथा—भावेण होइ लिंगी णहु लिंगी होइ द्रव्यमित्तेण ।

तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ द्रव्यलिंगेण ॥४८॥

संस्कृत—भावेन भवति लिंगी नहि लिंगी भवति द्रव्यमात्रेण ।

तस्मात् कुर्याः भावं किं क्रियते द्रव्यलिंगेन ॥४८॥

अर्थ—लिंगी होय है सो भावलिंगहीतैं होय है द्रव्यलिंगकरि लिंगी नांही होय है यह प्रकट है, तातैं भावलिंगही धारण करनां, द्रव्य लिंग-करि कहा कीजिये ॥

भावार्थ—आचार्य कहै है जो—सिवाय कहा कहिये भावलिंग बिना लिंगी नामही नांही होय जातैं यह प्रकट है, भाव शुद्ध न देखै तब लोकही कहै जो काहेका मुनि है कपटी है तातैं द्रव्यलिंगकरि कछू साध्य नांही, भावलिंगही धारणां ॥ ४८ ॥

आगै याहीकूं दृढ करनेकूं द्रव्यलिंगधारककै उलटा उपद्रव भया, ताका उदाहरण कहै है;—

गाथा—दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण ।

जिणलिंगेण वि बाहु पडिओ सो रउरवे णरये ॥४९॥

संस्कृत—दण्डकनगरं सकलं दग्धा अभ्यन्तरेण दोषेण ।

जिनलिंगेनापि बाहुः पतितः सः रौरवे नरके ॥४९॥

अर्थ—देखो, बाहुनामा मुनि बाह्य जिनलिंगकरि सहित था तौऊ अभ्यंतरके दोषकरि समस्त दंडकनामा नगरकूं दग्ध किया अर सप्तम पृथ्वीका रौरवनामा बिलमें पड्या ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारि किछू तप करै ताकरि किछू सामर्थ्य बधै तब कछू कारण पाय क्रोध करि आपका अर परका उपद्रव करनेका कारण बनावै तातैं द्रव्यलिंग भावसहित धारणाही श्रेष्ठ है अर केवल द्रव्यलिंग तौ उपद्रवका कारण होय है, ऐसैं याका उदाहरण बाहु मुनिका बताया ताकी कथा ऐसैं;—दक्षिणदिशामैं कुंभकारकटकनगरविषैं दंडकनामा राजा, ताकै बालकनाम मंत्री, तहां अभिनंदन आदि पांचसौं मुनि आये, तिनिमैं एक खंडकनामा मुनि था, तानैं बालकनाम मंत्रिकूं वादविषैं जीत्या, तब मंत्री क्रोधकरि एक भांडकूं मुनिका रूप कराय राजाकी राणी सुव्रता सहित रमता राजाकूं दिखाया, अर कही जो देखो—राजाकै ऐसी भाक्ति है जो अपनी स्त्री भी दिगंबरकूं रमबा नैं दर्ई है तब राजा दिगम्बरनितैं क्रोध करि पांचसै मुनिनिकूं घाणीमैं पिलवाया, ते मुनि उपसर्ग सहि परमसमाधि करि सिद्धि प्राप्त हुये । पीछैं तिसनगर बाहुनामा मुनि आया ताकूं लोकनि मनैं किया जो इहां राजा दुष्ट है सो तुम नगरमैं प्रवेश मति करौ आगैं पांचसै मुनि घाणीमैं पेल्या है सो तुमकूं भी तैसैंही करैगा । तब लोकनिके बचनकरि बाहु मुनिकूं क्रोध उपज्या तब अशुभतैजससमुद्रात करि राजाकूं मंत्रीसहित सर्वनगरकूं भस्म किया । राजा मंत्री सातवैं नरक रौरवनामा बिलामैं पड़े तहांही बाहुमुनिभी मरि करि रौरवबिलामैं पड्या । ऐसैं द्रव्यलिंगमैं भावके दोषतैं उपद्रव होय है, तातैं भावलिंगका प्रधान उपदेश है ॥ ४९ ॥

आगैं इसही अर्थपरि दीपायनमुनिका उदाहरण कहै है,

गाथा—अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो ।

दीवायणुत्ति गामो अणंतसंसारिओ जाओ ॥५०॥

संस्कृत—अपरः अपि द्रव्यश्रमणः दर्शनवरज्ञानचरणप्रभ्रष्टः ।

दीपायन इति नाम अनंतसासारिकः जातः ॥५०॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो पहलै बाहु मुनि कहा तैसें ही और भी दीपायननामा द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतै भ्रष्ट भया संता अनंतसंसारी भया ॥

भावार्थ—पूर्ववत् याकी कथा संक्षेपतै ऐसी, नवमां बलभद्र श्रीने-मिनाथतीर्थकरकूं पूछी जो स्वामिन् ! या द्वारिकापुरी समुद्रमै है सो याकी स्थिति केतेककाल है ? तब भगवान् कही रोहिणीको भाई दीपायन तेरो मामो बारह वर्ष पीछै मद्यका निमित्तकरि क्रोधकरि या पुरीकूं दग्ध करिसी, ऐसे वचन भगवानके वचन मुनि निश्चयकरि दीक्षा ले पूर्वदेशनै गया, बारह वर्ष व्यतीत करनेकूं तप करनां आरंभ्या, अर बलभद्र नारायण द्वारिकामै मद्यनिषेधकी धोषणा दर्ई, तब मद्यका वासण तथा ताकी सामग्री मद्य करणैवाला ब्राह्म पर्वतादिकमै क्षेप्या, तब वासणकी मदिरा तथा मद्यकी सामग्री जलके निवासनिमै फैली, पीछै बारह वर्ष बीत्या जाणि दीपायन द्वारिका आय नगरवाह्य आतापनयोगकरि तिष्ठथा भगवानका वचनकी प्रतीति न राखी पीछै शंभवकुमादिक क्रीडा करते तृषावंत होय कुंडनिमै जल जानि पीवते भये, तब तिस मद्यके निमित्ततै कुमार उन्मत्त भये, तहां दीपायनमुनि कूं तिष्ठथा देखि कहते भये—जो ये द्वारिकाका भस्म करनेवाला दीपायन है, ऐसैं कहिकरि तिसकूं पाषाणदिककरि घात करते भये, तब दीपायन भूमिमै गिरि पड्या, तब ताकूं क्रोध उपज्या ताके निमित्ततै द्वारिका दग्ध भई । ऐसैं दीपायन भावशुद्धि बिना अनन्त संसारी भया ॥ ५० ॥

आगैं भावशुद्धिकरि सहित मुनि भया त्यां सिद्धि पाई ताका उदाहरण कहै है;—

गाथा—भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिओ विसुद्धमई ।

गाभेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो ॥५१॥

संस्कृत—भावश्रमणश्च धीरः युवतिजनवेष्टितः विशुद्धमतिः ।

नाम्ना शिवकुमारः परित्यक्तसांसारिकः जातः ॥५१॥

अर्थ—शिवकुमारनामा भावश्रमण स्त्रीजनकरि बेढ्या हुवा संता भी विशुद्धबुद्धिका धारक धीर संसारका त्यागनवारा होत भया ॥

भावार्थ—शिवकुमार भावकी शुद्धताकरि ब्रह्मस्वर्गमें विद्युन्माली देव होय तहांतैं चय जंबूस्वामी केवली होय मोक्ष पाई, ताकी कथा ऐसैं;— इस जंबूद्वीप पूर्वविदेह पुष्कलावती देश वीतशोकपुरविपैं महापद्मराजा वनमाला राणीकै शिवकुमारनामा पुत्र होता भया सो एकदिन मित्रसहित वनक्रीडा करि नगरमें आवै था सो मार्गमें लोककूं पूजाकी सामग्री ले जाता देख्या तब मित्रकूं पूछी—ये कहां जाय है, तब मित्र कही जो सागरदत्तनामा मुनि ऋद्धिधारीकूं बनमें पूजनेकूं जाय है, तब शिवकुमार मुनि पासि जाय अपनां पूर्वभव मुनि संसारसूं विरक्त होय दीक्षा लई, अर दृढधरनामा श्रावककै घर प्रासुक आहार लिया, ता पीछैं स्त्रीनिकै निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालता संता बारह वर्ष ताई तपकरि अंतसंन्यास मरणकरि ब्रह्मकल्पविपैं विद्युन्मालीदेव भया, तहांतैं चयकरि जंबूकुमार भया सो दीक्षा लेय केवलज्ञान पाय मोक्ष गया । ऐसैं शिव-कुमार भावमुनि मोक्ष पाई, याकी विस्तारसहित कथा जंबूचरित्रमें है तहांतैं जाननीं; ऐसैं भाव लिंग प्रधान है ॥ ५१ ॥

आगैं शास्त्र भी पढ़ै अर सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न होय तौ सिद्धिकूं न पावै, ताका उदाहरण अभव्यसेनका कहै है;—

गाथा—केवलजिणपण्णत्तं^१ एयादसअंग सयलसुयणां ।

पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥५२॥

१—मुद्रिक संस्कृत सटीक प्रतिमें यह गाथा इस प्रकार है;—

गाथा—अंगानि दस य दुण्णि य चउदसपुव्वाणि सयलसुयणां ।

पढिओ अ भव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥ ५२ ॥

संस्कृत—अंगानि दश च द्वे च चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञानम् ।

पठितश्च भव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः ॥ ५२ ॥

संस्कृत—केवलिजिनप्रज्ञसं एकादशांगं सकलश्रुतज्ञानम् ।

पठितः अभव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः ॥५२॥

अर्थ—अभव्यसेननामा द्रव्यलिङ्गी मुनि है सो केवली भगवानका प्ररूप्या ग्यारह अंग पढ्या तथा ग्यारह अंगकूं पूर्ण श्रुतज्ञान भी कहिये जातैं एता पढ्याकूं अर्थ अपेक्षा पूर्ण श्रुत ज्ञानभी होय जाय है, तहां अभव्यसेन एता पढ्या तौऊ भावश्रमणपणांकूं प्राप्त न भया ॥

भावार्थ—इहां ऐसा आशय है जो कोई जानैगा बाह्य क्रिया मात्रतैं तौ सिद्धि नाहीं अर शास्त्रके पढनेंकरि तौ सिद्धि है तौ यहभी जाननां सत्य नाहीं जातैं शास्त्र पढनें मात्रतैंभी सिद्धि नाहीं है—अभव्यसेन द्रव्य-मुनिभी भया अर ग्यारह अंगभी पढ्या तौऊ जिनवचनकी प्रतीति न भई यातैं भावलिङ्ग न पाया । अभव्यसेनकी कथा पुराणनिमें प्रसिद्ध है तहांतैं जाननी ॥ ५२ ॥

आगैं शास्त्र पढ्या विना शिवभूति मुनि तुषमापकूं धोखताही भावकी विशुद्धिकूं पाय मोक्ष पाई ताका उदाहरण कहै है;—

गाथा—तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महानुभावो य ।

णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ॥५३॥

संस्कृत—तुषमाषं घोषयन् भावविसुद्धः महानुभावश्च ।

नाम्ना च शिवभूतिः केवलज्ञानी स्फुटं जातः ॥५३॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—शिवभूति मुनि है सो शास्त्र पढ्या तुष माष ऐसा शब्दकूं धोखता संता भावकरि विशुद्धितातैं महानुभाव होयकरि केवल ज्ञान पाया यह प्रकट है ॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि शास्त्र पढेही सिद्धि है सो ऐसैं भी नाहीं, शिवभूति मुनि तुषमाष ऐसा शब्द मात्रही धोखता भावनिकी

विशुद्धतातैं केवलज्ञान पाया, याकी कथा ऐसैं;—कोई शिवभूति नामा मुनि था सो गुरुनिपासि शास्त्र पढ़ै सो धारणा होय नांही, तब गुरुनि यह शब्द पढ़ाया जो “ मा रुष मा तुष ” सो या शब्दकूं धोखने लगा । याका अर्थ यह जो रोष मति करै तोष मति करै ॥

भावार्थ—राग द्वेष मति करै यातैं सर्व सिद्धि है । तब यह भी शुद्ध यादि न रह्या तब ‘ तुषमाष ’ ऐसा पाठ धोखने लगा, दोष पदके ‘ रुकार तुकार ’ विस्मरण होय गये अर तुष माष ऐसा यादि रह्या ताकूं धोखता विचरै । तब कोई एक स्त्री उडदकी दालि धौवैथी ताकूं काहूँ नै पूछी, तू कहा करै है—तब वानैं कही—तुष अर माष भिन्न न्यारे न्यारे करूं हूं । तब या मुनिनैं सुनि तुष माष शब्दका भावार्थ यह जान्या जो यह शरीर तौ तुष है अर यह आत्मा माप है, दोऊ भिन्न हैं न्यारे न्यारे हैं, ऐसा भाव जानि आत्माका अनुभव करने लगा, चिन्मात्र शुद्ध आत्माकूं जानि तामैं लीन भया, तब घाति कर्मका नाशकरि केवलज्ञान उपजाया । ऐसैं भावनिकी विशुद्धितातैं सिद्धि भई जानि भाव शुद्ध करनां, यह उपदेश है ॥ ५३ ॥

आगैं याही अर्थकूं सामान्यकरि कहै है;

गाथा—भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण ।

कम्मपयडीय णियरं णासइ भावेण दब्बेण ॥५४॥

संस्कृत—भावेन भवति नग्नः बहिरलिंगेन किं च नग्नेन ।

कर्मप्रकृतीनां निकरं नाशयति भावेन द्रव्येण ॥५४॥

अर्थ—भावकरि नग्न होय है बाह्य नग्नलिंगकरि कहा कार्य होय है, नांही होय है जातैं भावसहित द्रव्यलिंगकरि कर्मप्रकृतिके समूहका नाश होय है ॥

भावार्थ—आत्माकै कर्मप्रकृतिका नाशकरि निर्जरा तथा मोक्ष होनां कार्य है, सो यह कार्य द्रव्यलिंग ही करि तौ नाहीं होय है, भावसहित द्रव्यलिंग भये कर्मकी निर्जरा नामा कार्य होय है, केवल द्रव्यलिंगकरि तौ न होय है; तातैं भावसहित द्रव्यलिंग धारणां यह उपदेश है ॥ ५४ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ़ करै है;—

गाथा—णगगत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणोहिं पण्णत्तं ।

इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥५५॥

संस्कृत—नम्रत्वं अकार्यं भावरहितं जिनैः प्रज्ञप्तम् ।

इति ज्ञात्वा नित्यं भावयेः आत्मानं धीर ! ॥५५॥

अर्थ—भावरहित नम्रपणां हैं सो अकार्य है कछू कार्यकरी नाहीं यह जिनभगवाननैं कछा है, ऐसैं जानिकरि हे धीर ! हे धैर्यवान मुने निरन्तर नित्य आत्माहीकूं भाय ॥

भावार्थ—आत्माकी भावनाविना केवल नम्रपणां कछू कार्य करने-वाला नाहीं तातैं चिदानंदस्वरूप आत्माहीकी भावना निरन्तर करणीं, या सहित नम्रपणां सफल है ॥ ५५ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—भावलिंगकूं प्रधानकरि निरूपण किया सो भावलिंग कैसा है ? ताका समाधानकूं भावलिंगका निरूपण करै है;—

गाथा—देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो ।

अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहु ॥५६॥

संस्कृत—देहादिसंगरहितः मानकषायैः सकलपरित्यक्तः ।

आत्मा आत्मनि रतः स भावलिंगी भवेत् साधु ॥५६॥

अर्थ—भावलिंगी साधु ऐसा होय है—देह आदिक जे परिग्रह तिनितैं रहित होय बहुरि मान कषायकरि रहित होय बहुरि आत्मा विषैं लीन होय सो आत्मा भावलिंगी है ॥

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक परिणामकूं भाव कहिये है तिसमयी लिंग कहिये चिह्न तथा लक्षण तथा रूप होय सो भावलिंग है । तहां आत्मा अमूर्तीक चेतनारूप है ताका परिणाम दर्शन ज्ञान है तिसमैं कर्मके निमित्ततैं बाह्य तौ शरीरादिक मूर्तीक पदार्थका संबंध है अर अंत-रंग मिथ्यात्व अर रागद्वेष आदि कषायनिका भाव है । तातैं कहै है—जो बाह्य तौ देहादिक परिग्रहतैं रहित अर अन्तरंग रागादिक परिणाम-विषै अहंकाररूप मानकषाय परभावनिविषै आपा माननां तिस भावतैं रहित होय, अर अपनां दर्शनज्ञानरूप चेतनभाव ताविषै लीन होय सो भाव लिंग है, यह भाव होय सो भावलिंगी साधु है ॥ ५६ ॥

आगैं याही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै है;—

अनुदुपछंद—ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।

आलंबणं च मे आदा अवसेसाहं वोसरे ॥५७॥

संस्कृत—ममत्वं परिवर्जामि निर्ममत्वमुपस्थितः ।

आलंबनं च मे आत्मा अवशेषानि व्युत्सृजामि ॥५७॥

अर्थ—भावलिंगीमुनिके ऐसे भाव होय हैं—मैं परद्रव्य अर पर-भावनितैं ममत्व कहिये अपनां माननां ताकूं छोड़ूँ बहुरि मेरा निजभाव गमत्वरहित है ताकूं अंगीकार करि तिष्टूँ, अब मेरै आत्माहीका अवलं-नन है और सर्वहीकूं छोड़ूँ ॥

भावार्थ—सर्व परद्रव्यनिका आलंबन छोड़ि अपने आत्म स्वरूप-विषै तिष्ठै ऐसा भावलिंग है ॥ ५७ ॥

आगैं कहै है जो—ज्ञान दर्शन संयम त्याग संवर योग ये भाव भाव-लिंगी मुनिके होय हैं ते अनेक है तौउ आत्माही है तातैं इनितैंभी अभेदका अनुभव करै है;—

गाथा—आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।

आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥५८॥

संस्कृत—आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्रे च ।

आत्मा प्रत्याख्यानं आत्मा मे संवरे योगे ॥५८॥

अर्थ—भावलिङ्गी मुनि विचारै हैं जो—मेरै ज्ञानभाव प्रगट है ताविषै आत्माहीकी भावना है कलू ज्ञान न्यारा वस्तु नांही है ज्ञान हं सो आत्माही है, तैसें दर्शनविषै भी आत्माही है, बहुरि चरित्र है सो ज्ञान-विषै धिरता रहनाहै सो या विषै भी आत्माही है, बहुरि प्रत्याख्यान आगामी परद्रव्यका संबंध छोड़ना है सो या भावविषै आत्माही है, बहुरि संवर परद्रव्यके भावरूप न परिणमनेकाहै सो या भावविषै भी मेरै आत्माही है, बहुरि योग नाम एकाग्र चितारूप समाधि ध्यानका है सो या भावविषै भी मेरै आत्माही हैं ॥

भावार्थ—ज्ञानादिक कलू न्यारे पदार्थ तो हैं नांही, आत्माहीके भाव है संज्ञादिकके भेदतैं न्यारे कहिये हैं, तहां अभेददृष्टिकरि देखिये. तब ये सर्वभाव आत्माहीहैं तातैं भावलिङ्गी मुनिके अभेद अनुभवमें विकल्प नांही है; तातैं निर्विकल्प अनुभवतैं सिद्धिहै यह जाणि ऐसै करै है ॥ ५८ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते कहै है,—

अनुष्टुप श्लोक—एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो ।

सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥

संस्कृत—एकः मे शाश्वतः आत्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः ।

शेषाः मे बाह्याः भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः ॥५९॥

अर्थ—भावलिङ्गी विचारै है जो ज्ञान दर्शन जाका लक्षण ऐसा अर
शाश्वता नित्य ऐसा आत्मा है सोही एक मेरा है बाकी भाव हैं ते मोतैं
बाह्य हैं ते सर्वही संयोगस्वरूप हैं परद्रव्य हैं ॥

भावार्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है सो तौ मेरा रूप है
एक स्वरूप है अर अन्य परद्रव्य हैं ते मोतैं बाह्य हैं सर्व संयोगस्वरूप
है, भिन्न हैं, यह भावना भावलिङ्गी मुनिकै है ॥ ४९ ॥

आगैं कहै है जो मोक्ष चाहै है सो ऐसैं आत्माकी भावना करै,

गाथा—भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव ।

लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छसि सासयं सुखं ॥६०

संस्कृत—भावय भावशुद्धं आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव ।

लघु चतुर्गति च्युत्वा यदि इच्छसि शाश्वतं सौख्यम् ॥

अर्थ—हे मुनिजन हौ ! जो च्यारगतिरूप संसारतैं छुटिकरि शीघ्र
शाश्वता सुखरूप मोक्ष तुम चाहोहौ तौ भावकरि शुद्ध जैसैं होय तैसैं
अतिशयकरि विशुद्ध निर्मल आत्माकूं भावौ ॥

भावार्थ—जो संसारतैं निवृत्तिकरि मोक्ष चाहोहौ तौ द्रव्यकर्म भाव-
कर्म नौकर्मतैं रहित शुद्ध आत्माकूं भावौ ऐसा उपदेश है ॥ ६० ॥

आगैं कहै है जो आत्माकूं भावै सो याका स्वभावकूं जाणि भावै सो
मोक्ष पावै,—

गाथा—जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तौ ।

सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥६१॥

संस्कृत—यः जीवः भावयन् जीवस्वभावं सुभावसंयुक्तः ।

सः जरामरणविनाशं करोति स्फुटं लभते निर्वाणम् ॥

अर्थ—जो भव्यपुरुष जीवकूं भावता संता भले भावकीर संयुक्त भया जीवका स्वभावकूं जाणि करि भावै सो जरा मरणका विनाशकीर प्रगट निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—जीव ऐसा नाम तौ लोकमें प्रसिद्ध है परन्तु याका स्वभाव कैसा है ऐसा लोककै यथार्थ ज्ञान नाहीं अर मतांतरके दोषतैं याका स्वरूप विपर्यय होय रह्या है तातैं याका यथार्थ स्वरूप जानि भावै हैं ते संसारतैं निवृत्त होय मोक्ष पावै हैं ॥ ६१ ॥

आगैं जीवका स्वरूप सर्वज्ञदेव कह्या है सो कहै है,—

गाथा—जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ ।

सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो ॥६२॥

संस्कृत—जीवः जिनप्रज्ञप्तः ज्ञानस्वभावः च चेतनासहितः ।

सः जीवः ज्ञातव्यः कर्मक्षयकरणनिमित्तः ॥६२॥

अर्थ—जिन सर्वज्ञ देव जीवका स्वरूप ऐसा कह्या है;—जीव है सो चेतनासहित है बहुरि ज्ञानस्वभाव है, ऐसा जीवका भावनां कर्मका क्षयकै निमित्त जाननां ॥

भावार्थ—जीवका चेतनासहित विशेषण कियतैं तौ चार्वाक जीवकूं चेतनासहित न मानै है ताका निराकरण है । बहुरि ज्ञानस्वभाव-विशेषणतैं सांख्यमती ज्ञानकूं प्रधान धर्म मानै है जीवकूं उदासीन नित्य चेतनारूप मानै है ताका निराकरण है, तथा नैयायिकमती गुण गुणीका भेद मानि ज्ञानकूं सदा भिन्न मानै है ताका निराकरण है । बहुरि ऐसा जीवका स्वरूपका भावनां कर्मका क्षयकै निमित्त होय है, अन्य प्रकार भया मिथ्याभाव है ॥ ६२ ॥

आगैं कहै है जो जे पुरुष जीवका अस्तित्व मानै हैं ते सिद्ध होय है;—

गाथा—जेसि जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ ।

ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमतीदा ॥६३॥

संस्कृत—येषां जीवस्वभावः नास्ति अभावः च सर्वथा तत्र ।

ते भवंति भिन्नदेहाः सिद्धाः वचोगोचरातीताः ॥६३॥

अर्थ—जिनि भव्यजीवनिकै जीवनामा पदार्थ सद्भावरूप है अर सर्वथा अभावरूप नाहीं हैं ते भव्यजीव देह तैं भिन्न ऐसे सिद्ध होय हैं, ते कैसे हैं सिद्ध—वचनगोचरतैं अतीत है ॥

भावार्थ—जीव है सो द्रव्यपर्यायस्वरूप है सो कथंचित् अस्तिस्वरूप है कथंचित् नास्तिस्वरूप है तहां पर्याय अनित्य है या जीवकै कर्मके निमित्ततैं मनुष्य तिर्यच देव नारक पर्याय होय हैं ताका कदाचित् अभाव देखि जीवका सर्वथा अभाव मानैं है । ताके संबोधनकूं ऐसा कह्या है—जो जीवका द्रव्यदृष्टिकरि नित्य स्वभाव है, पर्यायका अभाव होतैं सर्वथा अभाव न मानै है सो देहतैं भिन्न होय सिद्ध होय है, ते सिद्ध वचनगोचर नाहीं है, अर जे देहकूं विनसता देखि जीवका सर्वथा नाश मानैं हैं ते मिथ्या दृष्टी हैं, ते सिद्ध कैसे होय न होय ॥ ६३ ॥

आगैं कहै है जो जीवका स्वरूप वचनकै अगोचर है अर अनुभव-गम्य है सो ऐसा है;—

गाथा—अरसमरूपमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसदं^१ ।

आणमालिगग्रहणं जीवमणिदिट्ठसंठाणं ॥६४॥

संस्कृत—अरसमरूपमगंधं अव्यक्तं चेतनागुणं अशब्दम् ।

जानीहि अलिङ्गग्रहणं जीवं अनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥६४॥

१— संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'चेयणागुणसमदं' ऐसा प्राकृत पाठ है जिसका चेतनागुणसमदं " ऐसा संस्कृत है, वचनिका प्रतियोंमें उपरि लिखित पाठ है ।

अर्थ—हे भव्य ! तू जीवका स्वरूप ऐसा जानि-कैसा है अरस कहिये पंच प्रकार खाटो मीठो कडो कषायलो खारो रसकरि रहित है बहुरि कालो पीलो लाल सुनेद हज्यो या प्रकार अरूप कहिये पांच प्रकार रूप करि रहित है; बहुरि दोय प्रकार गंधकरि रहित है बहुरि अव्यक्त कहिये इन्द्रियिनिके गोचरव्यक्त नांही है, बहुरि चेतनागुण है जामैं, बहुरि अशब्द कहिये शब्दकरि रहित है, बहुरि अलिंगग्रहण कहिये जाका कोऊ चिह्न इंद्रियद्वारै ग्रहणमें आता नांही, अर अनिर्दिष्ट संस्थान कहिये चौकूणा गोल आदि कलू आकार जाका कह्या जाता नांही ऐसा जीव जाणौ ॥

भावार्थ—रस रूप गंध शब्द येतौ पुद्गलके गुण हैं तिनिका निषेधरूप जीव कह्या, बहुरि अव्यक्त अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कह्या, सो ये भी पुद्गलके स्वभावकी अपेक्षाकरि निषेधरूपही जीव कह्या, अर चेतनागुण कह्या सो ये जीवका विधिरूप कह्या । सो निषेध अपेक्षा तौ वचनकै अगोचर जाननां अर विधि अपेक्षा स्वसंवेदगोचर जाननां; ऐसैं जीवका स्वरूप जानि अनुभवगोचर करनां । यह गाथा समयसार प्रवचनसार ग्रंथमें भी है सो याका व्याख्यान टीकाकार विशेषकरि कह्या है सो तहांतै जाननां ॥ ६४ ॥

आगैं जीवका स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावनां कह्या सो वह ज्ञानकै प्रकार भावनां सो कहै है;—

गाथा—भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं ।

भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणे होइ ॥६५॥

संस्कृत—भावय पंचप्रकारं ज्ञानं अज्ञाननाशनं शीघ्रम् ।

भावनाभावितसहितः दिवशिवसुखभाजनं भवति ६५

अर्थ—हे भव्यजन ! तू यह ज्ञान पांच प्रकार भाय, कैसा है यह ज्ञान—अज्ञानका नाशकरनेवाला है, कैसा भया भाय भावनाकरि भावित जो भाव तिससहित भाय, बहुते कैसा भया शीघ्र भाय, यातैं तू दिव कहिये स्वर्ग शिव कहिये मोक्ष ताका भाजन होय ॥

भावार्थ—यद्यपि ज्ञान जाननस्वभावकरि एक प्रकार है तौऊ कर्मके क्षयोपशम क्षयकी अपेक्षा पंच प्रकार भया हैं तामैं मिथ्यात्वभावकी अपेक्षाकरि मतिश्रुत अवधि ये तीन मिथ्याज्ञानभी कहाये हैं, तातैं मिथ्या-ज्ञानका अभाव करनेकूं मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञानस्वरूप पंच प्रकार सम्यग्ज्ञान जानि तिनिंकूं भावनां, परमार्थ विचार तैं ज्ञान एकही प्रकार है, यह ज्ञानकी भावना स्वर्गमोक्षकी दाता है ॥ ६५ ॥

आगैं कहै है जो—पढनां सुननांभी भावविना कछू है नांही;—

गाथा—पढिण वि किं कीरइ किं वा सुणिण भावरहिण ।

भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥६६॥

संस्कृत—पठितेनापि किं क्रियते किं वा श्रुतेन भावरहितेन ।

भावः कारणभूतः सागारानगारभूतानाम् ॥६६॥

अर्थ—भावरहित पढनां सुननां तिनिंकरि कहा कीजिये कछूभी कार्यकारी नांही है तातैं श्रावकपणां तथा मुनिपणां इनिका कारणभूत भावही है ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमें एकदेश सर्वदेश व्रतनिकी प्रवृत्तिरूप मुनिश्रावकपणां है सो दोऊका कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनदिक भाव हैं, तहां भावविना व्रतक्रियाकी कथनी कछू कार्यकारि नांही है, तातैं ऐसा उपदेश है जो भावविना पढनां सुननां आदिकरि कहा कीजिये, केवल खेदमात्र है, तातैं भावसहित कछू करो सो सफल है । इहां ऐसा आशय है जो कोऊ जानैगा पढनां सुननांही ज्ञान है सो ऐसैं नांही है, पढ़ि सुनिकरि

आपकूं ज्ञानस्वरूप जानि अनुभव करै तब भाव जानिये है; तातैं बार बार भावनाकरि भाव लगायेही सिद्धि है ॥ ६६ ॥

आगैं कहै है जो—बाह्य नम्रपणांही करि ही सिद्धि होय तौ नम्र तौ सारेही होय हैं;—

गाथा—द्रव्येण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया ।

परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता ॥६७॥

संस्कृत—द्रव्येण सकला नग्नाः नारकतिर्यचश्च सकलसंघाताः ।

परिणामेन अशुद्धाः न भावश्रमणत्वं प्राप्ताः ॥६७॥

अर्थ—द्रव्यकरि बाह्य तौ सकल प्राणी नागा होय हैं नारकी जीव अर तिर्यच जीव तौ निरन्तर वस्त्रादिककरि रहित नागाही रहैं हैं, बहुरि सकलसंघात कहनेतैं अन्य मनुष्य आदिक भी कारण पाय नम्र होय हैं तौऊ परिणामकरि अशुद्ध हैं तातैं भावश्रमणपणांकूं प्राप्त नांही भये ॥

भावार्थ—जो नम्र रहे ही मुनिर्लिङ्ग होय तौ नारकी तिर्यच आदि सकल जीवसमूह नम्र रहैं हैं ते सर्वही मुनि ठहरैं तातैं मुनिपणां तौ भाव शुद्ध भयेही होय है, अशुद्ध भाव होय तेतैं द्रव्यकरि नम्र भी होय तौ भावमुनिपणां न पावै है ॥ ६७ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ करनेकूं केवल नम्रपणां निष्फल दिखावै है;—

गाथा—णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमई ।

णग्गो ण लहइ बोधिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ॥६८॥

संस्कृत—नम्रः प्राप्नोति दुःखं नम्रः संसारसागरे भ्रमति ।

नम्रः न लभते बोधिं जिनभावनावर्जितः सुचिरं ६८

अर्थ—नम्र है सो सदा दुःख पावै है, बहुरि नम्र है सो सदा संसारसमुद्रमें भ्रमै है, बहुरि नम्र है सो बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान

चारित्ररूप स्वानुभव ताहि न पावै है, कैसा है नग्न—जो जिन भावना-
करि वर्जित है सो ॥

भावार्थ—जिनभावना जो सम्यग्दर्शन भावना तिसकरि वर्जित जो
जीव है सो नग्न भी रहै तौ बोधि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप
मोक्षमार्ग ताकूं न पावै है याहीतैं संसारसमुद्रमें भ्रमता संसारहीमें दुःखकूं
पावै है तथा वर्तमानमें भी जो पुरुष नागा होय है सो दुःखहीकूं पावै
है, सुख तौ भावमुनि नागा होय ते ही पावै हैं ॥ ६८ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करनेकूं कहै है जो द्रव्यनग्न होय मुनि
कहावै ताका अपयश होय है;—

गाथा—अयसाण भायणेण य किं ते णग्गेण पावमल्लिणेण ।

पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण ॥६९॥

संस्कृत—अयशसां भाजनेन किं ते नग्नेन पापमलिनेन ।

पैशून्यहासमत्सरमायाबहुलेन श्रमणेन ॥६९॥

अर्थ—हे मुने ! तेरे ऐसे नग्नपणांकरि तथा मुनिपणांकरि कहा
साध्य है, कैसा है—पैशून्य कहिये अन्यका दोष कहनेका स्वभाव,
हास्य कहिये अन्यका हास्य करनां, मत्सर कहिये आपसमानतैं ईर्ष्या
राखि परकूं नीचा पाड़नेकी बुद्धि, माया कहिये कुटिल परिणाम, ये भाव
हैं बहुत प्रचुर जामैं, याहीतैं कैसा है पापकरि मलिन है, याहीतैं कैसा
है अयश कहिये अपकीर्ति तिनिका भाजन है ॥

भावार्थ—पैशून्य आदि पापनिकारि मैला ऐसा नग्नपणांस्वरूप मुनि
पणांकरि कहा साध्य है ? उलटा अपकीर्तिका भाजन होय व्यवहारध-
र्मकी हास्य करावनहार होय है; तारैं भावलिंगी होनां योग्य है—यद्द
उपदेश है ॥ ६९ ॥

आगैं ऐसैं भावलिंगी होनां यह उपदेश करै है;—

गाथा—पयडहिं जिणवरलिंगं अर्णिभतरभावदोषपरिशुद्धो ।

भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियई ॥७०॥

संस्कृत—प्रकटय जितवरलिंगं अभ्यन्तरभावदोषपरिशुद्धः ।

भावमलेन च जीवः बाह्यसंगे मलिनयति ॥७०॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू अभ्यन्तर भावदोषनिकरि अत्यंतशुद्ध ऐसा जिनवरलिंग कहिये बाह्य निर्ग्रन्थलिंग प्रगटकरि, भावशुद्धि विनां द्रव्य-लिंग बिगडि जायगा जासैं भावमलिनकरि जीव है सो बाह्य परिग्रहविषैं मलिन होय है ॥

भावार्थ—जो भाव शुद्धकरि द्रव्यलिंग धारै तौ भ्रष्ट न होय अर भाव मलिन होय तौ बाह्य भी परिग्रहकी संगतिकरि द्रव्यलिंगभी बिगाडै तातैं प्रधानपणैं भावलिंगहीका उपदेश है, विशुद्ध भाव विना बाह्य भेष धारणां योग्य नाहीं ॥ ७० ॥

आगैं कहै है जो भावरहित नग्न मुनि है सो हास्यका स्थान है;—

गाथा—धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लुसमो ।

णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णगुरूवेण ॥७१॥

संस्कृत—धर्मे निप्रवासः दोषावासः च इक्षुपुष्पसमः ।

निष्फलनिर्गुणकारः नटश्रमणः नग्नरूपेण ॥७१॥

अर्थ—धर्म कहिये अपनां स्वभाव तथा दशलक्षणस्वरूप तिसविषैं जाका वास नाहीं सो जीव दोषनिका आवास है अथवा दोष जामें वसैहै सो इक्षुके फूलसमानहै जाकै कछू फल नाहीं अर गंगादिक गुण नाहीं सो ऐसा मुनि तौ नग्नरूपकरि नटश्रमण कहिये नाचनेवाला भांडका स्वांग सारिखा है ॥

भावार्थ—जाकै धर्ममें वासना नांही तातैं क्रोधादिक दोष ही कसै अर दिगंबररूप धारै तौ वह मुनि इक्षुके फूल सारिखा निर्गुण अर निष्फल है ऐसे मुनिकै मोक्षरूप फल न लागै, अर सम्यग्ज्ञानादिक गुण जांमैं नांही तब नग्न भया भांडकासा स्वांग दीखै, सो भी भांड नाचैं तब शृंगारादिक करि नाचैं तौ शोभा पावै, नग्न होय नाचै तब हास्यकू पावै तैसें केवल द्रव्य नागा हास्यका स्थानक है ॥ ७१ ॥

आगैं इसही अर्थका समर्थनरूप कहै है जो—द्रव्यलिंगी बोधि समाधि जैसी जिनमार्गमें कही है तैसी नांही पावै है;—

गाथा—जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिगंथा ।

न लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले ॥७२॥

संस्कृत—ये रागसंगयुक्ताः जिनभावनारहितद्रव्यनिर्ग्रथाः ।

न लभंते ते समाधिं बोधिं जिनशासने विमले ॥७२

अर्थ—जे मुनि राग कहिये अभ्यंतर परद्रव्यसूं प्रीति सोही भया संग कहिये परिग्रह ताकरि युक्त हैं, बहुरि जिनभावना कहिये शुद्धस्वरूपकी भावनाकरि रहित हैं ते द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तौहू निर्मल जिनशासन-विषैं जो समाधि कहिये धर्मशुक्लध्यान अर बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताहि न पावै है ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंगी अभ्यन्तरका राग छोड़ै नांही परमात्माकूं भावै नांही तब कैसें मोक्षमार्ग पावै तथा समाधिमरण कैसें पावै ॥ ७२ ॥

आगैं कहै है जो—पहलै मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़िकरि भावकरि नग्न होय पीछैं द्रव्यमुनि होय यह मार्ग है;—

गाथा—भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं ।

पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए ॥७३॥

संस्कृत—भावेन भवति नम्रः मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा॥

पश्चात् द्रव्येण मुनिः प्रकटयति लिंगं जिनाज्ञया ॥७३॥

अर्थ—पहलै मिथ्यात्व आदि दोषानिक्छोड़ि अर भावकरि अंतरंग नम्र होय एकरूप शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै पीछैं मुनि द्रव्यकरि बाह्य लिंग जिन आज्ञाकरि प्रगट करै यह मार्ग है ॥

भावार्थ—भाव शुद्ध हुवा बिना पहलैं ही दिगंबररूप धारि ले तौ पीछैं भाव विगडै तब भ्रष्ट होय, अर भ्रष्ट होय मुनि भी कहावो करै तौ मार्गकी हास्य करावै तातैं जिन आज्ञा यही है—भाव शुद्ध करि बाह्य मुनिपणां प्रगट करो ॥ ७३ ॥

आगैं कहै है जो—शुद्ध भावही स्वर्गमोक्षका कारण है, मलिनभाव संसारका कारण है;—

गाथा—भावो वि दिव्यसिखसुखभायणे भाववज्जिओ सवणो ।

कम्ममलमलिनचित्तो तिरियालयभायणो पावो ॥७४॥

संस्कृत—भावः अपि दिव्यशिवसौख्यभाजनं भाववर्जितः श्रमणः

कर्ममलमलिनचित्तः तिर्यगालयभाजनं पापः ॥७४॥

अर्थ—भाव है सो ही स्वर्ग मोक्षका कारण है बहुरि भावकरि वर्जित श्रमण है सो पापस्वरूप है तिर्यचगतिका स्थानक है, कैसा है श्रमण—कर्ममलकरि मलिन है चित्त जाका ॥

भावार्थ—भावकरि शुद्ध है सो तौ स्वर्ग मोक्षका पात्र है अर भावकरि मलिन है सो तिर्यचगतिमें निवास करै है ॥ ७४ ॥

आगैं फेरि भावके फलका माहात्म्य कहै है;—

गाथा—खयरामरमण्यकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला ।

चकहररायलच्छी लब्धेह वोही सुभावेण ॥७५॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'लब्धेह वोही ण भव्वणुआ' ऐसा पाठ है ।

संस्कृत—खचरामरमनुजकरांजलिमालामिश्र संस्तुता विपुला ।

चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः सुभावेन ॥७५॥

अर्थ—सुभाव कहिये भले भाव करि मंदकषायरूप विशुद्ध भाव करि चक्रवर्ती आदि राजा तिनकी विपुल कहिये बड़ी लक्ष्मी पावै है, कैसी है—खचर कहिये विद्याधर अमर कहिये देव मनुज कहिये मनुष्य इनकी अंजुलीमाला कहिये हस्तनिकी अंजुली तिनकी पंक्ति करि संस्तुत कहिये नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य है, बहुरि केवल यह लक्ष्मीही नाहीं पावै है बोधि कहिये रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग भी पावै है ॥

भावार्थ—विशुद्ध भावनिका यह माहात्म्य है ॥ ७५ ॥

आगै भावनिका विशेष कहै है;—

गाथा—भावं तिविहययारं सुहासुहं सुद्वमेव गायव्वं ।

असुहं च अट्टरुहं सुह धम्मं जिणवरिदेहिं ॥ ७६ ॥

संस्कृत—भावः त्रिविधप्रकारः शुभोऽशुभः शुद्ध एव ज्ञातव्यः ।

अशुभश्च आर्त्तरौद्रं शुभः धर्म्यं जिनवरेन्द्रैः ॥ ७६ ॥

अर्थ—जिनवरदेव भाव तीनप्रकार कहा है—शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसैं । तहां अशुभ तौ आर्त्तरौद्र ये ध्यान है अर शुभ है सो धर्मध्यान है ॥ ७६ ॥

गाथा—सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च गायव्वं ।

इदिजिणवरैहिं भणियं जं सेयं तं समायरह ॥ ७७ ॥

संस्कृत—शुद्धः शुद्धस्वभावः आत्मा आत्मनि सः च ज्ञातव्यः ।

इति जिनवरैः भणितं यः श्रेयान् तं समाचर ॥ ७७ ॥

अर्थ—बहुरि शुद्ध है सो अपनां शुद्धस्वभाव आपहीमें है ऐसैं जिनवरदेव कहा है सो जाननां तिनमें जो कल्याणरूप होय ताकूं अंगीकार करौ ॥

भावार्थ—भगवान् भाव तीन प्रकार कहा है; शुभ, अशुभ, शुद्ध । तहां अशुभ तौ आर्तौद्र ध्यान हैं सो तौ अतिमलिन हैं त्याज्य ही हैं, बहुरि शुभ है सो धर्मध्यान है सो यह कथंचित् उपादेय है जातैं मंदक-षायरूप विशुद्ध भावकी प्राप्ति है, बहुरि शुद्ध भाव है सो सर्वथा उपादेय है जातैं यह आत्माका स्वरूपही है । ऐसैं हेय उपादेय जानि त्याग ग्रहण करनां तातैं ऐसा कहा है जो कल्याणकारी होय सो अंगीकार करनां यह जिनंदेवका उपदेश है ॥ ७७ ॥

आगैं कहै है जो जिनशासनका ऐसा माहात्म्य है;—

गाथा—पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो ।

पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो ॥ ७८ ॥

संस्कृत—प्रगलितमानकषायः प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्तः ।

आप्नोति त्रिशुवनसारं बोधिं जिनशासने जीवः ॥ ७८ ॥

अर्थ—यह जीव है सो जिनशासनविषैं तीन भुवनमें सार ऐसी बोधि कहिये रत्नभयात्मक मोक्ष मार्ग ताहि पावै है, कैसा भया संता प्रगलितमानकषाय कहिये प्रकर्षकरि गल्या है मान कषाय जाका, काहू परद्रव्यसूं अहंकाररूप गर्व नांही करै है, बहुरि कैसा भया संता प्रगलित कहिये गलियेगया है नष्ट भया है मिथ्यात्वका उदयरूप मोह जाका याहीतैं समचित्त है परद्रव्यविषैं ममकाररूप मिथ्यात्व अर इष्ट अनिष्टबुद्धिरूप रागद्वेष जाकै नांही है ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वभाव अर कषाय भावका स्वरूप अन्य मतविषैं यथार्थ नांही, यह कथनी या वीतरागरूप जिनमतमें ही है; तातैं यह जीव मिथ्यात्व कषायके अभावरूप मोक्षमार्ग तीन भवनमें सार जिनमतका सेवनही तैं पावै है, अन्यत्र नांही ॥

आगै कहै है जो—जिनशासनविषै ऐसा मुनिही तीर्थकर प्रकृति बांधै है;—

गाथा—विसयविरक्तो सवणो छद्सवरकारणाई भाऊण ।

तिथयर नामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण ॥ ७९ ॥

संस्कृत—विषयविरक्तः श्रमणः षोडशवरकारणानि भावयित्वा ।

तीर्थकरनामकर्म बध्नाति अचिरेण कालेन ॥ ७९ ॥

अर्थ—इन्द्रियनिके विषयनिकरि विरक्त है चित्त जाका ऐसा श्रमण कहिये मुनि है सो सोलह कारण भावनाकूं भाय तीर्थकर नाम प्रकृति है ताहि थोरेही कालकरि बांधै है ॥

भावार्थ—यह भावका माहात्म्य है, विषयनितैं विरक्त भाव होय सोलह कारण भावना भावै तौ अचिंत्य है माहात्म्य जाका ऐसी तीन लोककरि पूज्य तीर्थकर नामा प्रकृति बांधै ताकूं भोगि अर मोक्षकूं प्राप्त होय । इहां सोलह कारण भावनाके नाम;—दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शीलव्रतोष्वनतिचार, अभीक्ष्णाज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्वृत्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकपरिहाणि, सन्मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य, ऐसैं सोलह भावना हैं । इनिका स्वरूप तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकातैं जाननां । इनिमें सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न होय अर पंदरह भावनाका व्यवहार होय तौ कार्यकारी नांहीं; अर यह होय तौ पंदरह भावनाका कार्य यही करिले, ऐसैं जाननां ॥

आगै भावकी विशुद्धितानिमित्त आचरण कहै है;—

गाथा—वारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण ।

धरहि मणमत्तदुरियं णाणांकुसएण मुणिपवर ॥८०॥

संस्कृत—द्वादशविधतपश्चरणं त्रयोदश क्रियाः भावय त्रिविधेन ।
धर मनोमत्तदुरितं ज्ञानाङ्गुशेन मुनिप्रवर ! ॥ ८० ॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर ! मुनिनिमै श्रेष्ठ ! तू बारह प्रकार तप चर अर
तेरह प्रकार क्रिया मन वच कायकरि भाय, अर ज्ञानरूप अंकुशकरि
मनरूप माते हाथीकूं धारि अपने वशमें राखि ॥

भावार्थ—यह मनरूप हस्ती मदोन्मत्त बहुत है सो तपश्चरण क्रिया-
दिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतैं वशि होय है तातैं यह उपदेश है जो
तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतैं वशिहोय है और प्रकार
नाही । इहां बारह तपके नामः—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्या,
रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश ये तौ छहप्रकार बाह्यतप हैं;
बहुरि प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ये छह
प्रकार अम्यंतर तप हैं; इनिका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जाननां ।
बहुरि तेरह क्रिया ऐसैं;—पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार ये पांच क्रिया; छह
आवश्यकक्रिया निषिधिकाक्रिया, आसिकाक्रिया । ऐसैं भाव शुद्ध होनेके
कारण कहे ॥ ८० ॥

आगैं द्रव्यभावरूप सामान्यकरि जिनलिंगका स्वरूप कहे हैं;—

गाथा—पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू ।

भावं भाविय पुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥८१॥

संस्कृत—पंचविधचेलत्यागं क्षितिशयनं द्विविधसंयमं भिक्षुः ।

भावं भावयित्वा पूर्वं जिनलिंगं निर्मलं शुद्धम् ॥८१॥

अर्थ—निर्मल शुद्ध जिनलिंग ऐसा है—जहां पंचप्रकार वस्त्रका त्याग
है, बहुरि जहां भूमिविषैं शयन है, बहुरि जहां दोय प्रकार संयम है,
बहुरि जहां भिक्षाभोजन है, बहुरि भावितपूर्व कहिये पहलैं शुद्ध आत्माका

स्वरूप परद्रव्यतै भिन्न सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्रमयी भया वारंवार भावनाकरि अनुभव किया ऐसा जामैं भाव है ऐसा निर्मल कहिये बाह्यमलरहित शुद्ध कहिये अन्तर्मलरहित जिनलिंग है ॥

भावार्थ—इहां लिंग द्रव्य भावकरि दोयप्रकार है तहां द्रव्य तौ बाह्य त्याग अपेक्षा है जामैं पांचप्रकार वस्त्रका त्याग है, ते पंच प्रकार ऐसैं;—अंडज कहिये रसमतैं उपज्या, बोंडुज कहिये कपासतैं उपज्या, रोमज कहिये ऊनतैं उपज्या, वल्कलज कहिये वृक्षकी त्वचा छालितैं उपज्या, चर्मज कहिये मृग आदिककी चर्मतैं उपज्या, ऐसैं पांच प्रकार कहे; तहां ऐसैं नाहीं जाननां जो—इनि सिवाय और वस्त्र ग्राह्य है—ये तौ उपलक्षणमात्र कहे हैं तातैं सर्वही वस्त्रमात्रका त्याग जाननां । बहुरि भूमिविषै सोवनां वैठनां तहां काष्ठ तुण भी गिणि लेनां । बहुरि इंद्रिय मनका वाशि करनां छह कायके जीवनिकी रक्षा करनां ऐसैं दोय प्रकार संयम है । बहुरि भिक्षा भोजन करनां जामैं कृत कारित अनुमोदनाका दोष न लागै—छियालीस दोष टलै, वत्तीस अंतराय टलै ऐसैं यथाविधि आहार करै । ऐसैं तौ बाह्य-लिंग है । बहुरि पूर्वे कथा तैसैं होय सो भावलिंग है । ऐसैं दोय प्रकार शुद्ध जिनलिंग कहा है, अन्य प्रकार श्वेतांबरादिक कहैं हैं सो जिनलिंग नाहीं है ॥ ८१ ॥

आगैं जिनधर्मकी महिमा कहै है;—

गाथा—जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं ।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं ॥८२॥

१—मुद्रांत संस्कृतसटीक प्रतिमें “ भावि भवमहण ” ऐसे दो पद हैं जिनकी संस्कृत “ भावय भवमयनं ” इस प्रकार है ।

संस्कृत—यथा रत्नानां प्रवरं वज्रं यथा तरुणानां गोशीरम् ।

तथा धर्माणां प्रवरं जिनधर्मं भाविभवमथनम् ॥८२॥

अर्थ—जैसैं रत्ननिविषैं प्रवर कहिये श्रेष्ठ उत्तम वज्र कहिये हीरा है बहुरि जैसैं तरुण कहिये बडे वृक्षनिविषैं प्रवर श्रेष्ठ उत्तम गोसीर कहिये बावन चन्दन है तैसैं धर्मनिविषैं उत्तम श्रेष्ठ जिनधर्म है, कैसा है जिन-धर्म—भाविभवमथन कहिये आगामी संसारका मथन करनेवाला है यातैं मोक्ष होय है ॥

भावार्थ—धर्म ऐसा सामान्य नाम तौ लोकमें प्रसिद्ध है अर लोक अनेक प्रकारकरि क्रियाकांडादिकनैं धर्म जानि सेवै है, तहां परीक्षा किये मोक्षकी प्राप्ति करनेवाला जिनधर्मही है अन्य सर्व संसारके कारण हैं ते क्रियाकांडादिक संसारहीमें राखैं हैं, कदाचित् संसारके भोगकी प्राप्ति करै हैं तौ ऊ फेरि भोगनिमें लीन होय तब एकेन्द्रियादि पर्याय पावै तथा नर-ककू पावै है ऐसैं अन्यधर्म नाममात्र हैं तातैं उत्तम जिनधर्म जाननां ८२

आगैं शिष्य पूछै है जो—जिनधर्म उत्तम कया सो धर्मका कहा स्वरूप है ? ताका स्वरूप कहै है जो धर्म ऐसा है;—

गाथा—पूयादिसु वयसहियं पुण्यं हि जिणेहिं सासणे भणियं ।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥८३॥

संस्कृत—पूजादिषु व्रतसहितं पुण्यं हि जिनैः शासने भणितम् ।

मोहक्षोभविहीनः परिणामः आत्मनः धर्मः ॥८३॥

अर्थ—जिनशासनविषैं जिनेंद्रदेव ऐसैं कया है जो पूजा आदिककै विषैं अर व्रतसहित होय सो तौ पुण्य है बहुरि मोहके क्षोभकरि रहित जो आत्माका परिणाम सो धर्म है ॥

भावार्थ—लौकिक जन तथा अन्यमतां केई कहैं हैं जो—पूजा आदिक शुभक्रिया तिनिविषैं अर व्रतक्रियासहित है सो जिनधर्म है सो

ऐसे नांही है । जिनमतमें जिनभगवान ऐसे कहा है जो पूजादिकविषे
 अर व्रतसहित होय सो तौ पुण्य है, तहां पूजा अर आदि शब्द करि
 भक्ति वंदना वैयावृत्य आदिक लेनां यह तौ देव गुरु शास्त्रकै अर्थ
 होय है बहुरि उपवास आदिक व्रत हैं सो शुभक्रियाहैं इनमें आत्माका
 रागसहित शुभपरिणाम है ताकरि पुण्यकर्म निपजैहैं तातैं इनिकुं पुण्य
 कहे हैं, याका फल स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति है । बहुरि मोहका क्षोभ
 रहित आत्माके परिणाम लेणें, तहां मिथ्यात्व तौ अतत्त्वार्थभ्रद्धानहै, बहुरि
 क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्सा ये छह तौ द्वेषप्रकृति हैं बहुरि माया
 लोभ हास्य रति पुरुष स्त्री नपुंसक ये तीन विकार ऐसैं सात प्रकृति
 रागरूप हैं इनिके निमित्ततैं आत्माका ज्ञानदर्शनस्वभाव विकारसहित
 क्षोभरूप चलाचल व्याकुल होय है यातैं इनिका विकारनिर्तैं रहित होय
 तब शुद्ध दर्शनज्ञानरूप निश्चय होय सो आत्माका धर्म है; इस धर्मतैं
 आत्माकै आगामी कर्मका तौ आश्रय रुकि संवर होय है अर पूर्वे बंधे
 कर्म तिनिकी निर्जरा होय है, संपूर्ण निर्जरा होय तब मोक्ष होय है;
 तथा एकदेश मोहके क्षोभकी हानि होय है तातैं शुभपरिणामकुं भी
 उपचार करि धर्म कहिये हैं, अर जे केवल शुभपरिणामहीकुं धर्म मानि
 संतुष्टहैं तिनिकै धर्मकी प्राप्ति नांही है, यह जिनमतका उपदेश है ॥८३॥

आगैं कहै है जो—पुण्यहीकुं धर्म जाणि श्रद्धे है तिनिकै केवल
 भोगका निमित्त है कर्मक्षयका निमित्त नांही;—

गाथा—सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि च तह पुणो वि फासेदि ।
 पुणं भोगनिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥८४॥

संस्कृत—श्रद्धाति च प्रत्येति च रोचते च तथा पुनरपि स्पृशति ।
 पुण्यं भोगनिमित्तं न हि तत् कर्मक्षयनिमित्तम् ॥८४॥

अर्थ—जे पुरुष पुण्यकृं धर्म जाणि श्रद्धान करै हैं बहुरि प्रतीति करै हैं बहुरि सचि करै है बहुरि स्पर्शें हैं तिनिकै पुण्य भोगका निमित्त है यातैं स्वर्गादिक भोग पावै हैं, बहुरि सो पुण्य कर्मका क्षयका निमित्त न होय है, यह प्रगट जानो ॥

भावार्थ—शुभक्रियारूप पुण्यकृं धर्म जाणि याका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै है ताकै पुण्यकर्मका बंध होय है ताकरि स्वर्गादिके भोगकी प्राप्ति होय है, अरु ताकरि कर्मका क्षयरूप संवर निर्जरा मोक्ष न होय ॥ ८४ ॥

आगैं कहै है जो आत्माका स्वभावरूप धर्म हैं सो ही मोक्षका कारण है ऐसा नियम है;—

गाथा—अप्या अप्यस्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो ।
संसारतरणहेदू धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्धिदं ॥८५॥

संस्कृत—आत्मा आत्मनि रतः रागादिषु सकलदोषपरित्यक्तः ।
संसारतरणहेतुः धर्म इति जिनैः निर्दिष्टम् ॥८५॥

अर्थ—जो आत्मा आत्माहीविषै रत होय, कैसा भया रत होय—
रागादिक समस्त दोषनिकरि रहित भया संता ऐसा धर्म जिनेश्वरदेवनैं संसारसमुद्रतैं तिरणैका कारण कहा है ॥

भावार्थ—जो पूर्वे कथाया मोहके क्षोभकरि रहित आत्माका परिणाम है सो धर्म है सो ऐसा धर्मही संसारतैं पारकरि मोक्षका कारण भगवान कहा है, यह नियम है ॥ ८५ ॥

आगैं याही अर्थके दृढ करनेकूं कहै हैं जो—आत्माकूं इष्ट नांही करै है अरु समस्त पुण्यकृं आचरण करै है तौज सिद्धिकूं न पावै है;—

गाथा—अह पुणु अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं ।

तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥८६

संस्कृत—अथ पुनः आत्मानं नेच्छति पुण्यानि करोति

निरवशेषानि ।

तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ८६

अर्थ—अथवा जो पुरुष आत्माकूं नाहीं इष्ट करै है ताका स्वरूप न जानै है अंगीकार नाहीं करै है अर सर्व प्रकार समस्त पुण्यकूं करै है तौज सिद्धि कहिये मोक्ष ताहि नहीं पावै है बहुरि वह पुरुष संसारहीमें तिष्ठया रहै है ॥

भावार्थ—आत्मिकधर्म धान्यां विना सर्वप्रकार पुण्यका आचरण करै तौज मोक्ष न होय संसारहीमें रहै है, कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावै तौ तहां भोगनिमें आसक्त होय वसै, तहांतैं चय ऐकेंद्रियादिक होय संसारहीमें भ्रमै है ॥ ८६ ॥

आगै इस कारणकरि आत्माहीका श्रद्धान करौ प्रयत्नकरि जाणौ मोक्ष पावौ ऐसा उपदेश करै है;—

गाथा—एएण कारणेण य तं अप्पा सदहेह तिविहेण ।

जेण य लभेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥८७॥

संस्कृत—एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धात् त्रिविधेन ।

येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ ८७ ॥

अर्थ—दूवें कझाया जो आत्माका धर्म तौ मोक्ष है तिसही कारण कहै है जो—हे भव्यजीव हों ! तुम तिस आत्माकूं प्रयत्नकरि सर्वप्रकार उद्यमकरि यथार्थ जानो, बहुरि तिस आत्माकूं श्रद्धा, प्रतीतिकरो, आचरो, मन वचन कायकरि ऐसैं करो जाकरि मोक्ष पावो ॥

भावार्थ—जाके जानें श्रद्धान करे मोक्ष होय ताहीका जानना श्रद्धना मोक्षप्राप्ति करै है तातैं आत्माका जानना सर्वप्रकार उद्यमकरि करनां याहीतैं मोक्षकी प्राप्ति होय है, तातैं भव्यजीवनिक्कूं यही उपदेश है ॥८७॥

आगैं कहै है बाह्यहिंसादिक किया बिनाही अशुद्धभावतैं तंदुलमत्स्य-तुल्य जीवभी सातवैं नरक गया तब अन्य बडे जीवनिकी कहा कथा ?

गाथा—मच्छो वि शालिसिक्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं ।

इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं ॥ ८८ ॥

संस्कृत—मत्स्यः अपि शालिसिक्थः अशुद्धभावः गतः महा-

नरकम् ।

इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय जिनभावनां नित्यम् ॥८८

अर्थ—हे भव्यजीव ! तू देखि शालिसिक्थ कहिये तंदुलनामा मत्स्य है सो भी अशुद्धभावस्वरूप भया संता महानरक कहिये सातवैं नरक गया इस हेतुतैं तोक्कूं उपदेश करै है जो अपने आत्माक्कूं जाननेक्कूं निरंतर जिनभावना भाय ॥

भावार्थ—अशुद्धभावके माहात्म्यकरि तंदुल मत्स्य अल्पजीवभी सातवैं नरक गया तौ अन्य बडाजीव क्यों नरक न जाय तातैं भाव शुद्ध करनेका उपदेश है । अर भाव शुद्ध भये अपनां परका स्वरूप जाननां होय है, अर अपनां परका स्वरूपका ज्ञान जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरन्तर भाये होय है; तातैं जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरंतर करनां योग्य है ।

तंदुल मत्स्यकी कथा ऐसै है—काकंदीपुरीका राजा सूरसेन था सो मांसभक्षी भया अतिलोलुपी निरन्तर मांस भक्षणका अभिप्राय राखै ताकै पितृप्रियनामा रसोईदार सो अनेक जीवनिका मांस निरन्तर भक्षण

करावै ताकूं सर्प डस्या सो मरि करि स्वयंभूरमणसमुद्रमैं महामत्स्य भया
 अर राजा सूरसेनभी मरि वहांही वा महामत्स्यके कानमैं तंदुल मत्स्य
 भया, तहां महामत्स्यके मुखमैं अनेकजीव आवै अर निकासि जाय तब
 तंदुल मत्स्य तिनिंकूं देखि करि विचारै जो ये महामत्स्य निर्भागी है जो
 मुखमैं आये जीवनिंकूं भखै नांही है, मेरा शरीर जो एता बड़ा होता
 तौ या समुद्रके सर्व जीवनिंकूं भखता; ऐसे भावानेके पापतैं जीवनिंकूं
 भखे बिनाही सातवैं नरक गया अर महामत्स्य तौ भखणेंवाला था सो
 तौ नरक जायही जाय, यातैं अशुद्धभावसहित बाह्य पाप करनां तौ
 नरकका कारणहै ही परन्तु बाह्य हिंसादिक पापके किये बिना केवल
 अशुद्धभावही तिस समान है, तातैं भावमैं अशुभ ध्यान छोड़ि शुभध्यान
 करनां योग्य है । इहां ऐसा भी जाननां जो पहलैं राज पायाथा सो
 पूर्वें पुण्य किया था ताका फलथा पीछैं कुभाव भये तब नरक गया
 यातैं आत्मज्ञान बिना केवल पुण्यही मोक्षका साधन नांही है ॥ ८८ ॥

आगैं कहै है जो भावरहितनिका बाह्य परिग्रहका त्यागादिक सर्व
 निष्प्रयोजन है;—

गाथा—बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो ।

सयलो णाणज्झयणो गिरत्थओ भावरहियाणं ॥८९॥

संस्कृत—बाह्यसंगत्यागः गिरिसरिदरीकंदरादौ आवासः ।

सकलं ध्यानाध्ययनं निरर्थकं भावरहितान्मया ॥८९॥

अर्थ—जे पुरुष भावकरि रहित हैं शुद्ध आत्माकी भावनारहितहैं
 अर बाह्य आचरणकरि सन्तुष्टहैं तिनिका बाह्य परिग्रहका त्यागहै सो
 निरर्थकहै, बहुरि गिरि कहिये पर्वत दरी कहिये पर्वतकी गुफा सरि
 कहिये नदीकैं निकट कंदर कहिये पर्वतका जलकरि विदनया स्थानक

इत्यादिकविषै आवास कहिये बसनां निरर्थक है, बहुरि ध्यान करनां औसंनकरि मनकूं थांभनां अध्ययन कहिये पढ़ना ये सब निरर्थक है ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाका फल आत्मज्ञानसहित होय तौ सफल होय नांतरि सर्व निरर्थक है, पुण्यका फल होय तौऊ संसारकाही कारण है मोक्षफले नांही ॥ ८९ ॥

आगै उपदेश करै है जो—भावशुद्धकै अर्थ इन्द्रियादिक वशि करौ भावशुद्धविनां बाह्य भेषका आडंबर मति करौ;—

गाथा—भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणमकडं पयत्तेण ।

मा जणरंजणकरणं वाहिरवयवेस तं कुणसु ॥९०॥

संस्कृत—भंग्धि इन्द्रियसेनां भंग्धि मनोमर्कटं प्रयत्नेन ।

मा जनरंजनकरणं बहिर्व्रतवेष ! त्वंकार्षीः ॥९०॥

अर्थ—हे मुने ! तू इन्द्रियकी सेना है ताहि भंजनकरि विषयनिमै रंभावैमति; बहुरि मनरूप बंदर है ताहि प्रयत्नकरि बड़ा उद्यमकरि भंजनकरि बंशीभूतकरि, बहुरि बाह्यव्रतका भेष लोकका रंजन करनेवाला मति धारण करै ।

भावार्थ—बाह्य मुनिका भेष लोकका रंजन करनेवाला है तातैं यह उपदेश है, लोकरंजनतैं कछू परमार्थ सिद्धि नांही तातैं इन्द्रिय मनके वश करनेकूं बाह्य यत्न करै तौ श्रेष्ठ है अर इन्द्रिय मन वशि किये बिना केवल लोकरंजनमात्र भेष धारनेमै कछू परमार्थसिद्धि है नांही ॥९०॥

आगै फेरि उपदेश करै है;—

गाथा—णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए ।

चेइयपवयणगुरुणं करेहिं भत्तिं जिणाणाए ॥९१॥

संस्कृत—नवणोकषायवर्गं मिथ्यात्वं त्यज भावशुद्ध्या ।

चैत्यप्रवचनगुरुणां कुरु भक्तिं जिनाज्ञया ॥९१॥

अर्थ—हे मुने ! तू नव जे हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा
स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद ये नोकषायवर्ग बहुरि मिथ्यात्व इनिक्छोडि,
बहुरि जिनआज्ञाकरि चैत्य प्रवचन गुरु इनिक्छोडि भक्ति करि ॥ ९१ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—तित्थयरभासियत्यं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।

भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं ॥ ९२ ॥

संस्कृत—तीर्थकरभाषितार्थं गणधरदेवैः प्रथितं सम्यक् ।

भावय अनुदिनं अतुलं विशुद्धभावेन श्रुतज्ञानम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू तीर्थकर भगवाननै कहा अर गणधर देवनिनै
गूथ्या शास्त्ररूप रचना करि ऐसा श्रुतज्ञान है ताहि सम्यक् प्रकार भाव-
शुद्धिकरि निरन्तर भाय, कैसा है श्रुतज्ञान—अतुल है या बराबर अन्य-
मतका भाष्या श्रुतज्ञान नांही है ॥ ९२ ॥

ऐसैं किये कहा होय है ? सो कहै है;—

गाथा—पीऊण पाणसलिलं पिम्महतिसडाहसोसउम्मुका ।

हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ९३ ॥

संस्कृत—प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मथ्यतृषादाहशोषोन्मुक्ता ।

भवन्ति शिवालयवासिनः त्रिशुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥ ९३ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध किये ज्ञानरूप जलकुं पीय करि
सिद्ध होय है, कैसैं हैं सिद्ध—निर्मथ्य कहिये मथ्या न जाय ऐसा तृषा
दाह शोष ताकरि रहित हैं ऐसे सिद्ध होय हैं ज्ञानरूप जलपियेका ये
फल है, बहुरि कैसे हैं सिद्ध—शिवालय कहिये मुक्तिरूप महल ताके
चसनेवाले हैं लोकके शिखरपरि जिसका वास है, याहीतैं कैसे हैं—

१—एक वचनिका प्रतिमें 'पीऊण' ऐसा पाठ है जिसका संस्कृत 'पीत्वा' है अर्थात् 'पी कर' ।

तीन भवनके चूडामणि हैं मुकुटमणि हैं तथा तीन भवनमें ऐसा सुख नांही ऐसा परमानंद अविनाशी सुख नांही, ऐसा परमानंद अविनाशी सुखकं भोगवैं हैं, ऐसे तीन भवनके मुकुटमणि हैं ॥

भाषार्थ—शुद्ध भाव किये ज्ञानरूप जल पिये तृष्णा दाह शोष मिटै है तातैं ऐसैं कहा है जो परमानंदरूप सिद्ध होय है ॥ ९३ ॥

आगैं भावशुद्धिकैं अर्थ फेरि उपदेश करै है;—

गाथा—दस दस दोसुपरीसह सहदि मुणी सयलकाल काएण ।

सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमुत्तूण ॥ ९४ ॥

संस्कृत—दश दश द्वाँ सुपरीषहान् सहस्र मुने ! सकलकालं कायेन ।

सूत्रेण अप्रमत्तः संयमघातं प्रमुच्य ॥ ९४ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू दश दश दोय कहिये बाईस जे सुपरीषह कहिये अतिशयकरि सहनेयोग्य ऐसे परीषह तिनिक्कू सूत्रेण कहिये जैसैं जिनवचनमें कहै तिसरीतिकारि निःप्रमादी भया संता संयमका घात निवारिकारि अर तेरे कायकरि सदा काळ निरंतर सहि ॥

भाषार्थ—जैसैं संयम न बिगडै अर प्रमादका निवारण होय तैसैं निरन्तर मुनि क्षुधा तृषा आदिक बाईस परीषह सहै । इनिका सहनेका प्रयोजन सूत्रमें ऐसा कहा है जो—इनिके सहनैतैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संयमके मार्गतैं छूटनां न होय परिणाम दृढ़ होय है ॥ ९४ ॥

आगैं कहै है जो—परीषह सहनेमें दृढ़ होय तौ उपसर्ग आयें भी दृढ़ रहै चिगैं नांही, ताका दृष्टान्त कहै है;—

गाथा—जहपत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुकएण ।

तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीषहेहिंतो ॥ ९५ ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'तह साहू ण बिभिज्जइ' ऐसा पाठ है ।

संस्कृत—यथा प्रस्तरः न भिद्यते परिस्थितः दीर्घकालमुदकेन ।
तथा साधुरपि न भिद्यते उपसर्गपरीषहेभ्यः ॥९५॥

अर्थ—जैसे पापाण है सो जलकरि बहुतकाल तिष्ठया भी भेदकू प्राप्त न होय है तैसें साधु है सो उपसर्ग परीषहनिकरि नांही भिदै है ॥

भावार्थ—पाषाण ऐसा कठिन है जो जलमें बहुतकाल रहै तौऊ तामें जल प्रवेश न करै तैसें साधुके परिणाम ऐसे दृढ होय है जो उपसर्ग परीषह आये संयमके परिणामतैं च्युत न होय हैं, अरू पूर्व कह्या जो संयमका घात जैसे न होय तैसें परीषह सहै जो कदाचित् संयमका घात होता जानै तौ जैसे घात न होय तैसें करै ॥ ९५ ॥

आगैं परीषह आये भाव शुद्ध रहै ऐसा उपाय कहै है;—

माथा—भावाहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि ।
भावरहिण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥९६॥

संस्कृत—भावय अनुप्रेक्षाः अपराः पंचविंशतिभावनाः भावय ।
भावरहितेन किं पुनः बाह्यलिंगेन कर्त्तव्यम् ॥९६॥

अर्थ—हे मुने ! तू अनुप्रेक्षा कहिये अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं तिनिहिं भाय, बहुरि अपर कहिये और पांच महाव्रतनिकी पचीस भावना कही हैं तिनिहिं भाय, भावरहित जो बाह्य लिंग है ताकरि कहा कर्त्तव्य है ? कछू भी नांही ॥

भावार्थ—कष्ट आये बारह अनुप्रेक्षा चितवन करने योग्य हैं, तिनिके नाम—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म इनिका अरू पचीस भावनाका भावना बड़ा उपाय है । इनिका बारंबारचितवन किये कष्टमें परिणाम बिगडै नांही, तातैं यह उपदेश है ॥ ९६ ॥

आगै फेरि भावशुद्ध रखनेकूं ज्ञानका अभ्यास करै है;—

गाथा—सर्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं ।

जीवसमासाईं मुणी चउदसगुणठाणणामाईं ॥ ९७ ॥

संस्कृत—सर्वविरतः अपि भावय नव पदार्थान् सप्त तत्त्वानि ।

जीवसमासान् मुने ! चतुर्दशगुणस्थाननामानि ॥ ९७ ॥

अर्थ—हे मुने तू सर्व परिग्रहादिकतै विरक्त भया है महाव्रतनिकरि सहित है तौउ भावविशुद्धिकै अर्थ नवपदार्थ सप्त तत्व चउदह जीव-समास चउदह गुणस्थान इनिके नाम लक्षण भेद इत्यादिकनिकी भावना करि ॥

भावार्थ—पदार्थनिका स्वरूपका चितवन करनां भावशुद्धिका बडा उपाय है तातै यह उपदेश है । इनिका नाम स्वरूप अन्यग्रंथनितै जाननां ॥ ९७ ॥

आगै भावशुद्धिकै अर्थ अन्य उपाय कहै है;—

गाथा—णवविहवंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण ।

मेहुणसण्णासत्तो भमिओसि भवण्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

संस्कृत—नवविधब्रह्मचर्यं प्रकट्य अब्रह्म दशविधं प्रमुच्य ।

मैथुनसंज्ञासक्तः भ्रमितोऽसि भवार्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू नव प्रकार ब्रह्मचर्य है ताहि प्रगटकरि भाव-निमै प्रत्यक्ष करि, पूर्वे कहाकरि—दशप्रकार अब्रह्म है ताहि छोड़िकरि, ये उपदेश काहेतै दिया जातै तू मैथुनसंज्ञा जो कामसवन की अभि-लाषा ताविषै आसक्त भया अशुद्ध भावकरि इस भीम भयानक संसार-रूप समुद्रविषै अम्या ॥

भावार्थ—यह प्राणी मैथुनसंज्ञाविषै आसक्त भया गृहस्थपणां आदिक अनेक उपायकरि स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावकरि अशुभ कार्यनिमै प्रवर्तै है ताकरि इस भयानक संसारसमुद्रविषै भ्रमै है तातैं यह उपदेश है जो दशप्रकार अब्रह्मकूं छोडि नव प्रकार ब्रह्मचर्यकूं अंगीकार करौ। तहां दशविध अब्रह्म तौ ऐसैं—प्रथम तौ स्त्रीका चितवन होय १ पीछैं देखनेकी चिंता होय २ पीछैं निश्वास डारै ३ पीछैं ज्वर उपजै ४ पीछैं दाह उपजै ५ पीछैं कामकी रुचि उपजै ६ पीछैं मूर्च्छा होय ७ पीछैं उन्माद उपजै ८ पीछैं जीवनेका संदेह उपजै ९ पीछैं मरण होय १० ऐसैं दश प्रकार अब्रह्म है। बहुरि नवविध ब्रह्मचर्य ऐसैं—नवकारणनिता ब्रह्मचर्य बिगडे है तिनिकै नाम—स्त्री सेवनेका अभिलाष १ स्त्रीका अंगका स्पर्शन २ पुष्ट रसका सेवन ३ स्त्रीकरि संसक्त वस्तुका सेवन शय्या आदिक ४ स्त्रीका मुख नेत्र आदिकानिका देखनां ५ स्त्रीका सत्कार पुरस्कार करनां ६ पहलैं स्त्रीका सेवन किया ताकी यादि करनां ८ आगामी स्त्रीसेवनका अभिलाष करनां ८ मनवांछित इष्ट विषयनिका सेवनां ९ ऐसैं नव प्रकार हैं तिनिका वर्जनां सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य हें। अथवा मन वचन काय कृतकारित अनुमोदना करि ब्रह्मचर्य पालनां ऐसैं भी नव प्रकार कहिये है। ऐसैं करनां सो भी भाव शुद्ध होनेका उपाय है ॥ ९८ ॥

आगैं कहै है जो भावसहित मुनि है सो आराधनाका चतुष्पत्कूं पावै है, भावविना सो भी संसारमें भ्रमै है;—

गाथा—भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च ।

भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

संस्कृत—भावसहितश्च मुनीनः प्राप्नोति आराधनाचतुष्कं च ।

भावरहितश्च मुनिवर ! भ्रमति चिरं दीर्घसंसारे ॥९९॥

अर्थ—हे मुनिवर ! जो भावसहित है सो दर्शन ज्ञान चारित्र तप ऐसा आराधनका चतुष्पक्कं पावै है सो मुनिनिमै प्रधान है, बहुरि, जो भावरहित मुनि है सो बहुतकाल दीर्घसंसारमें भ्रमै है ॥

भावार्थ—निश्चय सम्यक्त्वका शुद्ध आत्माका अनुभूतिरूप श्रद्धान है सो ही भाव है ऐसे भावसहित होय ताकै च्यार आराधना होय हैं ताका फल अरहंत सिद्ध पद है बहुरि ऐसे भावकरि रहित होय ताकै आराधना न होय ताका फल संसारका भ्रमण है, ऐसा जाणि भाव शुद्ध करनां यह उपदेश है ॥ ९९ ॥

आगैं भावहीके फलका विशेष कहै है;—

गाथा—पावंति भावसवणा कल्याणपरंपराइं सोक्खाइं ।

दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ॥१००॥

संस्कृत—प्राप्नुवंति भावश्रमणाः कल्याणपरंपराः सौख्यानि ।

दुःखानि द्रव्यश्रमणाः नरतिर्यकुदेवयोनौ ॥१००॥

अर्थ—जे भावश्रमण है भावमुनि है ते कल्याणकी परंपरा जाँमैं ऐसे सुखनिकूँ पावै हैं बहुरि जे द्रव्य श्रमण हैं ते तिर्यच मनुष्य कुदेव योनिविषै दुःखनिकूँ पावै है ॥

भावार्थ—भावमुनि सम्यग्दर्शनसहित हैं ते तौ सोलै कारण भावनां भाय गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण पंच कल्याण तिनिसहित तीर्यकर पद पाय मोक्ष पावै हैं, बहुरि जे सम्यग्दर्शनरहित द्रव्यमुनि हैं ते तिर्यच मनुष्य कुदेव योनि पावै हैं । यह भावके विशेषतैं फलका विशेष है ॥ १०० ॥

आगैं कहै है जो अशुद्ध भावकरि अशुद्धही आहार किया यातैं दुर्गतिही पाई;—

गाथा—छायासदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण ।

पत्तोसि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ॥ १०१ ॥

संस्कृत—षट्चत्वारिंशदोषदूषितमशनं ग्रसितं अशुद्धभावेन ।

प्राप्तः असि महाव्यसनं तिर्यग्गतौ अनात्मवशः ॥ १०१ ॥

अर्थ—हे मुने ! तैं अशुद्ध भावकरि छियालीस दोषनिकरि दूषित अशुद्ध अशन कहिये आहार ग्रस्या खाया ताकारण करि तिर्यग्गतिविषै पराधीन भया संता महान बडा व्यसन काहेये कष्ट ताकुं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—मुनि आहार करै सो छियालीस दोषरहित शुद्ध करै है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मलदोषरहित करै है, सो जो मुनि होयकरि सदोष आहार करै तौ जानिये याके भावभी शुद्ध नांही ताकुं यह उपदेश है जो हे मुने ! तैं दोषसहित अशुद्ध आहार किया तातैं तिर्यच गतिमें पूर्वै भ्रम्या कष्ट सहा तातैं भाव शुद्ध करि शुद्ध आहार करि, ज्यो फेरि नांही भ्रमै । छियालीस दोषनिमें सोलह तौ उद्गम दोष हैं ते आहारके उपजनेके हैं ते श्रावक आश्रित हैं, बहुरि सोलह उत्पादन दोष हैं ते मुनिके आश्रय हैं, बहुरि दश दोष एषणांके हैं ते आहारके आश्रित है; बहुरि च्यार प्रमाणादिक है । इनिका नाम तथा स्वरूप मूलाचार आचारसारग्रंथतैं जाननां ॥ १०१ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—सच्चित्तभक्तपाणं गिद्धी दप्पेणऽर्धां पभुत्तुणं ।

पत्तोसि तिब्बदुक्खं अणाइकालेण तं चित्तं ॥ १०२ ॥

१-मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'पभुत्तुण' इसको संस्कृत 'प्रभुक्त्वा' की है ।

२-मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'चित्त' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'चित्त' अर्थात् 'हे चित्त' ऐसा संबोधनपद किया है ।

संस्कृत—सचित्तभक्तपानं गृह्यथा दर्पेण अधीः प्रशुज्य ।

प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं अनादिकालेन त्वं चिन्तय १०२

अर्थ—हे जीव ! तू दुर्बुद्धी अज्ञानी भया संता अतिचार करि तथा अतिगर्व उद्धतपणांकरि सचित्त भोजन तथा पान जीवनिमहित आहार पानी लेकरि अनादिकालतैं लगाय तीव्र दुःखकूं पाया ताहि चिंतयनकरि विचारि ॥

भावार्थ—मुनिंकुं उपदेश करै है जो—अनादिकालतैं लगाय जेतैं अज्ञानी रह्या जीवका स्वरूप न जान्यां तेतैं सचित्त जीवनि सहित आहार पानी करता संता संसारमैं तीव्र नरकादिकका दुःख पाया अब मुनि होय करि भाव शुद्धकरि सचित्त आहार पानी मति करै नांतरि फेरि पूर्ववत् दुःख भोगवैगा ॥ १०२ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—कंदं मूलं वीयं पुष्पं पत्रादि किंचि सच्चित्तं ।

असिउण माणगव्वं भमिओसि अणंतसंसारे ॥१०३॥

संस्कृत—कंदं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि किंचित् सच्चित्तम् ।

अशित्वा मानगर्वे भ्रमितः असि अनंतसंसारे ॥१०३॥

अर्थ—कंद कहिये जमीकंद आदिक, बीज कहिये बीज चणा आदि अनादिक, मूल कहिये आदो मूला गाजर आदिक, पुष्प कहिये फूल, पत्र कहिये नागरवेल आदिक, इनिंकुं आदि लेकरि जो कछु सचित्त वस्तु ताहि मानकरि गर्वकरि भक्षण करी; ताकरि हे जीव ! तू अनंत-संसारविषैं भ्रम्या ॥

भावार्थ—कन्दमूलादिक सचित्त अनंतजीवनिकी काय है तथा अन्य वनस्पति बीजादिक सचित्त हैं तिनिंकुं भक्षण किया । तहां प्रथम तौ

मान करि जो हम तपस्वी हैं हमारै घरबार नांही बनके पुष्प फलादिक खाय करि तपस्या करै हैं ऐसैं मिथ्यादृष्टी तपस्वी होय मानकरि खाये तथा गर्वकरि उद्धत होय दोष गिन्यां नांही स्वच्छंद होय सर्व भक्षी भया । ऐसैं इनि कंदादिककूं खाय यही जीव संसारमें भ्रम्या अब मुनि होय इनिका भक्षण मति करै, ऐसा उपदेश है । अर अन्यमतके तपस्वी कंदमूलादिक फल फूल खाय आपकूं महंत मानैहैं तिनिका निषेध है ॥ १०३ ॥

आगैं विनय आदिका उपदेश करै है तहां प्रथमही विनयका वर्णन है;—

गाथा—विणयं पंचपयारं पालहि मणवयणकायजोएण ।

अविणयणरा सुविहियं ततो मुक्तिं न पावन्ति ॥१०४॥

संस्कृत—विनयः पंचप्रकारं पालय मनोवचनकाययोगेन ।

अविनतनराः सुविहितां ततो मुक्तिं न प्राप्नुवन्ति ॥१०४

अर्थ—हे मुने ! जा कारणतैं अविनयवान नर हैं ते भले प्रकार विहित जो मुक्ति ताहि न पावै है अभ्युदय तीर्थकरादिसहित मुक्ति न पावै है तातैं हम उपदेश करै हैं जो हस्त जोडनां पगां पडनां आएतैं उठनां सामां जानां अनुकूल वचन कहनां यह पंचप्रकार विनय अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र तप अर इनिका धारक पुरुष इनिका विनय करनां ऐसैं पंचप्रकार विनयकूं तू मन वचन काय तीनूं योगनिकरि पालि ॥

भावार्थ—विनयविना मुक्ति नांही तातैं विनयका उपदेश है; विनयमें बडे गुण हैं ज्ञानाकी प्राप्ति होय है मानकषायका नाश होय है शिष्टाचारका पालनां है कलहका निवारण है इत्यादि विनयके गुण जाननें; तातैं सम्यग्दर्शनादिकरि जे महान हैं तिनिका विनय करनां यह

उपदेश है, अर जे विनय विना जिनमार्गतेँ अष्ट भये वस्त्रादिकसहित जे मोक्षमार्ग माननेँ लगे तिनिका निषेध है ॥ १०४ ॥

आगैँ भक्तिरूप वैयावृत्त्यका उपदेश करै है;—

गाथा—णियसत्तिण महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि ।

तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्यं ॥१०५॥

संस्कृत—निजशक्त्या महायशः ! भक्तिरागेण नित्यकाले ।

त्वं कुरु जिनभक्तिपरं वैयावृत्त्यं दशविकल्पम् ॥१०५॥

अर्थ— हे महायश ! हे मुने ! भक्तिका रागकरि तिस वैयावृत्त्यकूं सदाकाल अपनी शक्तिकरि तू करि, कैसैँ—जिनभक्तिविषैँ तत्पर होय तैसैँ, कैसा है वैयावृत्त्य—दशविकल्प है दशभेदरूप है; वैयावृत्त्य नाम परके दुःख कष्ट आये टहल ब्रंदगी करनेका है, ताके दशभेद—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वि, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ ये दशभेद मुनिके हैं तिनिका कीजिये हं तातैं दशभेद कहै हैं ॥ १०५ ॥

आगैँ अपने दोषकूं गुरु पासि कहनां ऐसी गहाका उपदेश करै है;—

गाथा—जं किंचिकयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेण ।

तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥१०६॥

संस्कृत—यः कश्चित् कृतः दोषः मनोवचःकार्यैः अशुभभावेन ।

तं गर्ह गुरुसकाशे गारवं मायां च मुत्त्वा ॥१०६॥

अर्थ— हे मुने ! जो कछु मन वचन कायकरि अशुभ भावनिहैँ प्रतिज्ञाँ दोष लग्या होय ताकूं गुरु पासि अपनां गौरव कहिये अपनां महंतपणां गर्व छोडिकरि बडुरि माया कहिये कपट छोडि करि मन वचन काय सरल करि गहाकरि वचन प्रकासि ॥

भावार्थ—आपकूं कोई दोष लाग्या होय अर निष्कपट होय गुरूकूं कहै तौ वह दोष निवृत्त होय, अर आप शल्यवान रहै तौ मुनिपदमैं यह बड़ा दोष है, तातैं अपनां दोष छिपावनां नांही, जैसा होय तैसा सरलबुद्धितैं गुरुनिपासि कहनां तब दोष मिटै, यह उपदेश है । कालके निमित्ततैं मुनिपदतैं भ्रष्ट भये पीछैं गुरुनिवासि प्रायश्चित्त न लिया तब विपरीत होय संप्रदाय न्यारा बांध्या, ऐसैं विपर्यय भयो ॥ १०६ ॥

आगैं क्षमाका उपदेश करै है;—

गाथा—दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठरकडुयं सहंति सप्पुरिसा ।

कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सबणा ॥१०७॥

संस्कृत—दुर्जनवचनचपेटां निष्ठुरकदुकं सहन्ते सत्पुरुषाः ।

कर्ममलनाशनार्थं भावेन च निर्ममाः श्रमणाः ॥१०७॥

अर्थ—सत्पुरुष मुनि हैं ते दुर्जनके वचनरूप चपेट जो निष्ठुर कहिये कठोर दयारहित अर कटुक कहिये सुनतेही कानानिकूं कड़ा सूल समान लागै ऐसी चपेट है ताहि सहैं हैं, ते कौन अर्थ सहैं हैं—कर्मनिके नाश होनेके अर्थ पूर्वैं अशुभकर्म बांध्या था ताके निमित्ततैं दुर्जननैं कटुक वचन कह्या आप सुन्यां ताकूं उपशम परिणामतैं आप सहै तब अशुभकर्म उदय दो (इ) खिरि गया ऐसैं कटुकवचन सहै कर्मका नाश होय है, बहुरि ते मुनि सत्पुरुष कैसे हैं अपने भावकरि वचनादिककरि निर्ममत्व हैं वचनतैं तथा मान कषायतैं अर देहादिकतैं ममत्व नांही है, ममत्व होय तौ दुर्वचन सह्या न जाय, यह न जानै जो ये मोकूं दुर्वचन कह्या, तातैं ममत्वके अभावतैं दुर्वचन सहै है । तातैं मुनि होय करि काहूतैं क्रोध न करनां यह उपदेश है । लौकिकमैं भी जे बड़े पुरुष हैं ते दुर्वचन सुनिकै क्रोध न करैं हैं तब मुनिकूं तौ सहनां उचितही है, जे क्रोध करैं हैं ते कहबेके तपस्वी हैं, सांचे तपस्वी नांही ॥ १०७ ॥

आगैं क्षमाका फल कहै है;—

गाथा—पावं खवइ असेसं खमाय पडिमंडिओ य मुणिपवरो ।

खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ ॥१०८॥

संस्कृत—पापं क्षिपति अशेषं क्षमया परिमंडितः च मुनिप्रवरः ।

खेचरामरनराणां प्रशंसनीयः ध्रुवं भवति ॥१०८॥

अर्थ—जो मुनिप्रवर मुनिनमैं श्रेष्ठ प्रधान क्रोधके अभावरूप क्षमा करि मंडित है सो मुनि समस्त पापकूं क्षय करै है, बहुरि विद्याधर देव मनुष्यनिकरि प्रशंसा करनेयोग्य निश्चयकरि होय है ॥

भावार्थ—क्षमा गुण बड़ा प्रधान है तातैं सर्वकैं स्तुति करनेयोग्य पुरुष होय, जे मुनि हैं तिनिकैं उत्तमक्षमा होय है ते तौ सर्व मनुष्य देव विद्याधरनिकैं स्तुतियोग्य होयही होय अर तिनिकैं सर्व पापका क्षय होयही होय, तातैं क्षमा करनां योग्य है ऐसा उपदेश है । क्रोधी सर्वकैं निंदनैं योग्य होय हैं तातैं क्रोधका छोडनां श्रेष्ठ हैं ॥ १०८ ॥

आगैं ऐसैं क्षमागुण जानि क्षमा करनां क्रोध छोडनां ऐसैं कहै है;—

गाथा—इय णारुण खमागुण खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं ।

चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेइ ॥१०९॥

संस्कृत—इति ज्ञात्वा क्षमागुण ! क्षमस्व त्रिविधेन सकलजीवान् ।

चिरसंचितक्रोधशिखिनं वरक्षमासलिलेन सिंच १०९

अर्थ—हे क्षमागुण मुने ! क्षमा है गुण जाकैं ऐसा मुनिका संबोधन है, इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार क्षमागुणकूं जाणि अर सकलजीवनिपरि मन वचन कायकरि क्षमाकरि, बहुरि बहुत काल करि संचय किया जो क्रोधरूप अग्नि ताहि क्षमारूप जलकरि सींचे, बुझाय ॥

भावार्थ—क्रोधरूप अग्निहै सो पुरुषमैं भले गुण हैं तिनिकूं दग्ध करनेवाला है अर परजीवनिका घात करनेवाला है तातैं याकूं क्षमारूप

जलकरि बुझावनां, अन्य प्रकार यह बुझै नाहीं, अर क्षमा गुण सर्व गुणनिमै प्रधान है । तातैं यह उपदेश है जो क्रोधकूं छोड़ि क्षमा ग्रहण करनां ॥ १०९ ॥

आगैं दीक्षाकालादिककी भावनाका उपदेश करै है,—

गाथा—दीक्षाकालाईयं भावहि अविचारदंसणविशुद्धो ।

उत्तमबोधिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण ॥११०॥

संस्कृत—दीक्षाकालादिकं भावय अविकारदर्शनविशुद्धः ।

उत्तमबोधिनिमित्तं असारसाराणि ज्ञात्वा ॥११०॥

अर्थ—हे मुने ! तू दीक्षाकाल आदिककी भावना करि, कैसा भया संताः—अविकार कहिये अतीचाररहित जो निर्मल सम्यग्दर्शन ताकरि सहित भया संता, पूर्वे कहाकरि संसारकूं असार जाणिकरि, काहेकै अर्थ—उत्तमबोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रकी प्राप्तिकै निमित्त ॥

भावार्थ—दीक्षा लेहै तब संसार भोगकूं असार जाणि अत्यंत वैराग्य उपजै है तैसेही ताकै आदिशब्दतैं रोगोत्पत्ति मरणकालादिक जाननां तिनिकालनिमै जैसे भाव होय तैसेही संसारकूं असार जाणि विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित भया संता उत्तमबोधि जो जामैं केवलज्ञान उपजै है ताकै अर्थ दीक्षाकालादिककी निरन्तर भावनाकरणी, ऐसा उपदेश है । ११०

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'दीक्षाकालाईयं' इसकी संस्कृत 'दीक्षाकालादीयं' की है ।

२—मुद्रितसंस्कृत प्रतिमें 'अविचार दंसणविशुद्धो' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत 'हे अविचार ! दर्शनविशुद्धः' इस प्रकार है ।

३—संस्कृत टीकामें 'असारसाराणि' का अर्थ 'सार और असारको जान कर' ऐसा किया है ।

आगै भावलिंग शुद्धकारि द्रव्यलिंग सेवनेका उपदेश करै है,—

गाथा—सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो ।

बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥१११॥

संस्कृत—सेवस्व चतुर्विधलिंगं अभ्यंतरलिंगशुद्धिमापन्नः ।

बाह्यलिंगमकार्यं भवति स्फुटं भावरहितानाम् ॥१११॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू अभ्यंतरलिंगकी शुद्धि कहिये शुद्धताकूं प्राप्त भया संता च्यार प्रकार बाह्यलिंग है ताहि सेवन करि जातैं जे भावरहित हैं तिनिकै प्रगटपणैं बाह्यलिंग अकार्य है, कार्यकारी नाहीं है ॥

भावार्थ—जे भावकी शुद्धताकरि रहित हैं अपनी आत्माका यथार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण जिनकै नाहीं तिनिकै बाह्यलिंग कछु कार्यकारी नाहीं है, कारण पाय तत्काल विगडे है, तातैं थह उपदेश है—पहलैं भावकी शुद्धताकरि द्रव्यलिंग धारणां । सो यह द्रव्यलिंग च्यारि प्रकार कइया, ताकी सूचना ऐसी जो—मस्तकका, डाढ़ीका, मूँछका, केशांका तौ लौच करनां तीन चिह्न तौ ये अर चौथा नीचले केश राखनां, अथवा वस्त्रका त्याग, केशनिका लौच करनां, शरीरका स्नानादिककरि संस्कार न करनां, प्रतिलेखन मयूरपिच्छका राखनां, ऐसैंभी च्यार प्रकार बाह्यलिंग कइया है । ऐसैं सर्व बाह्य वस्त्रादिककरि रहित नग्न रहनां, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धिविना हास्यका ठिकाना है अर कछु उत्तम फलभी नाहीं है ॥ १११ ॥

आगै कहै है जो—भाव विगडनेके कारण च्यार संज्ञा हैं तिनिकरि संसार भ्रमण होय है, यह दिखावै है;—

गाथा—आहारभयपरिगहमेहुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं ।

भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥११२॥

संस्कृत—आहारभयपरिग्रहमैथुनसंज्ञामिः मोहितः असि त्वम् ।

अमितः संसारवने अनादिकालं अनात्मवशः ॥११२॥

अर्थ—हे मुने ! तू आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि संज्ञा तिनि-
करि मोहित भया अनादिकालतैं लगाय पराधीन भया संता संसाररूप
वनमें भ्रम्या ॥

भावार्थ—संज्ञा नाम बांछाका चेत रहनेका है सो आहारकी दिशि
भयकी दिशि मैथुनकी दिशि परिग्रहकी दिशि प्राणीकै निरंतर चेत रहै
है, यह जन्मान्तरमें चली जाय है जन्म लेतेही तत्काल उघडै है, याहीके
निमित्ततैं कर्मनिका बंध करि संसारवनमें भ्रमैं है, तातैं मुनिनिक्कू यह
उपदेश है जो अब इनि संज्ञानिका अभाव करौ ॥ ११२ ॥

आगैं कहै है जो बाह्य उत्तरगुणकी प्रवृत्तिभी भाव शुद्ध करि
करणी;—

गाथा—बाहिरसयणत्तावणतरूमूलाईणि उत्तरगुणाणि ।

पालहि भावविसुद्धो पूजालाभं' ण ईहंतो ॥ ११३ ॥

संस्कृत—बहिःशयनातापनतरूमूलादीन् उत्तरगुणान् ।

पालय भावविशुद्धः पूजालाभं न ईहमानः ॥११३॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू भावकरि विशुद्ध भया संता पूजालाभादिकक्कू
न चाहता संता बाह्य शयन आतापन वृक्षमूलयोग धारनां इत्यादिक उत्त-
रगुण हैं तिनिक्कू पालि ॥

भावार्थ—शीतकालमें बाह्य चौडै सोवनां बैठनां, ग्रीष्मकालमें पर्वतके
शिखर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरनां, वर्षाकालमें वृक्षकै मूल योग
धरनां जहां वृंद वृक्षपरि पडै पीछैं भेली होय शरीरपरि पडै तहां किछू

१—संस्कृत मुद्रिक प्रतिमें “नईहंतो” ऐसा एक पद किया है जिसकी संस्कृत
‘अनीहमानः’ ऐसी की है ।

प्रासुकका भी संकल्प अर बाधा बहुत इनिकू आदि लेकरि ये उत्तरगुण हैं तिनिका पालनां भी भाव शुद्धकरि करनां । भावशुद्धि बिना करै तौ तत्काल बिगडै अर फल किछू नाहीं तातैं भाव शुद्ध करि करनेका उपदेश है । ऐसा तौ न जाननां जो इनिका बाह्य करनां निषेधै है, ये भी करनें अर भाव शुद्ध करनां यह आशय है । अर केवल पूजाला-भादिकै अर्थ अपनीं महंतता दिखावनेंके अर्थ करै तौ कछू फललाभकी प्राप्ति नाहीं है ॥ ११३ ॥

आगैं तत्त्वकी भावना करनेंका उपदेश करै है;—

गाथा—भावहि पढमं तच्चं विदियं तदियं चउत्थ पंचमयं ।

तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं ॥११४॥

संस्कृत—भावय प्रथमं तत्त्वं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं पंचमकम् ।

त्रिकरणशुद्धः आत्मानं अनादिनिधनं त्रिवर्गहरम् ११४

अर्थ—हे मुने ! तू प्रथमतत्त्व जो जीवतत्त्व ताकू भाय, बहुरि द्वितीयतत्त्व जो अजीवतत्त्व ताकू भाय, बहुरि तृतीयतत्त्व जो आस्रवतत्त्व ताकू भाय, बहुरि चतुर्थतत्त्व जो बंधतत्त्व ताकू भाय, बहुरि पंचमतत्त्व जो संवरतत्त्व ताकू भाय, बहुरि त्रिकरण कहिये मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि शुद्ध भया संता आत्माकू भाय, कैसा है आत्मा आनादिनिधन है, बहुरि कैसा है त्रिवर्ग कहिये धर्म अर्थ काम इनिका हरनेवाला है ॥

भावार्थ—प्रथम जीवतत्त्वकी भावना तौ सामान्य जीव दर्शन ज्ञान-मयी चेतना स्वरूप है ताकी भावना करनीं पीछैं ऐसा मैं हूं ऐसैं आत्मतत्त्वकी भावना करनीं, बहुरि दूसरा अजीवतत्त्व है सो सामान्य अचेतन जड है सो पांचभेदरूप पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल है

इनिक् विचारणें पाँछै भावना करनीं जो ये मैं नांही हूं, बहुरि तीसरा आत्मवतत्त्व है सो जीव पुद्गलके संयोगजनित भाव हैं तिनमें अनादि-कर्मसंबंधतैं जीवके भाव तौ रागद्वेष मोह हैं अर अजीव पुद्गलके भाव-कर्मका उदयरूप मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ये द्रव्य आत्मव हैं तिनिकी भावना करनीं जो ये मेरै होय हैं मेरै रागद्वेषमोह भाव हैं तिनिकरि कर्मका बंध होय है तिनितैं संसार होय है तांतैं तिनिका कर्ता न होनां, बहुरि चौथा बंधतत्त्व है सो मैं रागद्वेषमोहरूप परिणमूं हूं सो तौ मेरा चेतनाका विभाव है इनितैं बंधै हैं ते पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होय बंधै है ते स्वभाव प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप चार प्रकार होय बंधै हैं ते मेरे विभाव तथा पुद्गलकर्म सर्व हेय हैं संसारके कारण हैं मोक्कू रागद्वेष मोहरूप न होनां ऐसैं भावना करनीं, बहुरि पांचवा तत्व संवर है सो रागद्वेषमोहरूप जीवके विभाव हैं तिनिका न होनां अर दर्शन ज्ञानरूप चेतनाभाव थिर होनां यह संवर है सो अपना भाव है अर याही करि पुद्गल कर्मजनित भ्रमण मिटै है । ऐसैं इनि पांच तत्त्वनिकी भावना करनेमें आत्मतत्त्वकी भावना प्रधान है ताकरि कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है, आत्मा भाव शुद्ध अनुक्रमतैं होनां यह तौ निर्जरातत्व भया अर सर्व कर्मका अभाव होनां यह मोक्षतत्त्व भया । ऐसैं सात तत्त्वकी भावना करनीं । याहीतैं आत्मतत्त्वका विशेषण किया जो आत्मतत्त्व कैसा है—धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गका अभाव करै है यांकी भावनातैं त्रिवर्गतैं न्यारा चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है सो होय है । बहुरि यह आत्मा ज्ञानदर्शनमयीचेतनास्वरूप अनादिनिधन है जाका आदि भी नांही अर निधन कहिये नाश भी नांही । बहुरि भावना नाम बार बार अभ्यास करनां चितवन करनेका है सो मन करि वचनकरि कायकरि आप करना तथा परकू करावनां करतेकू भला

जानना, ऐसैं त्रिकरण शुद्ध करि भावना करनी । माया मिथ्या निदान शस्य न राखणी, ख्याति लाभ पूजाका आशय न राखनां ऐसैं तत्वकी भावना करनेतैं भाव शुद्ध होय हैं । याका उदाहरण ऐसा जो—स्त्री आदि इंद्रियगोचर होय तब ताकै विषैं तत्व विचारनां जो ये स्त्री है सो कहा है ? जीवनामक तत्वकी एक पर्याय है अर याका शरीर है सो पुद्गलतत्वकी पर्याय है अर यह हावभाव चेष्टा करै है सो या जीवकै तौ विकार भया है सो आत्मवतत्व है अर बाह्य चेष्टा पुद्गलकी है, या विकारतैं या स्त्रीकी आत्मकै कर्मका बंध होय है, यह विकार याकै न होय तौ आत्मव बंध याकै न होय । बहुरि कदाचित् मैं भी याकूं देखि विकाररूप परिणमूं तौ भेरै भी आत्मव बंध होय तातैं मोकूं विकाररूप न होनां यह संवर तत्व है बनैं तौ कछु उपदेश करि याका विकार भेटूं ऐसैं तत्वकी भावनातैं अपना भाव अशुद्ध न होय तातैं जो दृष्टि-गोचर पदार्थ आवै ताविषैं ऐसैं तत्वकी भावनां राखणीं यह तत्वकी भावनाका उपदेश है ॥ ११४ ॥

आगैं कहै है—ऐसैं तत्वका भावना जेतैं नाहीं तेतैं मोक्ष नाहीं,—
गाथा—जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चितेइ चितणीयाइ ।

ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं ॥११५॥
संस्कृत—यावन्न भावयति तत्त्वं यावन्न चितयति चितनीयानि ।

तावन्न प्राप्नोति जीवः जरामरणविवर्जितं स्थानम् ११५
अर्थ—हे मुने ! जेतैं यह जीव आदि तत्वनिष्कूं नाहीं भावै है, बहुरि चितवन करनें योग्यकूं नाहीं चितै है तेतैं जरा अर मरणकरि रहित जो स्थान मोक्ष ताहि नाहीं पावै है ॥

भावार्थ—तत्वकी भावना तौ पूर्वैं कही सो चितवन करनें योग्य धर्म शुक्लध्यानका विषयभूत सो ध्येय वस्तु अपनां शुद्ध दर्शनमयी

चेतनाभाव अरु ऐसाही अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप ताका चित्तवनां जेतैं या आत्माकै नांही तेतैं संसारतैं निवृत्त होनां नांही, तातैं तत्वकी भावना अरु शुद्धस्वरूपका ध्यानका उपाय निरन्तर राखणां यह उप-देश है ॥ ११५ ॥

आगैं कहै है जो—पाप पुण्यका अरु बंध मोक्षका कारण परिणाम ही है,—

गाथा—पावं हवद् असेसं पुण्यमसेसं च हवद् परिणामा ।

परिणामादो बंधो मुखो जिणसासणे दिट्ठो ॥११६॥

संस्कृत—पापं भवति अशेषं पुण्यमशेषं च भवति परिणामात् ।

परिणामाद्बंधः मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥ ११६ ॥

अर्थ—पाप पुण्य बंध मोक्षका कारण परिणामही कहा तहां जीवके मिथ्यात्व विषय कषाय अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होय तिनितैं तौ पापास्रवका बंध होय है, बहुतर परमेष्ठीकी भक्ति जीवनिक्की दया इत्यादिक मंदकषाय शुभलेश्यारूप परिणाम होय तातैं पुण्यास्रवका बंध होय है, अरु शुद्ध परिणाम रहित विभावरूप परिणामतैं बंध होय है । तहां शुद्ध भावकैं सन्मुख रहनां ताके अनुकूल शुभ परिणाम राखनें अशुभ परिणाम सर्वथा भेटनां, यह उपदेश है ॥ ११६ ॥

आगैं पुण्य पापका बंध जैसे भावनिक्करि होय तिनिकूं कहै है, तहां प्रथमही पापबंधके परिणाम कहै है;—

गाथा—मिच्छत्त तह कसायाऽसंजमजोगेहिं असुहलेसहिं ।

बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्महो जीवो ॥११७॥

संस्कृत—मिथ्यात्वं तथा कषायासंयमयोगैः अशुभलेश्यैः ।

बध्नाति अशुभं कर्म जिनवचनपराड्युखः जीवः ११७

अर्थ—मिथ्यात्व तथा कषाय अर असंयम अर योग ते कैसे, अशुभ है लेइया जिनमें ऐसे भावनि करि तौ यह जाँव अशुभ कर्मकूं बांधै है, कैसा जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है—जिनवचनतैं पराडमुख है सो पाप बांधै है ॥

भावार्थ—मिथ्यात्व भाव तौ तत्त्वार्थका श्रद्धानरहित परिणाम है, बहुति कषाय क्रोधादिक हैं, अर असंयम परद्रव्यके ग्रहणरूप है त्याग-रूप भाव नांही, ऐसे इंद्रियनिके विषयनितैं प्रीति जीवनिकी विराधना-सहित भाव है, योग मनवचनकायके निमित्ततैं आत्मप्रदेशका चलना है । ये भाव हैं ते जब तीव्रकषायसहित कृष्णनील कापोत अशुभ लेइयारूप होय तब या जीवकै पापकर्मका बंध होय है । तहां पापबंध करनेवाला जीव कैसा है—ताकै जिनवचनकी श्रद्धा नांही, इस विशेषणका आशय यह जो अन्य मतके श्रद्धानीकैं जो कदाचित् शुभलेइयाके निमित्ततैं पुण्यकामी बंध होय तौ ताकूं पापहीमें गिणिये, अर जो जिन आज्ञामैं प्रवर्तैं है ताकै कदाचित् पापमी बंधै तौ वह पुण्यजीवनिकी ही पंक्तिमें गिणिये है, मिथ्यादृष्टीकूं पापजीवनमें गिण्या है सम्यग्दृष्टीकूं पुण्यजीवनमें गिण्या है । ऐसैं पापबंधके कारण कहे ॥ ११७ ॥

आगैं यातैं उलटा जीव है सो पुण्य बांधै है, ऐसैं कहै है;—

गाथा—तत्त्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिभावणो ।

दुविहपयारं बंधइ संश्लेषेणैव वज्जरियं ॥११८॥

संस्कृत—तद्विपरीतः बध्नाति शुभकर्म भावशुद्धिमापन्नः ।

द्विविधप्रकारं बध्नाति संश्लेषेणैव कथितम् ॥११८॥

अर्थ—तिस पूर्वोक्त जिनवचनका श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टी जीव है सो शुभकर्मकूं बांधै है कैसा है जीव भावनिकी जो

विशुद्धि ताकूं प्राप्त है । ऐसैं दोऊ प्रकार दोऊ शुभाशुभ कर्म बांधै है यह संक्षेपकरि जिन कहा ॥

भावार्थ—पूर्वें कहा जिनवचनतैं पराब्युक्त मिथ्यात्वसहित जीव तिसतैं विपरीत कहिये जिन आज्ञाका श्रद्धानी सम्यग्दृष्टा जीव है सो विशुद्धभावकूं प्राप्त भया शुभकर्मकूं बांधै है जातैं याके सम्यक्त्वके माहात्म्यकरि ऐसे उज्ज्वल भाव हैं ताकरि मिथ्यात्वकी लार बंध होती पापप्रकृतितिनिका अभाव है, कदाचित् किंचित् कोई पापप्रकृति बंधै है तिनिका अनुभाग मंद होय है कष्ट तीव्र पापफलका दाता नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टी शुभकर्महीका बांधनेवाला है । ऐसैं शुभ अशुभ कर्मके बंधका संक्षेपकरि विधान सर्वज्ञदेवनैं कहा है सो जाननां ॥ ११९ ॥

आगैं कहै है जो—हे मुने ! तू ऐसी भावनाकरि;—

गाथा—ज्ञानावरणादीहिं य अदृहिं कम्मेहिं बेढिओ य अहं ।

डहिऊण इण्ह पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ११९

संस्कृत—ज्ञानावरणादिभिः च अष्टभिः कर्मभिः वेष्टितश्च अहं ।

दग्ध्वा इदानीं प्रकटयामि अनंतज्ञानादिगुणचेतनां ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू ऐसी भावनाकरि जो मैं ज्ञानवरणकूं आदि लेकर आठ कर्म हैं तिनितैं बेढयाहूं यातैं इनिकूं भस्मकरि अनंतज्ञानादि गुण निजस्वरूप चेतनाकूं प्रगट करूं ॥

भावार्थ—आपकूं कर्मनिकरि बेढया मानैं अर तिनिकरि अनंत-ज्ञानादि गुण आच्छादे मानैं तब तनि कर्मनेका नाश करनां विचारै, तातैं कर्मनिका बंधकी अर तिनिका अभावकी भावना करनेका उपदेश है, अर कर्मनिका अभाव शुद्धस्वरूपके ध्यावनेतैं होय है सो करनेका उपदेश है । कर्म आठ हैं ते ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये तौ घातिया कर्म हैं; इनिकी प्रकृति सैतालीस हैं, तिनिकैं केवलज्ञाना-

वरणतैं तौ अनंतज्ञान आच्छादित है, अर केवलदर्शनावरणतैं अनंत-दर्शन आच्छादित है, अर मोहनीयतैं अनंतसुख प्रगट न होय है अर अंतरायतैं अनंतवीर्य प्रगट न होय है सो इनिका नाश करनां । बहुरि च्यारि अवाति कर्म हैं तिनितैं अव्याबाध अगुरुलघु सूक्ष्मता अवगाहना ये गुण प्रगट न होय हैं, इनि अघातिकर्मनिकां प्रकृति एकसौ एक है । तिनि घातिकर्मनिका नाश भये अघातिकर्मनिका स्वयमेव अभाव होय है, ऐसैं जाननां ॥ ११९ ॥

आगैं इनि कर्मनिका नाश होनेकूं अनेक प्रकार उपदेश है ताकूं संक्षेपकरि कहै है;—

गाथा—शीलसहस्सद्वारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं ।

भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा ॥ १२०

संस्कृत—शीलसहस्राष्टादश चतुरशीतिगुणगणानां लक्षाणि ।

भावय अनुदिनं निखिलं असत्प्रलापेन किं बहुना १२०

अर्थ—शील तौ अठारह हजार भेदरूप है बहुरि उत्तरगुण चौरासी लाख हैं तहां आचार्य कहै है जो—हे मुने ! बहुत झूठे प्रलापरूप निरर्थक वचनकरि कहा ? इनि शीलनिकूं अर उत्तरगुणनिकूं सर्वकूं तू निरन्तर भाय, इनिकी भावना चितवन अभ्यास निरन्तर राखि, इनिकी प्राप्ति होय तैसैं करि ॥

भावार्थ—आत्मा जीवनामा वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है, संक्षेप-करि याकी दोय परिणति हैं, एक स्वाभाविक एक विभावरूप । तामैं स्वाभाविक तौ शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है; अर विभावपरिणाम कर्मके निमित्ततैं हैं, ते प्रधानकरि तौ मोहकर्मके निमित्ततैं भये संक्षेप-करि मिथ्यात्व रागद्वेष हैं तिनिके विस्तारकरि अनेक भेद हैं । बहुरि अन्यकर्मके उदयकरि विभाव होय हैं तिनिनै पौरुष प्रधान नाही तातैं

उपदेश अपेक्षा ते गौण हैं । ऐसैं ये शील अर उत्तरगुण स्वभाव विभाव परिणतिके भेदतैं भेदरूपकरि कहे हैं, तहां शीलकी तौ दोय प्रकार प्ररूपणा है—एकतौ स्वद्रव्य परद्रव्यके विभाग अपेक्षा है अर स्त्रीके संसर्गकी अपेक्षा है । तहां परद्रव्यका संसर्ग मन वचन काय करि होय अर कृत कारित अनुमोदनाकरि होय सो न करणां, इनिकूं परस्पर गुणें नव भेद होय । बहुरि आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञा हैं इनिकरि परद्रव्यका संसर्ग होय हैं ताका न होनां यातैं नवभेदनिक् च्यार संज्ञानितैं गुणें छत्तीस होय । बहुरि पांच इंद्रियनिके निमित्ततैं विषयनिका संसर्ग होय है तिनिकी प्रवृत्तिका अभावरूप पांच इंद्रियनिकरि छत्तीसक् गुणें एकसौ अस्सी होय हैं । बहुरि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक साधारण ये तौ ऐकेंद्रिय अर द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसैं दशभेदरूप जीवनिका संसर्ग इनिकी हिंसारूप प्रवर्त्तनतैं परिणाम विभावरूप होय हैं सो न करणां, ऐसैं एकसौ अस्सी भेदनिक् दशकरि गुणें अठ्ठासैं होय । बहुरि क्रोधादिक कषाय अर असंयम परिणामतैं परद्रव्यसंबंधी विभावपरिणाम होय हैं तिनिके अभावरूप दश लक्षण धर्म हैं तिनितैं गुणें अठारह हजार होय हैं । ऐसैं परद्रव्यके संसर्गरूप कुशीलके अभावरूप शीलके अठारह हजार भेद हैं इनिके पाछे परम ब्रह्मचर्य होय हैं, ब्रह्म कहिये आत्मा ताविषैं प्रवर्त्तनां, रमनां ताक् ब्रह्मचर्य कहिये है ।

बहुरि स्त्रीके संसर्गकी अपेक्षा ऐसैं है,—स्त्री दोय प्रकार, तहाँ अचेतन स्त्री तौ काष्ठ पाषाण लेप कहिये चित्राम ये तान मन अर काय इनि दोयकरि संसर्ग होय, इहां वचन नांही तातैं दोयकरि गुणों छह होय । बहुरि कृतकारित अनुमोदनाकरि गुणें अठारह होय । बहुरि पांच इंद्रियनिकरि गुणें निवै होय । बहुरि द्रव्य भावकरि गुणें एक

सौ अस्सी होय । बहुरि क्रोध मान माया लोभ इनि च्यार कषायनिकरि गुणें सातसैबीस होय । बहुरि चेतन स्त्रीं देवीं मनुष्यणीं तिर्यचणीं ऐसैं तीन, सो इनि तीननिनैं मन वचन कायकरि गुणें नव होय । तिनिकूं कृत कारित अनुमोदनाकरि गुणें सत्ताईस होय । तिनिकूं पांच इन्द्रिय-निनैं गुणें एकसौ पैंतीस होय तिनिकूं द्रव्य अर भाव इनि दोयकरि गुणें दोयसै सत्तरि होय । तिनिकूं च्यार संज्ञातैं गुणें एक हजार अस्सी होय । इनिकूं अनंतानुबधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इनि सोलह कषायनिनैं गुणें सतराहजार दोयसै अस्सी होय है । ऐसैं अचेतनस्त्रीके सातसैबीस मिलाये अठारह हजार होय हैं, ऐसैं स्त्रीके संसर्गतैं विकार परिणाम होय ते कुशील हैं इनिका अभावरूप परिणाम ते शील हैं याकूं भी ब्रह्मचर्यसंज्ञा है ॥

बहुरि चौरासी लाख उत्तरगुण ऐसैं है जो आत्माके विभाव परिणामनिके बाह्यकारणनिकी अपेक्षा भेद होय है, तिनिके अभावरूप ये गुणनिके भेद हैं, तिनि विभावनिका संक्षेपकरि भेदनिकी गणना ऐसैं;—
हिंसा १ अनृत २ स्तेय ३ मैथुन ४ परिग्रह ५ क्रोध ६ मान ७ माया ८ लोभ ९ भय १० जुगुप्सा ११ अरति १२ शोक १३ मनोदुष्टत्व १४ वचनदुष्टत्व १५ कायदुष्टत्व १६ मिथ्यात्व १७ प्रमाद १८ पैशून्य १९ अज्ञान २० इन्द्रियनिका अनुग्रह २१ ऐसैं इकईस दोष है, तिनिकूं अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार भनाचार इनि व्यारनिनैं गुणें चौरासी होय हैं । बहुरि पृथ्वी अप तेज वायु प्रत्येक साधारण ये तौ थावर एकेन्द्रिय जीव छह अर विकल तीन पंचेंद्रिय एक ऐसैं जीवनीका दश भेद तिनिका परस्पर आरंभतैं धात होत परस्पर गुणें सौ (१००) होय इनितैं चौरासीकूं गुणें चौरासी सौ होय है । बहुरि तिनिकूं दश शील विराधनातैं गुणें चौरासी हजार होय, तिनि दशके नाम—स्त्रीसंसर्ग १ पुष्टसंभोजन २

गंधमाल्यका ग्रहण ३ शयनासन सुंदरका ग्रहण ४ भूषणका मंडन ५ गीतवादित्रका प्रसंग ६ धनका संप्रयोजन ७ कुशीलका संसर्ग ८ राज-सेवा ९ रात्रिसंचरण १० ये दश शील विराधना हैं। बहुरि तिनिकुं आलोचनाके दश दोष हैं जो गुरुनि पासि लगे दोषनिकी आलोचना करै सो सरल होय न करै कछु शल्य राखै ताको दश भेद किये हैं तिनितैं गुणें आठ लाख चालीस हजार होय है। बहुरि आलोचनाकुं आदि देय प्रायश्चित्तके भेद है तिनितैं गुणें चौरासीलाख होय है। सो सर्व दोषनिके भेद है इनिका अभावतैं गुण है इनिका भावना राखै चितवन अभ्यास राखै इनिका संपूर्ण प्राप्ति होनेका उपाय राखै, ऐसैं, इनिकी भावनाका उपदेश है। आचार्य कहै है जो बारबार बहुत वचनके प्रलाप करितौ कछु साध्य नाहीं जो कछु आत्माके भावकी प्रवृत्तिके व्यवहारके भेद है तिनिकुं गुण संज्ञा है तिनिकी भावना राखणी बहुरि इहां एता और जाननां जो—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिस परिपाटीकरि गुण दोषनिका विचार है। तहां मिथ्यात्व सासादन मथ्र इनि तीननिमैं तौ विभावपरणतिहीं है तहां तौ गुणका विचार नाहीं। बहुरि अविरत देशविरत आदिमैं गुणका एकदेश आवै है, तहां अविरतमैं मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कषायके अभावरूप गुणका एकदेश सम्यक्त्वा अर तीव्र राग द्वेषका अभावरूप गुण आवै है, बहुरि देश विरतमैं कछु व्रतका एकदेश आवै है। अर प्रमत्तमैं महाव्रतरूप सामायिक चारित्रिका एकदेश आवै है जातैं पापसंबंधी तौ राग द्वेष तहां नाहीं परन्तु धर्मसंबंधी राग अर सामायिक राग द्वेषका अभावका नाम है तातैं सामायिकका एकदेशही कहिये, अर इहां स्वरूपके सन्मुख होनेविषैं क्रियाकांडके संबंधतैं प्रमाद है तातैं प्रमत्त नाम दिया है। बहुरि अप्रमत्तविषैं स्वरूप साधनेविषैं प्रमादतौ नाहीं परन्तु कछु स्वरूपके साधनेका राग व्यक्त है तातैं

तहांभी सामायिकका एकदेशही कहिये । बहुरि अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणविषैं राग व्यक्त नांही अव्यक्तकषायका सद्भाव है तातैं सामायिक चारित्रकी पूर्णता कही । बहुरि सूक्ष्मसांपराय है सो अव्यक्तकषायभी सूक्ष्म रहिगई तातैं याका नाम सूक्ष्मसांपराय दिया । बहुरि उपशांतमोह क्षीणमोहविषैं कषायका अभावही है तातैं जैसा आत्माका मोहविकाररहित शुद्ध स्वरूप था ताका अनुभव भया तातैं यथाख्यात चारित्र नाम पाया, ऐसैं मोह-कर्मके अभावकी अपेक्षा तौ तहांही उत्तरगुणनिकी पूर्णता कहिये परन्तु आत्माका स्वरूप अनंतज्ञानादि स्वरूप है सो घातिकर्मके नाश भये अनंतज्ञानादि प्रगट होय तब सयोगकेवली कहिये तहांभी कलू योग-निका प्रवृत्ति है यातैं अयोगकेवली चौदमां गुणस्थान है तहां योगनिकी प्रवृत्ति मिटि अवस्थित आत्मा होय जाय है तब चौरासीलाख उत्तरगुण-निका पूर्णता कहिये । ऐसैं गुणस्थाननिकी अपेक्षा उत्तरगुणनिकी प्रवृत्ति विचारणी । ये बाह्य अपेक्षा भेद है अंतरंग अपेक्षा विचारिये तब संख्यात असंख्यात अनंत भेद होय हैं, ऐसैं जाननां ॥ १२० ॥

आगैं भेदनिका विकल्पतैं रहित होय ध्यान करनेका उपदेश करै हैं;—

गाथा—ज्ञायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउदं च ज्ञाण मुत्तण ।

रुद्धं ज्ञाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥१२१॥

संस्कृत—ध्याय धर्म्यं शुक्लं आर्त्त रौद्रं च ध्यानं मुक्त्वा ।

रौद्रार्त्ते ध्याते अनेन जीवेन चिरकालम् ॥१२१॥

अर्थ—हे मुने ! तू आर्त्तरौद्र ध्यानकूं छांडि अर शुक्लध्यान हैं तिनिहिं ध्याय जातैं रौद्र अर आर्त्तध्यानतौ या जीवनैं अनादितैं लगाय बहुतकाल ध्याये ॥

भावार्थ—आर्त्तरौद्र ध्यान तौ अशुभ हैं संसारके कारण हैं तहां ये दोष ध्यान तौ जीवकै बिना उपदेशही अनादितैं प्रवर्त्तैं हैं तातैं तिनिंकूं

छोड़नेका उपदेश है। बहुरि धर्मशुद्ध ध्यान हैं ते स्वर्ग मोक्षके कारण हैं इतिक्कं कबहुं ध्याये नांही तातैं तिनिकुं ध्यावनेका उपदेश है। तहां ध्यानका स्वरूप एकाग्रचित्तानिरोध कहा है—तहां धर्मध्यानमें तौ धर्मानु-
रागका सद्भाव है सो धर्मके मोक्षमार्गके कारणविषै रागसहित एकाग्रचि-
तानिरोध होय है तातैं शुभरागके निमित्ततैं पुण्यबंधभी होय है अर
विशुद्धताके निमित्ततैं पापकर्मकी निर्जराभी होय है। बहुरि शुद्धध्यानमें
आठवें नवमें दशमें गुणस्थान तौ अव्यक्तराग है तहां अनुभव अपेक्षा
उपयोग उज्ज्वल है तातैं शुद्धनाम पाया है अर. यातैं ऊपरिके गुणस्थान-
निमें राग कषायका अभावही है तातैं सर्वथाही उपयोग उज्ज्वल है तहां
शुद्धध्यान युक्तही है। तहां एता विशेष और है जो उपयोगका एकाग्र-
पणां रूप ध्यानकी स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी कही है तिस अपेक्षा तेरमें
चौदमें गुणस्थान ध्यानका उपचार है अर योगक्रियाके ध्यानकी अपेक्षा
ध्यान कहा है। यह शुद्धध्यान कर्मकी निर्जराकी जीवकुं मोक्ष प्राप्त
करै है, ऐसैं ध्यानका उपदेश जाननां ॥ १२९ ॥

आगैं कहै है यह ध्यान भावलिंगी मुनिनिकुं मोक्ष करै है;—

गाथा—जे के वि दव्वसवणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति ।

छिंदंति भावसवणा ज्ञाणकुठारेहिं भवस्खलं ॥१२२॥

संस्कृत—ये केऽपि द्रव्यश्रमणा इन्द्रियसुखाकुलाः न छिदन्ति ।

छिदन्ति भावश्रमणाः ध्यानकुठारैः भववृक्षं ॥ १२२

अर्थ—केई द्रव्यलिंगी श्रमण हैं ते तौ इन्द्रियसुखविषै व्याकुल हैं
। तिनिकै यह धर्मशुद्धध्यान होय नांही ते तौ संसाररूप वृक्षके काटनेकुं
समर्थ नांही हैं, बहुरि जे भावलिंगी श्रमण हैं ते ध्यानरूप कुहाडेनिकरि
संसाररूप वृक्षकुं काटै हैं ॥

भावार्थ—जे मुनि द्रव्यलिङ्ग तौ धरै हैं परन्तु परमार्थ सुखका अनुभव जिनिकै न भया तातैं इस लोक परलोकविषै इन्द्रियनिका सुख-हीकूं चाहै हैं तपश्चरणादिक भी याही अभिलाषतैं करै हैं तिनिकै धर्म शुक्लध्यान काहे तैं होय ? न होय, बहुरि जिनिमै परमार्थसुखका आस्वाद लिया तिनिकूं इन्द्रियसुख दुःख भास्या, तातैं परमार्थ सुखका उपाय धर्म शुक्लध्यान है ताकूं करि संसारका अभाव करै हैं तातैं भावलिङ्गी होय ध्यानका अभ्यास करनां ॥ १२२ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै है,—

गाथा—जह दीवो गम्भहरे मारुतवाहाविवज्जिओ जलइ ।

तह रायानिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ॥ १२३ ॥

संस्कृत—यथा दीपः गर्भगृहे मारुतवाधाविवर्जितः ज्वलति ।

तथा रागानिलरहितः ध्यानप्रदीपः अपि प्रज्वलति ॥

अर्थ—जैसैं दीपक है सो गर्भगृह कहिये जहां पवनका संचार नाहीं ऐसा मध्यका घर ताविषै पवनकी बाधाकरि रहित निश्चल भया उज्ज्वलै है उद्योत करै हैं तैसैं अंतरंग मनविषै रागरूपी पवनकरि रहित ध्यानरूपी दीपक भी प्रज्वलै है एकाग्र होय ठहरै है आत्मरूपकूं प्रकाशै है ॥

भावार्थ—पूर्वै कहाथा जो इन्द्रियसुखकरि व्याकुल हैं तिनिकै शुभ-ध्यान न होय है ताका यह दीपकका दृष्टान्त है—जहां इन्द्रियनिके सुखविषै जो राग सोही भई पवन सो विद्यमान है तिनिकै ध्यानरूपी दीपक कैसैं निर्वाध उद्योत करै ? न करै, अर जिनिकै यह रागरूप पवन बाधा न करै तिनिकै ध्यानरूप दीपक निश्चल ठहरै है ॥ १२३ ॥

आगै कहै है—जो ध्यानविषै परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्माका स्वरूप है तिसस्वरूपरूपके आराधनैविषै नायक प्रधान पंच परमेष्ठी हैं तिनिकूं ध्यावनां, यह उपदेश करै है;—

गाथा—झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।

नरसुरखेचरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥१२४॥

संस्कृत—ध्याय पंच अपि गुरुन् मंगलचतुः शरणपरिकरितान् ।

नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान् १२४

अर्थ—हे मुने ! तू पंच गुरु कहिये पंच परमेष्ठी हैं तिनहिं ध्याय, इहां 'अपि' शब्द है सो शुद्धात्मस्वरूपके ध्यानकूं मूचै है, ते पंच परमेष्ठी कैसे हैं—मंगल कहिये पापका गालण अथवा मुखका देना अर चउशरण कहिये चार शरण अर लोक कहिये लोकके प्राणी तिनिकरि अरहंत सिद्ध साधु केवलि प्रणीत धर्म ये परिकरित कहिये परिवारित हैं युक्त हैं, बहुरि नर सुर विद्याधरनिकरि महित हैं पूज्य हैं लोकोत्तम कहें हैं, बहुरि आराधनके नायक हैं, बहुरि वीर हैं कर्मनिके जीतनेकूं भुमट हैं तथा विशिष्ट लक्ष्मांकु प्राप्त हैं तथा देहैं, ऐसे पंच परम गुरुकूं ध्याय ॥

भावार्थ—इहां पंच परमेष्ठीकूं ध्यावनां कह्या तहां ध्यानविषै विघ्नके निवारनेवाले चार मंगलस्वरूप कहे ते येही हैं, बहुरि चार शरण अर लोकोत्तम कहे हैं ते भी इनिहीकूं कहे हैं; इनिसिवाय प्राणीकूं अन्य शरणां रक्षा करनेवालाभी नाहीं है, अर लोकविषै उत्तमभी येही हैं, बहुरि आराधना दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये चार हैं ताकै नायक स्वामीभी येही हैं, कर्मनिकूं जीतनेवालेभी येही हैं । तातैं ध्यानके कर्ताकूं इनिका ध्यान श्रेष्ठ है, शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति इनिहीके ध्यानतैं होय है तातैं यह उपदेश है ॥ १२४ ॥

आगे ध्यान है सो ज्ञानका एकाग्र होनां है सो ज्ञानका अनुभवन का उपदेश करै है;—

गाथा—णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण ।

वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्ता सिवा होंति ॥१२५॥

संस्कृत—ज्ञानमयविमलशीतलसलिलं प्राप्य भव्याः भावेन ।

व्याधिजरामरणवेदनादाहविमुक्ताः शिवाः भवन्ति॥

अर्थ—भव्यजीव हैं ते ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल है ताहि सम्य-
क्त्वभावकरि सहित पीयकरि अर व्याधिस्वरूप जो जरा मरण ताकी
वेदना पीडा ताहि भस्म करि मुक्त कहिये संसारतैं रहित शिव कहिये
परमानंद सुखरूप होय हैं ॥

भावार्थ—जैसैं निर्मल अर शीतल ऐसे जलके पीये पित्तका दाहरूप
व्याधि मिटै अर साता होय है तैसैं यह ज्ञान है सो जब रागादिकमलतैं
रहित निर्मल होय अर आकुलतारहित शांतभावरूप होय ताकी भावना-
करि रुचि श्रद्धा प्रतीतिकरि पीवै यासूं तन्मय होय तौ जरा मरणरूप
दाह वेदना मिटि जाय अर संसारतैं निर्वृत्त होय सुखरूप होय, तातैं
भव्यजीवनिक्कू यह उपदेश है जो ज्ञानमें लीन होइ ॥ १२५ ॥

आगैं कहै है जो—या ध्यानरूप अग्निकरि संसारका बीज आठ कर्म
एक बार दग्ध भये पीछैं फेरि संसार न होय है, सो यह बीज भावमु-
निकै द' होय है:—

गाथा—जह वीयम्मि य दड्डे ण वि रोहइ अंकुरो य महीबीठे ।

तह कम्मवीयदड्डे भवंकुरो भावसवणाणं ॥१२६॥

संस्कृत—यथा बीजे च दग्धे नापि रोहति अंकुरश्च महीपीठे ।

तथा कर्मबीजदग्धे भवांकुरः भावश्रमणानाम् ॥१२६॥

अर्थ—जैसैं पृथ्वीके स्थलविषैं बीज दग्ध होतैं संतैं तिसका अंकुर
है सो फेरि नांही उग है तैसैं जे भावलिङ्गी श्रमण हैं तिनिकै संसारका

कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाय है, यातैं संसाररूप अंकुरा फेरि नांही होय है ॥

भावार्थ—संसारका बीज ज्ञानावरणादिक कर्म है सो कर्म भावश्रमणकै ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध हो जाय है तातैं फेरि संसाररूप अंकुरा काहेतैं होय ? तातैं भावश्रमण होय धर्म शुक्रध्यानतैं, कर्मका नाश करनां योग्य है, यह उपदेश है । कोई सर्वथा एकांती अन्यथा कहै जो कर्म अनादि है ताका अंत भी नांही, ताका यह निषेध भी है, बीज अनादि है सो एक बार दग्ध भये पीछैं फेरि न उगै तैसैं जाननां ॥ १२६ ॥

आगैं संक्षेपकरि उपदेश करै है,—

गाथा—भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं द्रव्यसवणो य ।

इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होइ ॥१२७॥

संस्कृत—भावश्रमणः अपि प्राप्नोति सुखानि दुःखानि

द्रव्यश्रमणश्च ।

इति ज्ञात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतः भव ॥१२७॥

अर्थ—भावश्रमण तौ सुखनिकूं पावै है बहुरि द्रव्यश्रमण है सो दुःखनिकूं पावै है ऐसैं गुण दोषनिकूं जाणि हे जीव तू भावकरि संयुक्त संयमी होहु ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनसहित तौ भावश्रमण होय है सो संसारका अभावकरि सुखनिकूं पावै है, अर मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण भेषमात्र होय है सो संसारका अभाव न करि सकै है तातैं दुःखनिकूं पावै है यातैं उपदेश करै है जो दोऊका गुण दोष जाणि भावसंयमी होनां योग्य है, यह सर्व उपदेशका संक्षेप है ॥ १२७ ॥

आगैं फेरिभी याहीका उपदेश अर्थरूप संक्षेपकरि कहै है,—

गाथा—तित्थयरगणहराईं अब्भुदयपरंपराईं सोक्खाईं ।

पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

संस्कृत—तीर्थकरगणधरादीनि अभ्युदयपरंपराणि सौख्यानि ।

प्राप्नुवंति भावश्रमणाः संक्षेपेण जिनैः भणितम् १२८

अर्थ—जे भावसहित मुनि हैं ते अभ्युदयसहित तीर्थकर गणधर आदि पदवीके सुख तिनिकू पावैं हैं यह संक्षेपकरि कहा है ॥

भावार्थ—तीर्थकर गणधर चक्रवर्ती आदि पदवीके सुख बडे अभ्युदयसहित हैं तिनहिं भावसहित सम्यग्दृष्टी मुनि हैं ते पावैं हैं, यह सर्व उपदेशका संक्षेपकरि उपदेश कहा है तातैं भावसहित मुनि होनां योग्य है ॥ १२८ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो-जे भावश्रमण हैं ते धन्य हैं तिनिकू हमारा नमस्कार होइ;—

गाथा—ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धानं ।

भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्टमायाणं ॥१२९॥

संस्कृत—ते धन्याः तेभ्यः नमः दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धेभ्यः ।

भावसहितेभ्यः नित्यं त्रिविधेन प्रणष्टमायेभ्यः १२९

अर्थ—आचार्य कहै है जो-जे मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ विशिष्ट ज्ञान अर निर्दोष चारित्र इनिकरि शुद्ध हैं याहीतैं भावकरि सहित हैं, बहुरि प्रणष्ट भई है माया कहिये कपटपरिणाम जिनिकै ऐसे हैं ते धन्य हैं तिनिकै आर्थ हमारा मन वचन कायकरि सदा नमस्कार होइ ॥

भावार्थ—भावलिङ्गीनिमें दर्शन ज्ञान चारित्रकरि जे शुद्ध हैं तिनिकै आचार्यनिकै भक्ति उपजी है तातैं तिनिकू धन्य कहिकरि नमस्कार किया है सो युक्त है, जिनिकै मोक्षमार्गविषैं अनुराग है जे तिनिमें मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमें प्रधानता दीखै तिनिकू नमस्कार करैं ही करैं ॥ १२९ ॥

आगै कहै है—जे भावश्रमण है ते देवादिककी ऋद्धि देखि मोहकूं प्राप्त न होय है;—

गाथा—इद्धिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरहिं ।

तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो ॥१३०॥

संस्कृत—ऋद्धिमतुलां विकुर्वद्भिः किंनरकिंपुरुषामरखचरैः ।

तैरपि न याति मोहं जिनभावनाभावितः धीरः १३०

अर्थ—जिनभावना जो सम्यक्त्वभावना तांकरि वासित जो जीव है सो किंनर किंपुरुष देव अर कल्पवासी देव अर विद्याधर इनिकर विक्रि यारूप विस्तारी जो अतुल ऋद्धि तिनिकरि मोहकूं प्राप्त न होय है जातैं कैसा है सम्यग्दृष्टी जीव—धीर है दृढबुद्धि है निःशंकित अंगका धारक है ॥

भावार्थ—जिसकै जिनसम्यक्त्व दृढ है तिसकै संसारकी ऋद्धि तृण वत् है परमार्थसुखहीकी भावना है विनाशीक ऋद्धिकी वांछा काहेकूं होय ! ॥ १३० ॥

आगै इसहीका समर्थन है जो—ऐसी ऋद्धि ही न चाहै तौ अन्य सांसारिक सुखकी कहा कथा ?;—

गाथा—किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं ।

जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिघवल्लो ॥१३१॥

संस्कृत—किं पुनः गच्छति मोहं नरसुरसुखानां अत्यसाराणाम् ।

जानन् पश्यन् चिंतयन् मोक्षं मुनिघवलः ॥१३१॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वोक्त प्रकारकी ही ऋद्धिकूं न चाहै तौ मुनिघवल कहिये मुनिप्रधान है सो अन्य जे मनुष्य देवनिके सुख

पर्याय है तिनिकर रहित अमूर्त्तिक है अर व्यवहारकर जेतें पुद्गल-
कर्मतैं बंघ्या है तेतैं मूर्त्तिक भी कहिये है । बहुरि शरीरपरिमाण
कह्या सो निश्चयनयकरि तौ असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है परन्तु
संकोच विस्तारशक्तिकरि शरीरतैं कछु घाटे प्रदेश प्रमाण आकार
रहै है । बहुरि अनादिनिधन कह्या सो पर्यायदृष्टिकरि देखिये तब तौ
उपजै बिनसै है तौऊ द्रव्यदृष्टिकरि देखिये तब अनादिनिधन सदा नित्य
अविनाशी है । बहुरि दर्शन ज्ञान उपयोगसहित कह्या सो देखनां जाननां-
रूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है । बहुरि इनि विशेषणनिकरि अन्यमती
अन्यप्रकार सर्वथा एकान्तकरि मानैं हैं तिनिका निषेध भी जाननां, सो
कैसे ? कर्त्ताविशेषणकरि तौ सांख्यमती सर्वथा अकर्त्ता मानै है ताका
निषेध है । बहुरि भोक्ता विशेषणकरि बौद्धमती क्षणिक मांनि कहै है
कर्मकूं करै और, अर भोगवै और है, ताका निषेध है, जो जीव कर्म करै
है ताका फल सो ही जीव भोगवै है ऐसैं बौद्धमतीके कहनेका निषेध
है । बहुरि अमूर्त्तिक कहनेतैं मीमांसक आदिक इस शरीरसहित मूर्त्तिक
ही मानैं है ताका निषेध है । बहुरि शरीरप्रमाण कहनेतैं नैयायिक
वैशेषिक वेदान्ती आदि सर्वथा सर्वव्यापक मानैं हैं ताका निषेध है ।
बहुरि अनादिनिधन कहनेतैं बौद्धमती सर्वथा क्षणस्थायी मानै है ताका
निषेध है । बहुरि दर्शनज्ञानउपयोगमयी कहनेतैं सांख्यमती तौ ज्ञानरहित
चेतनामात्र मानै है, अर नैयायिक वैशेषिक गुणगुणीकै सर्वथा भेद मांनि
ज्ञान अर जीवकै सर्वथा भेद मानैं है, अर बौद्धमतका विशेष विज्ञानाद्वै-
तवादी ज्ञानमात्रही मानै है, अर वेदान्ती ज्ञानका कछु निरूपण न करै
है, तिनिका निषेध है । ऐसैं सर्वका कह्या जीवका स्वरूप जाणि आपकूं
ऐसा मांनि अद्वा रुचि प्रतीति करणी । बहुरि जीव कहनेहीमें अजीव
पदार्थ जान्यां जाय है, अजीव न होय तौ जीव नाम कैसे कहता तातैं

अजीवका स्वरूप कहा है तैसा ताका श्रद्धान आगम अनुसार करना ।
ऐसैं अजीव पदार्थका स्वरूप जाणि अर इनि दोऊनिके संयोगतैं अन्य
आश्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष इनि भावनिकी प्रवृत्ति होय है, तिनिका
आगमअनुसार स्वरूप जाणि श्रद्धान किये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है,
ऐसैं जाननां ॥ १४८ ॥

आगैं कहै है जो—यह जीव ज्ञान दर्शन उपयोगमयी है तौऊ अनादि
पुद्गल कर्मसंयोगतैं याकै ज्ञान दर्शनकी पूर्णता न होय है तातैं अल्प
ज्ञानदर्शन अनुभवमैं आवै है, अर तिनिमैं भी अज्ञानके निमित्ततैं
इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष मोहभावकरि ज्ञान दर्शनमैं कलुषतारूप
सुख दुःखादिक भाव अनुभवनमैं आवै है, यह जीव निजभावनारूप
सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होय है तब ज्ञानदर्शन सुख वीर्यके घातक कर्मनिका
नाश करै है, ऐसा दिखावै है,—

गाथा—दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराह्यं कम्मं ।

णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो ॥१४९॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानावरणं मोहनीयं अन्तरायकं कर्म ।

निष्ठापयति भव्यजीवः सम्यक् जिनभावनायुक्तः १४९

अर्थ—सम्यक् प्रकार जिनभावनाकरि युक्त भव्यजीव है सो ज्ञाना-
वरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये च्यार घातिकर्म हैं तिनिकूं निष्ठा-
पन करै है संपूर्ण अभाव करै है ॥

भावार्थ—दर्शनका घातकतौ दर्शनावरण कर्म है, ज्ञानका घातक
ज्ञानावरण कर्म है, सुखका घातक मोहनीय कर्म है, वीर्यका घातक अंत-
रायकर्म है, तिनिका नाशकूं सम्यक् प्रकार जिनभावना कहिये जिन
आज्ञा मानि जीव अजीव आदि तत्त्वका यथार्थ निश्चयकरि श्रद्धावान

भोगादिक जिनमें अल्पसार ऐसे जिनिविषैं कहा मोहकूं प्राप्त होय ?
कैसा है मुनिधवल—मोक्षकूं जानता है तिसहीकी तरफ दृष्टि है तिस-
हीका चितवन करै है ॥

भावार्थ—जे मुनिप्रधान हैं तिनकी भावना मोक्षके मुखनिमें है ते
बड़ी बड़ी देव विद्याधरनिकी फैलाई विक्रियान्नाद्वि विषैंही लालसा न करै
तौ किंचित्मात्र विनाशीक जे मनुष्य देवनिका भोगादिकका मुख तनि-
विषैं वांछा कैसैं करै ? न करै ॥ १३१ ॥

आगैं उपदेश करै है जो—जेतैं जरा आदिक न आवैं ते तैं अपनां
हित करौ;—

गाथा—उत्थरइ जा ण जरओ रीयग्गी जा ण डहइ देहउडिं ।
इंदियबलं न वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ॥१३२
संस्कृत—आक्रमते यावन्न जरा रोगाभिर्यावन्न दहति देहकुटीम् ।
इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम् १३२

अर्थ—हे मुने ! जेतैं तेरै जरा वृद्धपणां न आवैं बहुरि रोगरूप
अग्नि तेरी देहरूप कुटीकूं जेतैं दग्ध न करै बहुरि जेतैं इन्द्रियनिका बल
न घटै तेतैं अपनां हितकूं करि ॥

भावार्थ—वृद्ध अवस्थामें देह रोगानिकरि जर्जरी होय इन्द्रिय क्षीण पडै
तब असमर्थ भया इस लोकके कार्य उठनां बैठनां भी न करि सकैं तब
परलोक संबंधी तपश्चरणादिक तथा ज्ञानाभ्यास स्वरूपका अनुभवादिक
कार्य कैसैं करै तातैं यह उपदेश है जो—जेतैं सामर्थ्य है तेतैं अपनां
हितरूप कार्य करिख्यो ॥ १३२ ॥

आगैं अहिंसाधर्मका उपदेश वर्णन करै है;—

गाथा—छज्जीव षडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं ।

कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुच्चं महासत्तं ॥ १३३ ॥

संस्कृत—षट्जीवान् षडायतनानां नित्यं मनोवचनकाययोगैः ।

कुरु दयां परिहर मुनिवर भावय अपूर्वं महासत्त्वम् ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू छहकायके जीवनिकी दयाकरे, बहुरि छह अनायतनकूं परिहरि छोडि, कैसैं छोडि—मन वचन कायके योगनिकरि छोडि; बहुरि अपूर्व जो पूर्वं न भया ऐसा महासत्त्व कहिये सर्व जीव-निमें व्यापक महासत्त्व चेतनाभाव ताहि भाय ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं जीवका स्वरूप चेतनास्वरूप न जाण्या तातैं जीवनिकी हिंसा करी तातैं यह उपदेश है जो अब जीवात्माका स्वरूप जाणि छह कायके जीवनिकी दया करि । बहुरि अनादिहीतैं आस आगम पदार्थका अर इनका सेवनेवालाका स्वरूप जाण्यां नांही तातैं अनास आदि छह अनायतन जे मोक्षमार्गके ठिकाणे नांही तिनिंकूं भले जाणि सेवन किया तातैं यह उपदेश है जो—अनायतनका परिहार करि जीवका स्वरूपका उपदेशक ये दोऊही तैं पूर्वं जाणें नांही भाया नाहीं तातैं अब भाय, ऐसा उपदेश है ॥ १३३ ॥

आगैं कहै है जो—जीवका तथा उपदेश करनेवालाका स्वरूप जाण्यां विना सर्वजीवनिके प्राणनिका आहार किया ऐसैं दिखावै है,—

गाथा—दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतैण ।

भोयसुहकारणदं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं १३४

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'महासत्त' ऐसा संबोधनपद किया है जिसकी संस्कृत 'महासत्त्व' है ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'षट्जीवषडायतनानां' एक पद किया है ।

संस्कृत—दशविधप्राणाहारः अनंतभवसागरे भ्रमता ।

भोगसुखकारणार्थं कृतश्च त्रिविधेन सकलजीवानां ॥

अर्थ—हे मुने ! तैं अनंतभवसागरमें भ्रमता सकल त्रस थावर जीवनिके दशविध प्राणनिका आहार, भोग सुखकै कारणकै अर्थ मन वचनकायकरि किया ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं जिनमतका उपदेशविना अज्ञानी भयातैं त्रसथावर जीवनिके प्राणनिका आहार किया तातैं अब जीवनिका स्वरूप जाणि जीवनिकी दया पालि भोगाभिलाष छोडि, यह उपदेश है ॥१३४॥

फेरि कहै है—ऐसैं प्राणीनिकी हिंसाकरि संसारमें भ्रमिकरि दुःख पाया;—

गाथा—पाणिवहेहि महाजस चउरासीलखजोणिमज्झम्भि ।

उपजंत मरंतो पत्तोसि निरंतरं दुखं ॥१३५॥

संस्कृत—पाणिवधैः महायशः ! चतुरशीतिलक्षयोनिमध्ये ।

उत्पद्यमानः प्रियमाणः प्राप्तोऽसि निरंतरं दुःखम् १३५

अर्थ—हे मुने ! हे महायश ! तैं प्राणीनिके घातकरि चौरासी लाख योनिकै मध्य-उपजतैं अर मरतैं निरंतर दुःख पाया ॥

भावार्थ—जिनमतके उपदेश विना जीवनिकी हिंसा करि यह जीव चौरासी लाख योनिमें उपजै है अर मरै है, हिंसातैं कर्मबंध होय है, कर्म बंधके उदयतैं उत्पत्तिमरणरूप संसार होय है; ऐसैं जन्म मरणका दुःखं सहै है तातैं जीवनिकी दयाका उपदेश है ॥

आगैं तिसं दयाहीका उपदेश करै है;—

गाथा—जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं ।

कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए ॥१३६॥

संस्कृत—जीवानामभयदानं देहि मुने प्राणिभूतसत्त्वानाम् ।
कल्याणसुखनिमित्तं परंपरया त्रिविधशुद्धया ॥१३६॥

अर्थ—हे मुने ! जीवनिक्क अर प्राणीभूत सत्त्व इनिक्क अपनां परंपरायकरि कल्याण अर मुख ताकै अर्थ मन वचन कायकी शुद्धताकरि अभयदान दे ॥

भावार्थ—जीव तौ पंचेंद्रियनिक्क कहे हैं अर प्राणी विकलत्रयक्क कहे हैं अर भूत वनस्पतीक्क कहे हैं अर सत्त्व पृथ्वी अप तेज वायु इनिक्क कहे हैं । इनि सर्व जीवनिक्क आप समान जाणि अभयदान देनेका उपदेश है, यातैं शुभ प्रकृतिनिका बंध होनेतैं अभ्युदयका सुख होय है परंपराकरि तीर्थकरपद पाय मोक्ष पावै है, यह उपदेश है ॥ १३६ ॥

आगैं यह जीव पद अनायतनके प्रसंगकरि मिथ्यात्वतैं संसारमें भ्रमै है ताका स्वरूप कहे है, तहां प्रथमही मिथ्यात्वके भेदनिक्क कहे है;—

गाथा—असियसय किरियवाई अकिरियाणं च होइ चुलसीदी ।
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणैया होंति बत्तीसा ॥१३७॥

संस्कृत—अशीतिशतं क्रियावादिनामक्रियाणं च भवति

चतुरशीतिः ।

सप्तषष्टिरज्ञानिनां त्रैययिकानां भवति द्वात्रिंशत् ॥३७॥

अर्थ—एकसौ अस्सी तौ क्रियावादी हैं चौरासी अक्रियावादोनिके भेद हैं अज्ञानी सबसठि भेदरूप हैं त्रिनयवादी बत्तीस हैं ॥

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अनंत धर्म स्वरूप सर्वज्ञ कहा है सो प्रमाण नयकरि सत्यार्थ सधै है, तहां जिन्होंके मतमें सर्वज्ञ नांही तथा सर्वज्ञका स्वरूप यथार्थ निश्चयकरि तका श्रद्धान न किया ऐसे अन्य-

वादी तिनिनै वस्तुका एक धर्म ग्रहणकरि तिसका पक्षपात किया जो— हमनै ऐसै मान्या है सो ऐसैही है अन्य प्रकार नांही है । ऐसै विधि निषेधकरि एक एक धर्मके पक्षपाती भये तिनके ये संक्षेपकरि तीनसह तेरसठि भेद भये ।

तहां केई तौ गमन करनां बैठनां खड़ा रहनां खानां पीनां सोवनां उप-जनां विनसनां देखनां जाननां करनां भोगनां भूलनां यादि करनां प्रीति करनां हर्ष करनां विषाद करनां द्वेष करनां जीवनां मरनां इत्यादिक किया हैं तिनिंकुं जीवादिक पदार्थनिकै देखि कोई कैसी क्रियाका पक्ष किया है कोईने कैसी क्रियाका पक्ष किया है ऐसै परस्पर क्रियाविवादकरि भेद भये हैं तिनिंके संक्षेपकरि एकसौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं, विस्तार किये बहुत होय हैं । बहुरि केई अक्रियावादी हैं तिनिनै जीवादिक पदार्थनिविषै क्रियाका अभाव मानि परस्पर विवाद करै हैं, केई कहै हैं जीव जानै नांही है, केई कहै हैं कछू करै नांही हैं, केई कहै हैं भोगवै नांही है, केई कहै हैं उपजै नांही है, केई कहै हैं विनसै नांही हैं, केई कहै हैं गमन नांही करै है, केई कहै हैं तिष्ठै नांही है इत्यादिक क्रियाके अभावका पक्षपातकरि सर्वथा एकान्ती होय हैं तिनिंके संक्षेपकरि चौरासी भेद किये हैं बहुरि केई अज्ञानवादी हैं, तिनिमें केई तौ सर्वज्ञका अभाव मानै हैं, केई कहै हैं जीव अस्ति है यह कौन जानै, केई कहै हैं जीव नास्ति हैं यह कौन जानै, केई कहै हैं जीव नित्य है यह कौन जानै, केई कहै हैं जीव अनित्य है यह कौन जानै; इत्यादिक संशय विपर्यय अनप्यवसायरूप भये विवाद करै हैं, तिनिंके संक्षेपकरि सडसठि भेद कहे हैं । बहुरि केई विनयवादी हैं, ते केई कहै हैं देवादिकका विनयतै सिद्धि है, केई कहै हैं गुरुके विनयतै सिद्धि है, केई कहै हैं माताके विनयतै सिद्धि है, केई कहै हैं पिताके विनयतै सिद्धि है केई कहै हैं

राजाके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं सर्वके विनयतैं सिद्धि है इत्यादिक विवाद करैं है तिनिके संक्षेपकरि बत्तीस भेद किये है । ऐसैं सर्वथा एकांतीनिके तीनसह तरेसठि भेद संक्षेपकरि किये हैं, विस्तार किये बहुत होय हैं इनिमें केई ईश्वरवादी है केई कालवादी हैं, केई स्वभाववादी है, केई विनयवादी हैं, केई आत्मावादी हैं तिनिका स्वरूप गोमट्टसारदि ग्रंथनितैं जाननां, ऐसैं मिथ्यात्वके भेद हैं ॥ १३७ ॥

आगैं कहै है—अभव्यजीव है सो अपनी प्रकृतिकूं छोड़ै नाहीं ताका मिथ्यात्व मिटै नाहीं है;—

गाथा—ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठ वि आयणिऊण जिणधम्मं ।

गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥ १३८ ॥

संस्कृत—न भुञ्चति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठु अपि आकर्ण्य जिनधर्मम्

गुडदुग्धमपि पिबंतः न पन्नगाः निर्विषाः भवंति १३८

अर्थ—अभव्यजीव है सो भलै प्रकार जिनधर्म है ताहि सुणिकरि-
भी अपनी प्रकृति स्वभाव है ताहि न छोड़ै है, इहां दृष्टांत जे सर्प हैं
ते गुडसहित दुग्धकूं पीबते संते भी विषरहित नाहीं होय हैं ॥

भावार्थ—जो कारण पाय भी न छूटै ताकूं प्रकृति स्वभाव कहिये
है, जो अभव्यका स्वभाव यह है जो अनेकांत है तत्त्वस्वरूप जामें ऐसा
बीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व का भैटनेवाला है ताका भलै
कार स्वरूप सुणिकरिभी जाका मिथ्यात्वस्वरूप भाव बदलै नाहीं है सो
यह वस्तुका स्वरूप है काहूका किया नाहीं । इहां उपदेश अपेक्षा ऐसैं
जाननां जो अभव्यरूप प्रकृति तौ सर्वज्ञगम्य है तथापि अभव्यकी
प्रकृति सारिखी प्रकृति न राखणी, मिथ्यात्व छोड़नां यह उपदेश
है ॥ १३८ ॥

आगै याही अर्थकू दृढ करै है;—

गाथा—मिच्छत्तच्छणदिद्वी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं ।

धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि ॥१३९॥

संस्कृत—मिथ्यात्वछन्नदृष्टिः दुर्धिया दुर्मतैः दोषैः ।

धर्मं जिनप्रज्ञप्तं अभव्यजीवः न रोचयति ॥१३९॥

अर्थ—अभव्यजीव है सो जिनप्रणीत धर्म है ताहि न रोचै है न श्रद्धै है रुचि न करै है, जातैं कसा है अभव्यजीव दुर्मत जे सर्वथा एकान्ती तिनिके प्ररूपे अन्यमत तेही भये दोष तिनिकर अपनी दुर्बुद्धिकर मिथ्यात्वतैं आच्छादित है बुद्धि जाकी ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वके उपदेशकर अपनी दुर्बुद्धिकर जाकै मिथ्या दृष्टि है ताकू जिनधर्म न रुचै है तब जाणिये यह अभव्यजीवके भाव हैं यथार्थ अभव्यजीवकू तौ सर्वज्ञ जाणै है अर ये अभव्यके चिह्न है तिनितैं परीक्षाकर जानिये हैं ॥ १३९ ॥

आगै कहै है जो ऐसे मिथ्यात्वके निमित्ततैं दुर्गतिका पात्र होय है

गाथा—कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडि भत्तिसंजुत्तो ।

कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ ॥१४०॥

संस्कृत—कुत्सितधर्मे रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः ।

कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनं भवति १४०

भावार्थ—आचार्य कहै है जो—कुत्सित निघ मिथ्याधर्ममें रत है लीन है, अर जो पाषंडी निघभेषी तिनिकी भक्तिसंयुक्त है बद्धिर जो निघ मिथ्याधर्म सेवै मिथ्यादृष्टीनिकी भक्ति करै मिथ्या अज्ञानतप करै सो दुर्गतिहि पावै तातैं मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है ॥ १४० ॥

आगैं इसही अर्थकूं दढ़ करते संते ऐसैं कहै है जो ऐसैं मिथ्यात्व-
करि मोह्या जीव संसारमैं भ्रम्या;—

गाथा—इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो ।

भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चित्तेहि ॥१४१॥

संस्कृत—इति मिथ्यात्वावासे कुणयकुशास्त्रैः मोहितः जीवः ।

भ्रमितः अनादिकालं संसारे धीर ! चिन्तय ॥१४१॥

अर्थ—इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्वका आवास ठिकाणां जो यह
मिथ्यादृष्टीनिका संसार ताविषैं कुणय जो सर्वथा एकान्त तिनिसहित जे
कुशास्त्र तिनिकरि मोह्या बेचेत भया जो यह जीव सो अनादिकालतैं
लगाय संसारविषैं भ्रम्या, ऐसैं हे धीर ! मुने ! तू विचारि ॥

भावार्थ—आचार्य कहै है जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि कुवादिनिकरि
सर्वथा एकांतपक्षरूप कुणयकरि रचे शास्त्र तिनिकरि मोहित भया यह
जीव संसारविषैं अनादितैं भ्रमे है, सो हे धीरमुनि ! अब ऐसे कुवादि-
निकी संगतिभी मति करै, यह उपदेश है ॥ १४१ ॥

आगैं कहै है जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि पाषंडीनिका मार्ग छोड़ि
जिनमार्गविषैं मन लगावो;—

गाथा—पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठिमेया उमगग मुत्तण ।

रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४२॥

संस्कृत—पाषण्डिनः त्रीणि शतानि त्रिषष्टिभेदाः उन्मार्गं मुक्त्वा ।

रुद्धि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना १४२

अर्थ—हे जीव ! तीनसौ तरेसठि पाषंडी कहे तिनिका मार्गकूं छोड़ि
अर जिनमार्गविषैं अपने मनकूं थामि यह संक्षेप है, और निरर्थक प्रला-
परूप कहनेकरि कहा ? ॥

भावार्थ—ऐसैं मिथ्यात्वका निरूपण किया तहां आचार्य कहै है जो—बहुत निरर्थक वचनालापकर कहा ? एता ही संक्षेप करि कहै हैं—जो तीनसौ तरेसठि कुवादि पाषंडी कहे तिनिका मार्ग छोडिकरि जिन-मार्गविषैं मनकूं थांभनां, अन्यत्र जानें न देनां। इहां इतनां विशेष और जाननां जो—कालदोषतैं इस पंचमकालमें अनेक पक्षपातकरि मतांतर भये हैं तिनिकूं भी मिथ्या जांणि तिनिका प्रसंग न करनां, सर्वथा एकान्तका पक्षपात छोडि अनेकान्तरूप जिनवचनका शरण लेणां ॥ १४२ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनका निरूपण करै हैं, तहां कहै है—जो सम्यग्दर्शन रहित प्राणी है सो चालता मृतक हैं,—

गाथा—जीवविमुक्तो सबओ दंसणमुक्तो य होइ चलसबओ ।

सबओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसबओ ॥१४३॥

संस्कृत—जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तश्च भवति चलशवः ।

शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः ॥१४३॥

अर्थ—लोकविषैं जीवकरि रहित होय ताकूं शव कहिये मृतक मुरदा कहिये है तैसैंही जो सम्यग्दर्शनकरि रहित पुरुष हैं सो चालता मृतक है, बहुरि मृतक तौ लोकविषैं अपूज्यहैं अग्निकरि दग्ध कीजिये है तथा पृथ्वीमें गाडिये है अर दर्शनरहित चालता मुरदाहैं सो लोकोत्तर जे मुनि सम्यग्दृष्टी तिनिकै विषैं अपूज्यहैं ते ताकूं वंदनादिक नांही करै हैं, मुनि-भेष धरैं तौऊ संघवाह्य राखैं हैं अथवा परलोकमें निद्यगति पाय अपूज्य होय हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन बिना पुरुष मृतकतुल्य है ॥ १४३ ॥

आगैं सम्यक्त्वका महान्पणां कहै है,—

गाथा—जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं ।

अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविह्वम्माणं १४४

संस्कृत—यथा तारकाणां चन्द्रः मृगराजः मृगकुलानां सर्वेषाम् ।

अधिकः तथा सम्यक्त्वं ऋषिश्रावकद्विविधधर्माणाम् १४४

अर्थ—जैसे तारानिके समूहविषै चंद्रमा अधिक है बहुरि मृगकुल कहिये पशूनिके समूहविषै मृगराज कहिये सिंह सो अधिक है तैसे ऋषि कहिये मुनि अर श्रावक ऐसे दोय प्रकार धर्मनिविषै सम्यक्त्व है सो अधिक है ॥

भावार्थ—व्यवहारधर्मकी जेती प्रवृत्ति हैं तिनिमें सम्यक्त्व अधिक है या विनां सर्व संसारमार्ग बंधका कारण है ॥ १४४ ॥

फेरि कहै है;—

गाथा—जह फणिराओ सोहई फणमणिमाणिक्यकिरणविष्फुरिओ

तह विमलदंसणधरो जिणंभत्तीपवयणे जीवो ॥१४५॥

संस्कृत—यथा फणिराजः शोभते फणमणिमाणिक्य-

किरणविस्फुरितः ।

तथा विमलदर्शनधरः जिनभक्तिः प्रवचने जीवः १४५

अर्थ—जैसे फणिराज कहिये धरणेंद्र है सो फण जो सहस्र फण तिनिमें जे मणि तिनके मध्य जे रक्त माणिक्य ताकी किरणनिकरि विस्फुरित कहिये देदीप्यमान सोहै है तैसे निर्मल सम्यग्दर्शनका धारक जीव है सो जिनभक्तिसहित है यातैं प्रवचन जो मोक्षमार्गका प्ररूपण ताविषै सोहै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वसहित जीवकी जिन प्रवचनविषै बड़ी अधिकता है जहां तहां शास्त्रविषै सम्यक्त्वकी ही प्रधानता कही है ॥ १४५ ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'रेहई' ऐसा पाठ है जिसका 'राजते' संस्कृत है ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'जिणभत्तीपवयणो' ऐसा एकपदरूप पद है जिसकी संस्कृत "जिनभक्तिप्रवचनः" है । यह पाठ यतिमंग सा माछस होता है ।

आगैं सम्यग्दर्शनसहित लिंग है ताकी महिमा कहै है;—

गाथा—जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले ।

भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

संस्कृत—यथा तारागणसहितं शशधरबिंबं खमंडले विमले ।

भावतं तपोव्रतविमलं जिनलिंगं दर्शनविशुद्धम् १४६

अर्थ—जैसैं निर्मल आकाशमंडलविषैं तारानिके समूह सहित चंद्र-
माका बिंब सोहै है तैसैंही जिनशासनविषैं दर्शनकरि विशुद्ध अर भावित
किये जे तप अर व्रत तिनिकरि निर्मल जिनलिंग है सो सोहै है ॥

भावार्थ—जिनलिंग कहिये निर्ग्रन्थ मुनिभेष है सो यद्यपि तपव्रत-
निकरि सहित निर्मल है तौऊ सम्यग्दर्शन विनां सोहै नहीं, या सहित
होय तब अत्यंत शोभायमान होय है ॥ १४६ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं जाणिकरि दर्शनरत्नकूं धारो, ऐसैं उपदेश करै
है;—

गाथा—इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण ।

सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥१४७॥

संस्कृत—इति ज्ञात्वा गुणदोषं दर्शनरत्नं धरत भावेन ।

सारं गुणरत्नानां सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥१४७॥

अर्थ—हे मुने ! तू इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके तौ गुण
अर मिथ्यात्वके दोष तिनहिं जाणिकरि सम्यक्त्वरूप रत्न है ताहि भाव-
करि धरि, कैसा है सम्यक्त्वरत्न—गुणरूप जे रत्न हैं तिनियैं सार है
उत्तम है, बहुरि कैसा है—मोक्षरूप मंदिरका प्रथम सोपान है चढ़नेकी
पहली पैडी है ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'तह वयविमलं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत
'तथा व्रतविमलं' है। २ इस गाथाका चतुर्थ पाद यतिभंग है। इसकी जगह पर
'जिणलिंगं दंसणेण सुविसुद्धं' होना ठीक जंचता है ।

भावार्थ—जेते व्यवहार मोक्षमार्गके अंग हैं गृहस्थकै तौ दानपूजा-
दिक अर मुनिकै महाव्रत शीलसंयमादिक, तिनिमें सर्वमें सार सम्यग्दर्शन है यातैं सर्व सफल है, तातैं मिथ्यात्वकूं छोड़ि सम्यग्दर्शन अंगी-
कार करनां यह प्रधान उपदेश है ॥ १४७ ॥

आगैं कहै है जो सम्यग्दर्शन होय है सो जीव पदार्थका स्वरूप जानि याकी भावना करै ताका श्रद्धानकरि अर आपकूं जीव पदार्थ जानि अनुभवकरि प्रतीति करै ताकै होय है सो यह जीव पदार्थ कैसा है ताका स्वरूप कहै है;—

गाथा—कृता भोऽ अमुक्तो शरीरभित्तो अणाइनिहणो य ।

दंसणणाणुवओगो णिदिट्ठो जिनवरिंदेहिं ॥१४८॥

संस्कृत—कर्त्ता भोक्ता अमूर्त्तः शरीरमात्रः अनादिनिधनः च ।

दर्शनज्ञानोपयोगः जीवः निर्दिष्टः जिनवरेन्द्रैः १४८

अर्थ—जीवनामा पदार्थ है सो कैसा है—कर्त्ता है, भोगी है अमूर्त्तकहै, शरीर प्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन ज्ञान है उपयोग जाकै ऐसा है सो जिनवरेन्द्र जो सर्वज्ञदेव बीतराग तिसनैं कहा है ॥

भावार्थ—इहां जीवनामा पदार्थकै छह विशेषण कहै तिनिका आशय ऐसा जो—कर्त्ता कहा सो निश्चयनयकरि तौ अपनां अशुद्ध रागा-
दिक भाव तिनिका अज्ञान अवस्थामैं आप कर्त्ता है अर व्यवहारनयकरि पुद्गल कर्म जे ज्ञानावरण आदि तिनिका कर्त्ता है अर शुद्धनयकरि अपनें शुद्धभावका कर्त्ता है । बहुरि भोगी कहा सो निश्चयनयकरि तौ अपनां ज्ञानदर्शन मयी चेतनभावका भोक्ता है, अर व्यवहारनयकरि पुद्गलकर्मका फल जो सुख दुःख आदिक ताका भोक्ता है । बहुरि अमूर्त्तक कहा सो निश्चयकरि तौ स्पर्श रस गंधवर्ण शब्द ये पुद्गलके गुण

भया होय सो जीव करै है, तातैं जिन आज्ञा मांनि यथार्थ श्रद्धान करनां यह उपदेश है ॥ १४८ ॥

आगैं कहै है इनि घाति कर्मनिका नाश भये अनंतचतुष्टय प्रकट होय हैं;—

गाथा—बलसोकखणाणदंसण चत्तारि वि पायडा गुणा होंति ।

णट्टे धाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ॥१५०॥

संस्कृत—बलसौख्यज्ञानदर्शनानि चत्वारोऽपि प्रकटा

गुणा भवन्ति ।

नष्टे घातिचतुष्के लोकालोकं प्रकाशयति ॥१५०॥

अर्थ—पूर्वोक्त घातिकर्मका चतुष्क ताका नाश भये बल सुख ज्ञान दर्शन ये चार गुण प्रगट होय हैं, बहुरि जीवके ये गुण प्रकट होय तब लोकालोककूं प्रकाशै है ॥

भावार्थ—घातिकर्मका नाश भये अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतशरीर ये अनंतचतुष्टय प्रकट होय है । तहां अनंत दर्शनज्ञानतैं तो षट्द्रव्यकारि भन्या जो यह लोक तामैं जीव अनंतानंत अर पुद्गल तिनि-तैंभी अनंतानंत गुणें अर धर्म अधर्म आकाश ये तीन द्रव्य अर असंख्याते लोकाणू इनि सर्व द्रव्यनिके अतीत अनागत वर्तमान काल संबंधी अनंतपर्याय न्यारे न्यारेकूं एकै काल देखै है अर जानै है, अर अनंतसुखकारि अव्यंततृप्तिरूप है, अर अनन्तशक्तिकारि अब काहू निमित्तकारि अवस्था पलटै नांही है । ऐसैं अनंतचतुष्टयरूप जीवका निजस्वभाव प्रगट होय है तातैं जीवके स्वरूपका ऐसा परमार्थकारि श्रद्धान करनां सो ही सम्यग्दर्शन है ॥ १५० ॥

आगैं जाकै अनंतचतुष्टय प्रगट होय ताकूं परमात्मा कहिये है ताके अनेक नाम हैं तिनिमैं केतेक प्रगटकारि कहिये है;—

गाथा—गाणी शिव परमेष्ठी सव्वण्हू विण्हू चउमुहो बुद्धो ।

अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं॥१५१॥

संस्कृत—ज्ञानी शिवः परमेष्ठी सर्वज्ञः विष्णुः चतुर्मुखः बुद्धः ।

आत्मा अपि च परमात्मा कर्मविमुक्तः च भवति स्फुटम्

अर्थ—परमात्मा है सो ऐसा है—ज्ञानी है, शिव है, परमेष्ठी है, सर्वज्ञ है, विष्णु है, चतुर्मुख ब्रह्मा है, बुद्ध है, आत्मा है, परमात्मा है, कर्मकारि विमुक्त कहिये रहित है, यह प्रगट जाणों ॥

भावार्थ—ज्ञानी कहनेतैं तौ सांख्यमती ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यरहित मानै है ताका निषेध है बहुरि शिव है सर्वकल्याणपरिपूर्ण है जैसे सांख्यमती नैयायिक वैशेषिक मानै है तैसा नांही है, बहुरि परमेष्ठी है परम उत्कृष्ट पदविषैं तिष्ठै है अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है जैसे अन्य मती केई अपनां इष्ट किछू थापि ताकूं परमेष्ठी कहैं हैं तैसें नांही है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकाश्रककूं जाणैं है अन्य केई कोई एक प्रकरण संबन्धी सर्व बात जाणै ताकूं भी सर्वज्ञ कहै है तैसा नांही है, बहुरि विष्णु है जाकै ज्ञान सर्व ज्ञेयमें व्यापक है—अन्यमती वेदान्ती आदि कहैं हैं जो सर्व पदार्थनिमें आप है सो ऐसैं नांही है, बहुरि चतुर्मुख कहनेतैं केवलो अरहंतकै समवसरणमें चार मुख चारूं दिशामैं दखि हैं ऐसा आतिशय हैं तातैं चतुर्मुख कहिये है—अन्यमती ब्रह्माकूं चतुर्मुख कहैं हैं सो ऐसा ब्रह्मा कोई है नांही, बहुरि बुद्ध है सर्वका ज्ञाता है बौद्धमती क्षणिककूं बुद्ध कहैं हैं तैसा नांही है बहुरि आत्मा है अपने स्वभावही विषैं निरन्तर प्रवतैं है—अन्यमती वेदान्ती सर्व विषैं प्रवर्तता आत्माकूं मानैं हैं तैसा नांही है, बहुरि परमात्मा है आत्माका पूर्णरूप अनंतचतुष्टय जाकैं प्रगट भया है तातैं परमात्मा है बहुरि कर्मजे आत्माके स्वभावके घातक घातिकर्म तिनिमें रहित भया है तातैं कर्मविमुक्त है अथवा

कछू करनेयोग्य कार्यन रखा तातैं भी कर्मविप्रमुक्त है सांख्यमती नैया-
यिक सदाही कर्मरहित मानैं हैं तैसैं नाहीं हैं ऐसैं परमात्माके सार्थक नाम
हैं अन्यमती अपने इष्टके नाम एकही कहै हैं तिनिका सर्वथा एकान्तका
अभिप्रायकरि अर्थ विगडैं है सो यथार्थ नाहीं । अरहंतके ये नाम
नयविवक्षातैं सत्यार्थ है, ऐसैं जाननां ॥ १५१ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो—ऐसा देव है सो मोकूं उत्तम बोधि द्यो;—

गाथा—इम धाइकम्ममुको अटारहदोसवज्जियो सयलो ।

तिहुवणभवणपदीवो देऊ मम उत्तमं बोहिं ॥१५२॥

संस्कृत—इति धातिकर्ममुक्तः अष्टादशदोषवर्जितः सकलः ।

त्रिभुवनभवनप्रदीपः ददातु मह्यं उत्तमां बोधिम् १५२

अर्थ—इति कहिये ऐसैं धाति कर्मनिकरि रहित क्षुधा तृप्ता आदि
पूर्वोक्त अठारह दोषनिकरि वर्जित सकल कहिये शरीरसहित अर तीन
भुवनरूपी भवनके प्रकाशनेकूं प्रकृष्टदीपक तुल्य देव है सो मोकूं उत्तम
बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति द्यो, ऐसैं आचार्यने प्रार्थना
करी है ॥

भावार्थ—इहां और तौ पूर्वोक्त प्रकार जाननां, अर सकल विशेषण
है ताका यह आशय है जो मोक्षमार्गी प्रवृत्तिके उपदेशके वचन प्रवर्तैं
बिना न होय अर वचनकी प्रवृत्ति शरीर बिना न होय तातैं अरहंतका
आयुर्कर्मका उदयतैं शरीरसहित अवस्थान रहै है, अर सुस्वर आदि
नामकर्मके उदयतैं वचनकी प्रवृत्ति होय है, ऐसैं अनेक जीवैनिका
कल्याण करनेवाला उपदेश प्रततैं है । अन्यमतीनिकै ऐसा अवस्थान
परमात्माकै संभवै नाहीं तातैं उपदेशकी प्रवृत्ति न बणै तब मोक्षमार्गीका
उपदेश भी न प्रवर्तैं ऐसैं जाननां ॥ १५२ ॥

आगैं कहै है—जे ऐसे अरहंत जिनेश्वरके चरणानिकूं नमैं हैं ते संसारकी जन्मरूप वेलिकूं काटै है,—

गाथा—जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभक्तिराएण ।

ते जम्मवेलिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥१५३॥

संस्कृत—जिनवरचरणांबुरुहं नमंति ये परमभक्तिरागेण ।

ते जन्मवल्लीमूलं खनंति वरभावशस्त्रेण ॥१५३॥

अर्थ—जे पुरुष परमभक्ति अनुरागकारि जिनवरके चरण कमलनिकूं नमैं हैं ते श्रेष्ठभावरूप शस्त्रकारि जन्म कहिये संसार सोई भई वेलि ताका मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म ताहि खणैं हैं खादि डारैं हैं ॥

भावार्थ—अपनी जो श्रद्धा रुचि प्रतीति ताकारि जिनेश्वर देवकूं नमैं हैं ताका सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपणांकूं जाणि भक्तिके अनु-रागकारि नमस्कार करैं हैं, तब जाणिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ताका ये चिह्न है तातैं जाणिये याकै मिथ्यात्वका नाश भया, अब आगामी संसारकी वृद्धि याकै न होयगी—ऐसा जनाया है ॥ १५३ ॥

आगैं कहै है जो—जिनसम्यक्त्वकूं प्राप्त भया पुरुष है सो आगामी कर्मकारि न लिपै है,—

गाथा—जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।

तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सत्पुुरिसो १५४

संस्कृत—यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्रं स्वभावप्रकृत्या ।

तथा भावेन न लिप्यते कषायविषयैः सत्पुरुषः १५४

अर्थ—जैसैं कमलिनीका पत्र है सो अपने प्रकृतिस्वभावकारि जल-कारि नाहीं लिपै है तैसैं सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष है सो अपने भावकारि क्रोधा-दिक कषाय अर इन्द्रियके विषय इनिकारि नाहीं लिपै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुषकै मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीकषायका तौ सर्वथा अभावही है अन्य कषायका यथासंभव अभाव है, तहां मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके अभावतैं ऐसा भाव होय है । जो परद्रव्यमात्रका तौ कर्त्तापणांकी बुद्धि नांही है अर अब शेष कषायके उदयतैं कछू राग द्वेष प्रवर्तैं है तिनिकूं कर्मके उदयके निमित्ततैं भये जानै है तातैं तिनिविषैं भी कर्त्तापणांकी बुद्धि नांही है तथापि तिनि भावनिकूं रोगवत् भये जाणि भले न जाणै है; ऐसे भाव करि कषाय विषयनितैं प्रीति बुद्धि नांही तातैं तिनितैं न लिपै हैं, जलकमलवत् निर्लेप रहै है । यातैं आगामी कर्मका बंध न होय है संसारकी वृद्धि नांही होय है, ऐसा आशय जाननां ॥ १५४ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो—जे पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष हैं ते ही सकल शील संयमादि गुणनिकरि संयुक्त हैं, अन्य नांही;—

गाथा—ते वि य भणामिहं जे सयलकलाशीलसंजमगुणोहिं ।

बहुदोषाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ॥

संस्कृत—तान् अपि च भणामि ये सकलकलाशीलसंयमगुणैः ।

बहुदोषाणामावासः सुमलिनचित्तः न श्रावकसमःसः॥

अर्थ—पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी पुरुष हैं अर शील संयम गुणनिकरि सकल कला कहिये संपूर्ण कलावान होय हैं, तिनिहीकूं हम मुनि कहैं हैं । बहुरि जो सम्यग्दृष्टी नांही है मलिनचित्तकरि सहित मिथ्यादृष्टी है अर बहुत दोषनिका आवास है ठिकाणां है सो तौ भेष धारै है तौऊ श्रावकसमानभी नांही है ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी है अर शील कहिये उत्तर गुण अर संयम कहिये मूलगुण तिनिकरि सहित है सो मुनि है । अर जो मिथ्यादृष्टी

कहिये भिष्यात्वकरि जाका चित्त मलिन है अर क्रोवादि विकाररूप बहुत दोष जाँमें पाइये है सो तौ मुनिभेष धारै है तौऊ श्रावकसमानभी नांही है, श्रावक सम्यग्दृष्टी होय अर गृहस्थाचारके पापनिकारि सहित होय तौऊ जिस बराबरि केवल भेषी मुनि नांही है, ऐसैं आचार्य कहै है ॥ १५५ ॥

आगैं कहै है जो—सम्यग्दृष्टी होयकरि जिनिनैं कषायरूप सुभट जीते तेही धीर बीर हैं;—

गाथा—ते धीरवीरपुरिसा खमदमखगेण विष्फुरंतेण ।

दुज्जयपवलबलुद्धरकसायभट णिज्जिया जेहिं ॥१५६॥

संस्कृत—ते धीरवीरपुरुषाः क्षमादमखङ्गेण विस्फुरता ।

दुर्जयप्रबलबलोद्धतकषायभटाः निर्जिता यैः ॥१५६॥

अर्थ—ज्यां पुरुषां क्षमा अर इंद्रियनिका दमन सो ही भया विस्फुरता कहिये सवाग्या हूवा मलिनता रहित उज्ज्वल तीक्ष्ण खड्ग ताकरि जिनिका जीतनां कठिन ऐसे दुर्जय अर प्रबल बलकरि उद्धत ऐसे कषायरूप सुभटनिकूं जीतैं ते धीरवीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिकमें जीतैं ते कहबेके सुभट हैं ॥

भाषार्थ—युद्धमें जीतनेवाले शूरवीर तौ लोकमें बहुत हैं अर जे कषायनिकूं जीतैं हैं ते विरले हैं ते मुनिप्रधान हैं ते ही शूरवीरनिमें प्रधान हैं, जे सम्यग्दृष्टी होय कषायनिकूं जीति चारित्रवान होय हैं ते मोक्ष पावैं हैं; यह आशय है ॥ १५६ ॥

आगैं कहै है जो—जे आप दर्शन ज्ञान चारित्ररूप होय अन्यकूं तिनिसहित करैं ते धन्य है,—

गाथा—धणा ते भयवंता दंसणणाणमापवरहत्थेहिं ।

विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ॥१५७॥

संस्कृत—ते धन्याः भगवंतः दर्शनज्ञानाग्रप्रवरहस्तैः ।

विषयमकरधरपतिताः भव्याः उत्तारिताः यैः ॥१५७॥

अर्थ—ज्यां सत्पुरुषां विषयरूप मकरधर जो समुद्र तावियै पड्या जे भव्यजीव तिनिक्कू पार उतान्या, काहेकरि दर्शन अर ज्ञान तेही भये अग्र मुख्य दोय हाथ तिनिकरि उतारे, ते मुनि प्रधान भगवान इन्द्रादिककरि पूज्य ज्ञानी धन्य हैं ॥

भावार्थ—इस संसार समुद्रतैं आप तिरै अर अन्यक्कू त्यारैं ते मुनि धन्य है । धनादिक सामग्रीसहितक्कू धन्य कहिये हैं ते कहबेके धन्य हैं ॥ १५७ ॥

आगैं फेरि ऐसे मुनिनिकी महिमा करै है,—

गाथा—मायावेलि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा ।

विसयविसपुष्पफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं १५८

संस्कृत—मायावल्लीं अशेषां मोहमहातरुवरे आरूढाम् ।

विषयविषपुष्पपुष्पितां लुनंति मुनयः ज्ञानशस्त्रैः १५८

अर्थ—मुनि हैं ते माया कहिये कपटरूपी वेलि है ताहि ज्ञानरूपी शस्त्रकरि समस्तक्कू काटैं हैं, कैसी है मायावेलि मोह रूपी जो महा बडा वृक्ष तापरि आरूढ है चढी है, बडुरि कैसी है विषयरूपी विषके पुष्प-निकरि फुलि रही हैं ॥

भावार्थ—यह मायाकपाय है सो गूढ है याका विस्तार भी बहुत है मुनिनि तार्ई फैलै है, तातैं जे मुनि ज्ञानकरि याक्कू काटैं हैं ते सांचे मुनि हैं, तेही मोक्ष पावै हैं ॥ १५८ ॥

आकाशगामिनी आदिशक्ति जिनिकै पाइये तिनिकी शक्ति इनिकूं प्राप्त भये ॥

भावार्थ—पूर्वै ऐसे निर्मल भावके धारक पुरुष भये ते ऐसी पदवीके सुखनिकूं प्राप्त भये, अब ते ऐसे होंहिगे ते पावैंगे, ऐसैं जाननां ॥१६१॥

आगैं कहै है मुक्तिका सुख भी ऐसे ही पावैं हैं;—

गाथा—सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमंपरमविमलमतुलं ।

पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

संस्कृत—शिवमजरामरलिंगं अनुपममुत्तमं परमविमलमतुलम् ।

प्राप्तो वरसिद्धिसुखं जिनभावनाभाविता जीवाः॥१६२॥

अर्थ—जे जिनभावनाकरि भावित सहित जीव हैं तेही सिद्धि कहि ये मोक्ष ताके सुखकूं पावैं हैं, कैसा है सिद्धिसुख—शिव है कल्याणरूप है काहु प्रकार उपद्रवसहित नाहीं है, बहुरि कैसा है—अजरामरलिंग है वृद्ध होनां अर मरनां इनि दोऊनितैं रहित है लिंग कहिये चिह्न नाका बहुरि कैसा है अनुपम है जाके संसारीक सुखकी उपमा लागै नाहीं, बहुरि कैसा है उत्तम कहिये सर्वोत्तम है बहुरि परम कहिये सर्वोत्कृष्ट है, बहुरि कैसा है—महार्थ है महान् अर्थ पूज्य प्रशंसायोग्य है, बहुरि कैसा है विमल है कर्मके मल तथा रागादिकमलकरि रहित है, बहुरि कैसा है अतुल है याकी बराबर संसारीक सुख नाहीं; ऐसा सुखकूं जिनभक्त पावै है, अन्यका भक्त न पावैं है ॥ १६२ ॥

आगैं आचार्य प्रार्थना करै है जो ऐसे सिद्धिसुखकूं प्राप्त भये सिद्ध भगवान ते मोकूं भावकी शुद्धताकूं द्यो;

गाथा—ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा गिरंजणा गिद्धा ।

दितु बरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य ॥१६३॥

संस्कृत—ते मे त्रिभुवनमहिताः सिद्धाः शुद्धाः निरंजनाः नित्याः ।
ददतु वरभावशुद्धिं दर्शने ज्ञाने चारित्र्ये च ॥१६३॥

अर्थ—सिद्ध भगवान हैं ते मोक्ष दर्शन ज्ञान विषय और चारित्र्यविषय श्रेष्ठ उत्तमभावकी शुद्धता दो, कैसे हैं सिद्ध भगवान तीन भवनकरि पूजनीक है, बहुरि कैसे हैं—शुद्ध हैं द्रव्यकर्म नोकर्मरूप मलकरि रहित हैं, बहुरि कैसे हैं—निरंजन हैं रागादिकर्म करि राहेत हैं, बहुरि जिनके कर्मका उपजनां नाही हैं, बहुरि कैसे हैं नित्य हैं पाये स्वभावका फेरि नाश नाही है ।

भावार्थ—आचार्य शुद्धभावका फल सिद्ध अवस्था, अर जे निश्चय करि इस फलक प्राप्त भये सिद्ध, तिनितैं यही प्रार्थना करी है जो शुद्ध भावकी पूर्णता हमारे होइ ॥ १६३ ॥

आगै भावके कथनक संकोच है;—

गाथा—किं जंपिण्य बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो य ।
अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ॥१६४॥
संस्कृत—किं जल्पितेन बहुना अर्थः धर्मः च काममोक्षः च ।
अन्ये अपि च व्यापाराः भावे परिस्थिताः सर्वे १६४

अर्थ—आचार्य कहें हैं जो बहुत कहने करि कहा ? धर्म अर्थ काम मोक्ष बहुरि अन्य जो किछू व्यापार हैं सो सर्वही शुद्धभावके विषय समस्त-पणांकरि तिष्ठता है ॥

भावार्थ—पुरुषके व्यापार प्रयोजन प्रधान हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । बहुरि अन्यभी जो किछू मंत्रसाधनादिक व्यापार हैं ते आत्माके शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भावविषय तिष्ठैं हैं, शुद्धभावतैं सर्व सिद्धि है ऐसा संक्षेपकरि कहनां जाणों, बहुत कहा कहना ? ॥ १६४ ॥

आगे इस भावपाहुडकूं पूर्ण करै है ताका पढनें सुननें भावनें का उपदेश करै है,—

गाथा—इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं ।

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ॥१६५

संस्कृत—इति भावप्राभृतमिदं सर्वबुद्धैः देशितं सम्यक् ।

यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति

अविचलं स्थानम् ॥१६५॥

अर्थ—इति कहिये या प्रकार या भावपाहुडकूं सर्वबुद्ध जे सर्वज्ञदेव तिनिनै उपदेश्या है सो याकूं जो भव्यजीव सम्यक् प्रकार पढ़ै सुनै याकूं भावै सो शाश्वता सुखका स्थानक जो मोक्ष ताहि पावै है ॥

भावार्थ—यह भावपाहुड ग्रंथ है सो सर्वज्ञकी परंपराकरि अर्थ ले आचार्यनै कहा है तातैं सर्वज्ञहीका उपदेश्या है, केवल छद्मस्थहीका कहा नाहीं है तातैं आचार्य अपनां कर्तव्य प्रधानकारि न कहा है । अर याके पढनें सुननेंका फल मोक्ष कहा सो युक्तही है शुद्धभावतैं मोक्ष होय हं अर याके पढे शुद्धभाव होय हैं, ऐसैं परंपरा मोक्षका कारण याका पढनां सुननां धारणां भावना करनां हैं । तातैं भव्यजीव हैं ते या भावपाहुडकूं पढ़ौ सुनौ सुनावौ भावौ निरंतर अभ्यास करौ ज्यों शुद्धभाव होय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्णताकूं पाय मोक्ष पावौ तहां परमानंदरूप शाश्वतासुखकूं भोगवौ ॥

ऐसैं श्रीकुंदकुन्दनामा आचार्य भावपाहुडग्रंथ पूर्ण किया ।

याका संक्षेप ऐसा है जो—जीवनामा वस्तुका एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतनास्वभाव है । ताकी शुद्ध अशुद्ध दोय परणति हैं—तहां शुद्धदर्शनज्ञानोपयोगरूप परिणमनां सो तौ शुद्ध परिणति है याकूं शुद्ध-

भाव कहिये है । बहुरि कर्मके निमित्ततैं राग द्वेष मोहादिक विभावरूप परिणमनां सो अशुद्धपरणति है याकूं अशुद्ध भाव कहिये । तहां कर्मका निमित्त अनादितैं है तातैं अशुद्धभावरूप अनादिहीतैं परिणमै है, तिस भावतैं शुभ अशुभ कर्मका बंध होय है तिस बंधके उदयतैं फेरि अशुद्धभावरूप परिणमै है अनादिसंतान चल्या आवै है । तहां जब इष्टदेवतादिककी भक्ति जीवनिकी दया उपकार मंदकप्रायरूप परिणमै तब तौ शुभकर्मका बंध करै है, ताके निमित्ततैं देवादिक पर्याय पाय किछू सुखी होय है । बहुरि तब विषय कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमै तब पापका बंध करै है, ताके उदयतैं नरकादिक पर्याय पाय दुःखी होय है । ऐसैं संसारमें अशुद्धभावतैं अनादितैं यहू जीव भ्रमै हैं, बहुरि जब कोई काल ऐसा आवै जायैं जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ वीतरागका उपदेशकी प्राप्ति होय अर ताका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करै तब अपनां अर परका भेदज्ञानकरि शुद्ध अशुद्ध भावका स्वरूप जांणि अपनां हित अहितका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण होय तब शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतनाका परिणमनकूं तौ हित जानैं ताका फल संसारकी निवृत्ति है ताकूं जानैं, अर अशुद्धभावका फल संसार है ताकूं जानैं, तब शुद्धभावका अंगीकार अर अशुद्ध भावका त्यागका उपाय करै । तहां उपायका स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतरागके आगममें कह्या है तैसैं करै— तहां ताका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र-स्वरूप मोक्षमार्ग कह्या हैं । तहां निश्चय तौ शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान ज्ञान चारित्रिकूं कह्या हैं अर व्यवहार जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा ताके वचन तथा तिनि वचनानिकें अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि श्रावक तिनिकी भक्ति वंदनां विनय बैयावृत्त्य करै, सो है, जातैं ये मोक्षमार्गमें प्रवर्तानेकूं उपकारी हैं उपकारीका माननां न्याय है उपकार

लोपनां अन्याय है। बहुरि स्वरूपके साधक अहिंसा आदि महाव्रत अर
रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति समिति गुप्तिरूप प्रवर्तनां, अर इनिविषै दोष लगे
अपनी निन्दा गर्हादिक करनां, गुह्यनिका दिया प्रायश्चित्त लेनां, शक्ति-
सारू तप करनां, परीषह सहनां, दशलक्षण धर्म विषै प्रवर्तनां इत्यादि
शुद्धात्माकै अनुकूल क्रियारूप प्रवर्तनां, इनिमै किछू रागका अंश रहै
जेतै शुभकर्मका बंध होय है तौऊ सो प्रधान नाहीं आतैं इनिमै प्रवर्तनें
वालेकै शुभकर्मके फलकी इच्छा नाहीं है तातैं, अबंधतुल्य है; इत्यादि
प्रवृत्ति आगमोक्त व्यवहार मोक्षमार्ग है यामै प्रवृत्तिरूप परिणामैं है तौऊ
निवृत्तिप्रधान हैं तातैं निश्चय मोक्षमार्गमै विरोध नाहीं है। ऐसैं निश्चय-
व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्गका संक्षेप है, याहीकू शुद्ध भाव कहा है तहां
भी यामै सम्यग्दर्शन प्रधानकरि कहा है जातैं सम्यग्दर्शनविना सर्व
व्यवहार मोक्षका कारण नाहीं, अर सम्यग्दर्शनका व्यवहारमै जिनदेवकी
भक्ति प्रधान है, यह सम्यग्दर्शनके जनावनेकूं मुख्य चिह्न है तातैं जिन-
भक्ति निरंतर करनीं, अर जिनआज्ञा मानि आगमोक्त मार्गमै प्रवर्तनां
यह श्रीगुह्यनिका उपदेश है, अन्य जिन आज्ञा सिवाय सर्व कुमार्ग हैं
तिनिका प्रसंग छोडनां, ऐसैं करे आत्मकल्याण होय है ॥

छप्पय ।

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै,
कर्म निमित्तकूं पाय अशुद्धभावानि विस्तारै ।
कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै,
पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै ॥
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब ।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब ॥

दोहा ।

मंगलमय परमात्मा शुद्धभाव अविकार ।

नमूं पाय पाऊं स्वपद जाचूं यहै करार ॥२॥

नि श्री जयचन्द्रस्वामि विरचित मोक्षप्राप्तकी ।

जयचन्द्रजीवावधारित-

भावपाहुडवचनिका समाप्त ॥ ५ ॥

अथ मोक्षपाहुड ।

—:—

[६]

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ मोक्षपाहुडकी वचनिका लिख्यते ।

तहां प्रथमही मंगलकै अर्थ सिद्धनिक्क नमस्कार करै है;—

दोहा ।

अष्ट कर्मको नाश करि शुद्ध अष्ट गुण पाय ।

भये सिद्ध निज ध्यानतैं नमूं मोक्षसुखदाय ॥१॥

ऐसैं मंगलकै अर्थ सिद्धनिक्क नमस्कारकरि अर श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत मोक्षपाहुडग्रंथ प्राकृत गाथाबंध है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है । तहां प्रथम ही आचार्य मंगलकै अर्थ परमात्माकूं नमस्कार करै है;—

गाथा—णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियक्कम्मेण ।

चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स ॥१॥

संस्कृत—ज्ञानमय आत्मा उपलब्धः येन क्षरितः मयी ।

त्यक्त्वा च परद्रव्यं नमो नमस्तस्मै देवाय ॥१॥

अर्थ—आचार्य कह है जो—जानैं परद्रव्यकूं छोड़करि क्षणितकर्म कहिये खिरै हैं द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म जाकैं ऐसा होयकरि अर ज्ञानमयी आत्माकूं पाया, ऐसे देवके अर्थ हमारा नमस्कार होइ नमस्कार होइ । दोय बार कहनेमें अतिप्रीतियुक्त भाव जनाये हैं ॥

भावार्थ—इहां मोक्षपाडुडका प्रारंभ है तहां जिननै समस्त परद्रव्यकूं छोडि कर्मका अभावकरि केवलज्ञानानंद स्वरूप मोक्षपद पाया तिस देवकूं मंगलकै आर्थ नमस्कार किया सो यह युक्त है, जहां जैसा प्रकरण तहां तैसी योग्यता । इहां भावमोक्षतौ अरहंतकै, अर द्रव्यभावकरि दोऊ प्रकार सिद्ध परमेष्ठीकै हें यातैं दोऊकूं नमस्कार जाननां ॥ १ ॥

आगैं ऐसैं नमस्कार करि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करै हें;—

गाथा—णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणंदंसणं सुद्धं ।

वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं ॥२॥

संस्कृत—नत्वा च तं देवं अनंतवरज्ञानदर्शनं शुद्धम् ।

वक्ष्ये परमात्मानं परमपदं परमयोगिनाम् ॥२॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—तिस पूर्वोक्त देवकूं नमस्कारकरि अर परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा ताहि परम योगीश्वर जे उत्कृष्ट योग्य ध्यानके धरनहारे मुनिराज तिनि प्रति कहूंगा, कैसा है पूर्वोक्त देव—अनंत अर श्रेष्ठ जो ज्ञानदर्शन ते जाकैं पाइये है, बहुरि विशुद्ध है कर्म-मलकरि रहित है, अथवा कैसा है परमात्मा अनंत है वर कहिये श्रेष्ठ है ज्ञान अर दर्शन जाभैं, बहुरि कैसा है—परम उत्कृष्ट है पद जाका ॥

भावार्थ—इस ग्रंथमें मोक्षकूं जिस कारणतैं पावैं अर जैसा मोक्षपद है तैसाका वर्णन करियेगा, तिस रीति तिसहीकी प्रतिज्ञा करी है । बहुरि योगीश्वरनिप्रति कहियेगा, याका आशय यह है जो—ऐसे मोक्षपदकूं शुद्ध परमात्माका ध्यानतैं पाइये है, तहां तिस ध्यानकी योग्यता योगी-श्वरनिकै ही प्रधान है, गृहस्थनिकै यह ध्यान प्रधान नांही ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो—जिस परमात्माकूं कहनेकी प्रतिज्ञा करी है तिसकूं योगी ध्यानी मुनि जाणि तिसकूं ध्याय परम पद पावै है;—

गाथा—जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं ।

अव्वावाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं ॥३॥

संस्कृत—यत् ज्ञात्वा योगी योगस्थः दृष्ट्वा अनवरतम् ।

अव्याबाधमनंतं अनुपमं लभते निर्वाणम् ॥३॥

अर्थ—आगैं कहैंगे जो परमात्मा ताकूं जानिकरि योगी जो मुनि सो योग जो ध्यान ताविषैं तिष्ठया हूवा निरन्तर तिस परमात्माकूं अनुभव-गोचरकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है, कैसा है निर्वाण—अव्याबाध है जहां काहू प्रकारकी बाधा नाहीं है, बहुरि कैसा है—अनंत है जाका नाश नाहीं है, बहुरि कैसा है—अनुपम है जाकूं काहूकी उपमा लागै नाहीं ॥

भावार्थ—आचार्य कहैं है ऐसे परमात्माकूं आगैं कहियेगा तिसकूं ध्यानविषैं मुनि निरन्तर अनुभवन करि अर केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं पावै । इहां यह तात्पर्य है—जो परमात्माका ध्यानतैं मोक्ष होय है ॥३॥

आगैं परमात्मा कैसा है—ऐसैं जनावनेकैं अर्थ आत्माकूं तीन प्रकार-करि दिखावै है;—

गाथा—तिपयारो सो अप्पा परमंतरवाहिरो हुं देहीणं ।

तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा ॥४॥

संस्कृत—त्रिप्रकारः स आत्मा परमन्तः बहिः स्फुटं देहिनाम् ।

तत्र परं ध्यायते अन्तरूपायेन त्यज बहिरात्मानं ॥४॥

अर्थ—सो आत्मा प्राणीनिकै तीन प्रकार है—अंतरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा, ऐसैं । तहां अन्तरात्माके उपायकरि बहिरात्माकूं छोडिकरि परमात्माकूं ध्यायजे ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'हु हेऊण' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'हु हित्वा' की है ।

भावार्थ—बहिरात्माकू छोडि अंतरात्मारूप होय परमात्माकू ध्यावनां, यातैं मोक्ष होय है ॥४॥

आगैं तीन प्रकार आत्माका स्वरूप दिखावै है;—

गाथा—अक्खाणि वाहिरप्पा अंतरप्पा हु अप्पसंकप्पो ।

कम्मकलंकविमुक्तो परमप्पा भण्णए देवो ॥५॥

संस्कृत—अक्षाणि वहिरात्मा अन्तरात्मा स्फुटं आत्मसंकल्पः ।

कर्मकलंकविमुक्तः परमात्मा भण्यते देवः ॥ ५ ॥

अर्थ—अक्ष जे इंद्रिय स्पर्शनादिक तेतौ बाह्य आत्मा हैं जातैं इंद्रियनिकरि स्पर्श आदि विषयनिका ज्ञान होय तब लोक कहैं ऐसैं ही जो इंद्रिय है सो ही आत्मा है, ऐसैं जो इंद्रियनिकू वाद्य आत्मा कहिये । बहुरि अंतरात्मा हें सो अन्तरंगविषैं आत्माका प्रगट अनुभवगोचर संकल्प है, शरीर इंद्रियनितैं न्यारा मनकैं द्वार देखनैं जाननैवाला हें सो मैं हूं, ऐसैं स्वसंवेदनगोचर संकल्प सो ही अन्तरात्मा हें । बहुरि कर्म जो द्रव्य-कर्म ज्ञानावस्थादिक अर भावकर्म राग द्वेष मोहादिक नोकर्म शरीरादिक सो ही भया कलंकमल तिसकरि विमुक्त रहित अनंतज्ञानादिकगुणसहित सो ही परमात्मा है, सो ही देव है, अन्यकू देव कहनां उपचार हें ॥

भावार्थ—बाह्य आत्मा तौ इंद्रियनिकू कहा, अर अंतरात्मा देहमें तिष्ठता देखनां जाननां जाकै पाइये ऐसा मनकैं द्वारै संकल्प सो हें, बहुरि परमात्मा कर्मकलंकसूं रहित कहा । सो इहां ऐसा जनाया है जो—यह जीवही जेतैं बाह्य शरीरादिकहाकू आत्मा जानै है तेतैं तौ बहिरात्मा है संसारी है, बहुरि जब येही जीव अंतरंगविषैं आत्माकू जानै हें तब यह सम्यग्दृष्टी होय है तब अंतरात्मा है, अर यह जीव जब परमात्माका ध्यान करि कर्मकलंकसूं रहित होय तब पहलै तौ केवलज्ञान उपजाय

अरहंत होय है, पीछें सिद्धपदकूं पावै है, इनि दोऊहीकूं परमात्मा कहिये है । अरहंत तौ भावकअंकरहित हैं अर सिद्ध द्रव्यभावरूप दोऊ प्रकार कलंक रहित है, ऐसैं जाननां ॥ ५ ॥

आगैं तिस परमात्माका विशेषणकरि स्वरूप कहै है,—

गाथा—मलरहिओ कलचत्तो अणिदिओ केवलो विसुद्धप्पा ।

परमेष्टी परमजिणो सिंवंकरो सामओ सिद्धो ॥६॥

संस्कृत—मलरहितः कलत्यक्तः अनिद्रियः केवलः विशुद्धात्मा ।

परमेष्ठी परमजिनः शिवंकरः शाश्वतः सिद्धः ॥६॥

अर्थ—परमात्मा ऐसाहै—प्रथम तौ मलरहित है द्रव्यकर्म भावकर्मरूप-मलकीर रहित हैं, बहुरि कलत्यक्त कहिये शरीरकीर रहित है, बहुरि अनिद्रिय कहिये इन्द्रियनिकरि रहित है अथवा अनिद्रित कहिये काहू प्रकार निंदायुक्त नाहीं हैं सर्व प्रकार प्रशंसा योग्य हैं, बहुरि केवल कहिये केवलज्ञानमयी हैं, बहुरि विशुद्धात्मा कहिये विशेष करि शुद्ध हैं आत्मा स्वरूप जाका, ज्ञानमें ज्ञेयके आकार प्रतिभासैं हैं तौहू तिनस्वरूप न हो है तथापि तिनितैं रागद्वेष नाहीं है, बहुरि परमेष्टी है परमपदविपै तिष्ठै है, बहुरि परम जिन हैं सर्व कर्मकूं जीतैं है, बहुरि शिवंकर है भव्य जीवनिकें परम मंगल तथा मोक्षकूं करैं है, बहुरि शाश्वता है अविनाशी है, बहुरि सिद्ध है अपने स्वरूपकी सिद्धिकरि निर्वाणपदकूं प्राप्त भये हैं ॥

भावार्थ—ऐसा परमात्मा है, ऐसे परमात्माका ध्यान करै सो ऐसाही होय है ॥ ६ ॥

आगैं सो ही उपदेश करै है;—

गाथा—आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण ।

झाइज्जइ परमप्पा उवइहं जिणवरिदेहिं ॥७॥

संस्कृत—आरुह्य अंतरात्मानं बहिरात्मानं त्यक्त्वा त्रिविधेन ।

ध्यायते परमात्मा उपदिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥७॥

अर्थ—बहिरात्माकूं मन वचन कायकरि छोडि अन्तरात्माका आश्रय लेयकरि परमात्माकूं ध्यायजे, यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेवनिनै उप-
देस्या है ॥

भावार्थ—परमात्माका ध्यान करनेका उपदेश प्रधान करि कहा है
यातैं मोक्ष पावै है ॥ ७ ॥

आगैं बहिरात्माकी प्रवृत्ति कहै है;—

गाथा—बहिरत्ये फुरियमणो इंदियदारेण णियसरुवचओ ।

णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ ॥८॥

संस्कृत—बहिरर्थे स्फुरितमनाः इन्द्रियद्वारेण निजस्वरूपच्युतः ।

निजदेहं आत्मानं अध्यवस्यति मूढदृष्टिस्तु ॥८॥

अर्थ—मूढदृष्टी अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टी है सो बाह्य पदार्थ जे धन धान्य कुटुंब आदि इष्ट पदार्थ तिनिविषैं स्फुरित है तत्पर है मन जाका, बहुरि इन्द्रियका द्वार करि अपने स्वरूपतैं च्युत है इन्द्रियनिकूं ही आत्मा जानै है, ऐसा भया संता अपनां देह है ताहींकूं आत्मा जानै है निश्चय करै है; ऐसा मिथ्यादृष्टी बहिरात्मा है ॥

भावार्थ—ऐसा बहिरात्माका भाव है ताकूं छोडनां ॥ ८ ॥

आगैं कहै है जो—मिथ्यादृष्टी अपनां देह सारिखा पर देहकूं देखि तिसकूं परका आत्मा मानै है;—

गाथा—णियदेहसरित्थं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण ।

अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएण ॥९॥

संस्कृत—निजदेहसदृशं दृष्ट्वा परविग्रहं प्रयत्नेन ।

अचेतनं अपि गृहीतं ध्यायते परमभावेन ॥९॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टी पुरुष अपनां देह सारिखा परका देहकूं देखिकरि यह देह अचेतन है तौऊ मिथ्याभावकरि आत्मभावकरि बड़ा यत्न करि परका आत्मा ध्यावै है ॥

भावार्थ—बहिरात्मा मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वकर्मका उदयकरि मिथ्या-भाव है सो आपनां देहकूं आपा जानै है तैसैही परका देह अचेतन है तौऊ ताकूं परका आत्मा जानि ध्यावै है मानै है तामैं बड़ा यत्न करै है यातैं ऐसे भावकूं छोड़नां यह तात्पर्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो ऐसीही मानितीं पर मनुष्यदिविषैं मोह प्रवर्तै है;—

गाथा—सपरज्जवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं ।

सुयदाराईविमए मणुयाणं बड्डए मोहो ॥१०॥

संस्कृत—स्वपराध्यवसायेन देहेषु च अविदितार्थमात्मानम् ।

सुतदारादिविषये मनुजानां वर्द्धते मोहः ॥१०॥

अर्थ—ऐसे देहविषैं स्वपरका अध्यवसाय कहिये निश्चय ताकरि मनुष्यनिकै सुत दारादिक जीवनिविषैं मोह प्रवर्तै है, कैसे हैं मनुष्य—अविदित कहिये नांहीं जान्यां हैं अर्थ कहिये पदार्थ ताका आत्मा कहिये स्वरूप ज्यां ॥

भावार्थ—जिनि मनुष्यानिनैं जीव अजीव पदार्थक स्वरूप यथार्थ, न जाण्यां तिनिनैं देहविषैं स्वपराव्यवसाय है अपनां देहकूं आपका आत्मा जानै है अर परका देहकूं परका आत्मा जानै है तिनिनैं पुत्र स्त्री आदि कुटुंबविषैं मोह ममत्व होय है, जब जीव अजीवका स्वरूप जानै तब देहकूं अजीव मानै, आत्मकूं अमूर्ताक चेतन जानै आपनां आत्माकूं

आपा मानै परका आत्माकूं पर जानै, तब परविषै ममत्व नांही होय । तातै जीवादिक पदार्थका स्वरूप नीकै जानि मोह न करनां यह जनाया है ॥ १० ॥

आगै कहै है जो—मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञान अर मिथ्याभाव होय है ताकरि आगामी भवविषै भी यह मनुष्य देहकूं चाहै है,—

गाथा—मिच्छाणाणेषु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो ।

मोहोदाएण पुणरवि अंगं संम्मण्णए मणुओ ॥११॥

संस्कृत—मिथ्याज्ञानेषु रतः मिथ्याभावेन भावितः सन् ।

मोहोदयेन पुनरपि अंगं मन्यते मनुजः ॥११॥

अर्थ—यह मनुष्य है सो मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञानकरि मिथ्याभावकरि भाया संता फेरि भी आगामी जन्मविषै इस अंगकूं देहकूं सन्मानै है भला मानि चाहै है ॥

भावार्थ—मोहकर्मकी प्रकृति जो मिथ्यात्व ताके उदयकरि ज्ञानभी मिथ्या होय है परद्रव्यकूं अपनां जानै है, बहुगि तिस मिथ्यात्वहीकरि मिथ्या श्रद्धान होय है ताकरि निरन्तर परद्रव्य विषै यह भावना रहै है जो—यह मेरै सदा प्राप्त होहू, यातै यह प्राणी आगामी देहकूं भला जाणि चाहै है ॥ ११ ॥

आगै कहै है—जो मुनि देहविषै निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै है यामै ममत्व न करै है सो निर्वाणकूं पावै है,—

गाथा—जो देहे णिरवेक्खो णिदंदो णिम्ममो णिरारंभो ।

आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥१२॥

१—सुद्धित सं. प्रतिमें 'सं मण्णए' ऐसा प्राकृतपाठ जिसका 'स्वं मन्यते' ऐसा संस्कृत पाठ है ।

संस्कृत—यः देहे निरपेक्षः निर्द्वन्द्वः निर्ममः निरारंभः ।

आत्मस्वभावे सुरतः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥१२॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि, देहविषै निरपेक्ष है देहकूं नाहीं चाहै है उदासीन है, बहुरि निर्द्वन्द्व है राग द्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मानितैं रहित है, बहुरि निर्ममत्व है देहादिक विषै 'यह मेरा' ऐसी बुद्धितैं रहित है, बहुरि निरारंभ है या देहकै अर्थ तथा अन्य लौकिक प्रयोजनकै अर्थ आरंभतैं रहित है, बहुरि आत्मस्वभावविषै रत है लीन है निरन्तर स्वभावकी भावनासहित है सो मुनि निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—जो बहिरात्माके भावकूं छोडि अन्तरात्मा होय परमात्मामैं लीन होय है सो मोक्ष पावै है । यह उपदेश जनाया है ॥ १२ ॥

आगैं बंधका अर मोक्षका कारणका संक्षेपरूप आगमका वचन कहै है;—

गाथा—परद्रव्यरओ वज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मोहिं ।

एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ॥१३॥

संस्कृत—परद्रव्यरतः बध्यते विरतः मुच्यते विविधकर्मभिः ।

एषः जिनोपदेशः समासतः बंधमोक्षस्य ॥१३॥

अर्थ—जो जीव परद्रव्यविषै रत है रागी है सो तौ अनेक प्रकारके कर्मनिकरि बंधै है कर्मनिका बंध करै है, बहुरि जो परद्रव्यविषै विरत है रागी नाहीं है सो अनेक प्रकारके कर्मनितैं छूटै है, यह बंधका अर मोक्षका संक्षेपकरि जिनदेवकां उपदेश है ॥

भावार्थ—बंध मोक्षके कारणकी कथनी अनेक प्रकार करि है ताका यह संक्षेप है—जो परद्रव्यसूं रागभाव सो तौ बंधका कारण अर विरागभाव सो मोक्षका कारण है, ऐसा संक्षेपकरि जिनेन्द्रका उपदेश है ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो स्वद्रव्यविषै रत है सो सम्यग्दृष्टी होय है अर कर्मका नाश करै है;—

गाथा—सद्व्वरओ सवणो सम्माइटी हवेइ सो साहु ।

सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुँदुदकम्माइं ॥१४॥

संस्कृत—स्वदव्यरतः श्रमणः सम्यग्दृष्टिः भवति सः साधुः ।

सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति दुष्टाष्टकर्मणि ॥१४॥

अर्थ—जो मुनि स्वद्रव्य जो अपनां आत्मा ताविषै रत है रुचि सहित है सो नियमकरि सम्यग्दृष्टी है, बहुरि सो ही सम्यक्त्व भावरूप परिणम्या संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिकूं क्षेपै है, नाश करै है ॥

भावार्थ—यह भी कर्मके नाश करनेका कारणका संक्षेप कथन है जो अपनां स्वरूपकी श्रद्धा रुचि प्रतीति आचरणकरि युक्त है सो नियमकरि सम्यग्दृष्टी है, इस सम्यक्त्वभाव करि परिणम्या मुनि आठ कर्मका नाश करि निर्वाण पावै है ॥ १४ ॥

आगैं कहै है जो परद्रव्यविषै रत है सो मिथ्यादृष्टी भया कर्मकूं बांधै है;—

गाथा—जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिटी हवेइ सो साहु ।

मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुँदुदकम्मेहिं ॥१५॥

संस्कृत—यः पुनः परद्रव्यरतः मिथ्यादृष्टिः भवति सः साधुः ।

मिथ्यात्वपरिणतः पुनः ब्रध्यते दुष्टाष्टकर्मभिः ॥१५॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सो साहु' के स्थानमें 'णियमेण' ऐसा पाठ है ।

२—मु. सं. प्रतिमें 'दुँदुदकम्माणि' ऐसा पाठ है ।

३—मु. सं. प्रतिमें 'क्षिपते' ऐसा पाठ है ।

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जो साधु परद्रव्यविषै रत है रागी है सो मिथ्यादृष्टी होय है, बहुरि सो मिथ्यात्वभावरूप परिणम्यां संता दुष्ट जे अष्ट कर्म तिनिकरि बंधै है ॥

भावार्थ—यह बंधके कारणका संपेक्ष है तहां साधु कहनें तैं ऐसा जनाया है जो बाह्य परिग्रह छोडि निर्ग्रन्थ होय तौ हू मिथ्यादृष्टी भया संता दुष्ट जे संसारके दुःख देनेवाले अष्ट कर्म तिनेकरि बंधै है ॥१५॥

आगै कहै है जो—परद्रव्यहीतैं दुर्गति होय है अर स्वद्रव्यहीतैं सुगति होय है;—

गाथा—परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु समई होई ।

इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरय इयरम्मि ॥१६॥

संस्कृत—परद्रव्यात् दुर्गतिः स्वद्रव्यात् स्फुटं सुगतिः भवति ।

इति ज्ञान्वा स्वद्रव्ये कुरुत रतिं विरतिं इतरस्मिन् १६

अर्थ—परद्रव्यतैं तौ दुर्गति होय है, बहुरि स्वद्रव्यतैं सुगति होय है यह प्रगट जाणौं, जातैं है भव्य जीव हौ ? तुम ऐसैं जागिकरि स्वद्रव्य-विषै रति करो अर इतर जो परद्रव्य तातैं विरति करौ ॥

भावार्थ—लोकमें भी यह रीति है अपनैं द्रव्यगूं रति करि अपना ही भोगवै है सो मुख पावै है ताकूं कट्ट आपदा न आवै है, बहुरि परद्रव्यसूं प्रीतिकरि जैसैं तैसैं लेकरि भोगवै है ताक दुःख होय है आपदा आवै है । तातैं आचार्य संक्षेपकरि उपदेश किया जो—अपना आत्मस्वभावविषै तौ रति करौ यातैं सुगति है स्वर्गादिक, भी याही तैं होय है अर मोक्षभी याही तैं होय है, बहुरि परद्रव्यतैं प्रीति मति करौ यातैं दुर्गति होय है संसारमें भ्रमण होय है । इहां कोई कहै जो—स्वद्रव्यमें लीन भये मोक्ष होय है अर सुगति दुर्गति तौ परद्रव्यकी प्रीतितैं होय है ? ताकूं कहिये जो—यह सत्य है, परन्तु इहां आशय तैं कहा है जो—

परद्रव्यतै विरक्त होय स्वद्रव्यमै लीन होय तब विशुद्धता बहुत होय है, तिस विशुद्धताके निमित्ततै शुभकर्मभी बंधै है अर अत्यंत विशुद्धता होय तब कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है तातै सुगति दुर्गतिका होनां कहा तैसै युक्त है, ऐसै जाननां ॥ १६ ॥

आगै शिष्य पूछै है जो—परद्रव्य कैसा है ? ताका उत्तर आचार्य कहै है;—

गाथा—आदसहावादणं सचित्ताचित्तमिस्सियं हवइ ।

तं परद्रव्यं भणियं अवितथं मव्वदरसीहिं ॥१७॥

संस्कृत—आत्मस्वभावादण्यत् सचित्ताचित्तमिश्रितं भवति ।

तत् परद्रव्यं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥१७॥

अर्थ—आत्मस्वभावतै अन्य जो किछु सचित्त तौ छा पुत्रादिक जीवसहित वस्तु बहुरि अचित्त धन धान्य हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु बहुरि मिश्र आभूषणादिसहित मनुष्य तथा कुटुंबसहित गृहादिक ये सर्व परद्रव्य हैं, ऐसै जानै जीवादिक पदार्थका स्वरूप न जाण्य ताके जनावनेके अर्थ सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवाननै कहा है अथवा ‘अवितथं’ कहिये मतार्थ कहा है ॥

भावार्थ—अपनां ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय अन्य अचेतन मिश्र वस्तु हैं ते सर्वही परद्रव्य हैं ऐसै अज्ञानीके जनावनेकूं सर्वज्ञदेवनै कहा है ॥ १७ ॥

आगै कहै है जो—आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कहा सो ऐसा है;—

गाथा—दुट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं ।

सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवइ सद्व्वं ॥१८॥

संस्कृत—दुष्टाष्टकर्मरहितं अनुपमं ज्ञानविग्रहं नित्यम् ।

शुद्धं जिनैः भणितं आत्मा भवति स्वद्रव्यम् ॥१८॥

अर्थ—दुष्ट जे संसारके दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म तिनि करि रहित अर जाकू काहूकी उपमा नाहीं ऐसा अनुपम अर ज्ञानही है विग्रह कहिये शरीर जाके ऐसा अर नित्य जाका नाश नाहीं अविनाशी अर शुद्ध कहिये विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान सर्वज्ञदेवनै कहा सो स्वद्रव्य है ॥

भावार्थ—ज्ञानानंदमय अमूर्त्तकि ज्ञानमूर्ति अपना आत्मा है सो ही एक स्वद्रव्य है अन्य सर्व चेतन अचेतन मिश्र परद्रव्य हैं ॥ १८ ॥

आगे कहै हं जो—जे ऐसे निजद्रव्यकूं ध्यावैं हैं ते निर्वाण पावैं हैं;—

गाथा—जे ज्ञायंति सद्वचं परद्रव्यपरम्मुहा हु सुचरित्ता ।

ते जिणवराण मग्गे अणुलगा लहदि णिव्वाणं ॥ १९ ॥

संस्कृत—ये ध्यायंति स्वद्रव्यं परद्रव्यपराङ्मुखास्तु सुचरित्राः ।

ते जिनवराणां मार्गे अनुलगाः लभंते निर्वाणम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जे मुनि परद्रव्यतै परादुःख भये संते स्वद्रव्य जो ज आत्मद्रव्य ताहि ध्यावैं हं ते प्रगट सुचरित्रा कहिये निर्दोष चारित्र्युक्त भये संते जिनवर तीर्थकरानिके मार्गकूं अनुलग्न भये लागे संते निर्वाणकूं पावैं हैं ॥

भावार्थ—परद्रव्यका त्यागकरि जे अर्पनां स्वरूपकूं ध्यावैं हैं ते निश्चयचारित्र्यरूप होय जिनमार्गमें लागे ते मोक्ष पावैं हैं ॥ १९ ॥

आगे कहै हं जो—जिनमार्गमें लग्या योगी शुद्धात्माकूं ध्याय मोक्ष पावैं है तां कहा ताकरि स्वर्ग नहीं पावै ! पावैही पावै,

गाथा—जिणवरमण जोई ज्ञाणे ज्ञाएह सुद्धमप्पाणं ।

जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥ २० ॥

संस्कृत—जिनवरमतेन योगी ध्याने ध्यायति शुद्धमात्मानम् ।

येन लभते निर्वाणं न लभते किं तेन सुरलोकम् ॥२०॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो जिनवर भगवानके मतकरि शुद्ध आत्माकूं ध्यानविषै ध्यावै है ताकरि निर्वाणकूं पावै है तां ताकरि कहा स्वर्ग लोक न पावै ? पावैही पावै ॥ २० ॥

भावार्थ—कोई जानैगा जो जिनमार्गमें लागि आत्माकूं ध्यावै सो मोक्ष पावै अरु स्वर्ग तौ यातै होय नाहीं, ताकूं कथा है जो जिनमार्गमें प्रवर्तनेवाला शुद्ध आत्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ ताकरि स्वर्गलोक कहा कठिन है ? यह तौ ताके मार्गमें ही है ॥ २० ॥

आगैं या अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै है,

गाथा—जो जाइ जोयगसयं दियहेणेकेण लेइ गुरुभारं ।

सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाहु भुवणयले ॥२१॥

संस्कृत—यः याति योजनशतं दिवसेनैकेन लात्वा गुरुभारम् ।

स किं क्रोशार्द्रमपि स्फुटं न शक्नोति यातुं भुवनतले २१

अर्थ—जो पुरुष बड़ा भार लेय एक दिनकरि सौं योजन जाय सो या भुवनतलविषै आध कोश कहा न जाय ? यह प्रगट जाण ॥

भावार्थ—जो पुरुष बड़ा भार लेय एक दिनमें सौं योजन चाले ताकें आधकोश चालनां तौ अत्यंत सुगम भया, तैसेही जिनमार्गमें मोक्ष पावै तां स्वर्ग पावनां तौ अत्यंत सुगम है ॥ २१ ॥

आगैं याही अर्थका अन्य दृष्टान्त कहै है;—

गाथा—जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं ।

सो किं जिप्पइ इक्कि णरेण संगामए सुहडो ॥ २२ ॥

संस्कृत—यः कोट्या न जीयते सुभटः संग्रामकैः सर्वैः ।

स किं जीयते एकेन नरेण संग्रामे सुभटः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो कोई सुभट संग्राममें सर्वही संग्रामके करनेवालेनिकरि सहित कोडि नरनिकूं सुगमताकरि जीतै सो सुभट एक नरकूं कहा न जीतै ? जीतैही ॥

भावार्थ—जो जिनमार्गमें प्रवर्तै सो कर्मका नाश करै तौ कहा स्वर्गका रोकनेवाला एक पापकर्म ताका नाश न करै ? करैही करै २२

आगै कहै है जो—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है परन्तु ध्यानका योगकरि स्वर्ग पावै है सो तिस ध्यानके योगकरि मोक्ष भी पावै है;—

गाथा—सगं तवेण सव्वो वि पावए किंतु ज्ञाणजोएण ।

जो पावइ सो पावइ परलोये सासयं मोक्खं ॥२३॥

संस्कृत—स्वर्गं तपसा सर्वः अपि प्राप्नोति किन्तु ध्यानयोगेन ।

यः प्राप्नोति सः प्राप्नोति परलोके शाश्वतं सौख्यम् २३

अर्थ—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है तथापि जो ध्यानके योगकरि स्वर्ग पावै है सो ही ध्यानके योगकरि परलोकविषै शाश्वता मुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—कायकेशादिक तप तौ सर्वही मतके धारक करै हैं ते तपस्वी मंदकपायके निमित्ततैं सर्वही स्वर्गकूं पावै हैं, बहुरि जो ध्यानकरि स्वर्ग पावै है सो जिनमार्गविषै कहा तैसा ध्यानके योगकरि परलोकविषै शाश्वता है मुख जाविषै ऐसा निर्वाणकूं पावै है ॥ २३ ॥

आगै ध्यानके योगकरि मोक्षकूं पावै है ताकूं दृष्टान्त/ दार्ष्टान्तकरि दृढ करै है;—

गाथा—अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य ।

कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥ २४ ॥

संस्कृत—अतिशोभनयोगेन शुद्धं हेम भवति यथा तथा च ।

कालादिलब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण पाषाण है सो सोधनेकी सामग्रीके संबंधकरि शुद्ध सुवर्ण होय है तैसे काल आदि लब्धि जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप सामग्रीकी प्राप्ति ताकरि यह आत्मा कर्मके संयोगकरि अशुद्ध है सो ही परमात्मा होय है ॥ २४ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ २४ ॥

आगे कहै है जो—संसारविषै व्रत तपकरि स्वर्ग होय है सो व्रत तप भला है अव्रतादिकरि नरकादिक गति होय है सो अव्रतादिक श्रेष्ठ नाहीं;—

गाथा—वर वयतवेहि सगो मा दुखं होउ गिरइ इयरेहि ।

छायातवद्वियाणं पडिवालंताण गुरुमेयं ॥२५॥

संस्कृत—वरं व्रततपोभिः स्वर्गः मा दुःखं भवतु नरके इतरैः ।

छायातपस्थितानां प्रतिपालयतां गुरुभेदः ॥२५॥

अर्थ—व्रत अर तपकरि स्वर्ग होय है सो श्रेष्ठ है, बहुरि इतर जो अव्रत अर अतप तिनिकरि प्राणीके नरकगतिविषै दुःख होय है सो मति होहु, श्रेष्ठ नाहीं । छाया अर आतपके विषै तिष्ठनेवालेके जे प्रतिपालक कारण हैं तिनिके बड़ा भेद है ॥

भावार्थ—जैसे छायाका कारण तौ वृक्षादिक है, तिनिकरि छाया कोई बैठै सो मुख पावै, बहुरि आतापका कारण सूर्य अग्नि आदिक है तिनिके निमित्ततै आताप होय ताविषै बैठै सो दुःख पावै ऐसे इनिमें बड़ा भेद है; तैसे जो व्रत तपकूं आचरै सो स्वर्गका मुख पावै अर इनिंकूं न आचरै विषय कपायादिककूं संवै सो नरकके दुःख पावै, ऐसे इनिमें बड़ा भेद है । तातैं इहां कहनेका यह आशय है जो जेतैं निर्वाण न होय तेतैं व्रत तप आदिकमें प्रवर्तनां श्रेष्ठ है यातैं सांसारिक सुखकी प्राप्ति है अर निर्वाणके साधनें विषै भी ये सहकारी हैं । विषय कषायादिककी प्रवृत्तिका फल तौ केवल नरकादिकके दुःख हैं सो तिनि दुःख-

निके कारणनिकूं सेवनां यह तौ बड़ी भूलि है, ऐसैं जाननां ॥ २५ ॥

आगै कहै हैं जो—संसारमें रहै जेतैं व्रत तप पालनां श्रेष्ठ कक्षा परन्तु जो संसारतैं नीसन्धा चाहै हैं सो आत्माकूं ध्यावो;—

गाथा—जो इच्छइ णिस्सरिहुं संसारमहणवाउ रुदाओ ।

कर्मिधणाण डहणं सो ज्ञायइ अप्पयं सुद्धं ॥२६॥

संस्कृत—यः इच्छति निःसर्तुं संसारमहार्णवात् रुद्रात् ।

कर्मन्धनानां दहनं सः ध्यायति आत्मानं शुद्धम् ॥२६॥

अर्थ—जो जीव रुद्र कहिये बड़ा विस्ताररूप जो संसाररूप समुद्र तातैं नीसरणेंकूं चाहै है सो जीव कर्मरूप इंधनका दहन करनेवाला जो शुद्ध आत्मा ताहि ध्यावै है ॥

भावार्थ—निर्वाणकी प्राप्ति कर्मका नाश होय तब होय है अरु कर्मका नाश शुद्धात्माके ध्यानतैं होय है सो संसारतैं नीसरि मोक्षकूं चाहै है सो शुद्ध आत्मा जो कर्ममल्लतैं रहित अनंत चतुष्टयसहित परमात्माकूं ध्यावै है, मोक्षका उपाय या विना अन्य नाहीं है ॥ २६ ॥

आगै आत्माकूं कैसे ध्यावै ताकी विधि दिखावै हैं;—

गाथा—सव्वे कसाय मुत्तं गारवमयरायदोसवामोहं ।

लोयववहारविग्दो अप्पा ज्ञाणइ ज्ञाणत्थो ॥२७॥

संस्कृत—सर्वान् कषायान् मुक्त्वा गारवमदरागदोषव्यामोहम् ।

लोकव्यवहारविरतः आत्मानं ध्यायति ध्यान्नस्थः २७

अर्थ—मुनि है सो सर्व कषायनिकूं छोडि तथा गारव मद राग द्वेष तथा मोह इनिकूं छोडिकरि अरु लोकव्यवहारतैं विरक्त भया ध्यान विषै तिष्ठथा आत्माकूं ध्यावै है ॥ २७ ॥

१-मुद्रित सं. प्रतिमें “संसारमहणवत्स रुदस्स” ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत “संसारमहार्णवस्य रुदस्य” ऐसी है ।

भावार्थ—मुनि आत्माकू ध्यावै सो ऐसा भया ध्यावै—प्रथम तौ क्रोध मान माया लोभ ये कषाय हैं इनि सर्वनिकू छोडै, बहुरि गारवकू छोडै, बहुरि मद जाति आदिका भेद आठ प्रकार है ताकू छोडै बहुरि राग द्वेषकू छोडै बहुरि लोकव्यवहार जो संघमें रहनेमें परस्पर विनया-चार वैयावृत्य धर्मोपदेश पढना पढावनां है ताकू भी छोडै ध्यानविषै तिष्ठै ऐसै आत्माकू ध्यावै ॥

इहां कोई पूछै—सर्व कषायका छोडनां कछा है तामैं तौ सर्व गारव मदादिक भाय गये न्यारे काहेकू कहे ? ताका समाधान ऐसैं जो—सर्व कषायनिमें गर्भित हैं तौऊ विशेष जनावनेकू न्यारे कहे हैं तहां कषायकी प्रवृत्ति तौ ऐसै है जो—आपके अनिष्ट होय तामूं क्रोध करै अन्यकू नीचा मानि मान करै काहूँ कार्यनिमित्त कपट करै आहारदिविषै लोभ करै बहुरि यह गारव है सो—रस, ऋद्धि, सात, ऐसै तीन प्रकार है सो ये यद्यपि मानकषायमें गर्भित है तौऊ प्रमादकी बहुलता इनिमें है तातैं न्यारे कहे है । बहुरि मद जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका होय है सो न करै । बहुरि राग द्वेष प्रीति अप्रीतिकू कहिये है, काहूसूं प्रीति करनां काहूसूं अप्रीति करनां, ऐसैं लक्षणके विशेषतैं भेद करि कछा । बहुरि मोह नाम परसूं ममत्व भावका है, संसारका ममत्व तौ मुनिकै है ही नांही अर धर्मानु-रागतैं शिष्य आदिविषै ममत्वका व्यवहार है सो ये भी छोडै । ऐसैं भेदविवक्षाकरि न्यारे कहे हैं, ये ध्यानके घातक भाव हैं इनिकू छोडे बिना ध्यान होय नांही जातैं जसैं ध्यान होय तैसैं करै ॥ २७ ॥

आगैं याहीकू विशेष करि कहै है,—

गाथा—मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण ।

मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अण्णा ॥२८॥

संस्कृत—मिथ्यात्वं अज्ञानं पापं पुण्यं त्यक्त्वा त्रिविधेन ।

मौनव्रतेन योगी योगस्थः द्योतयति आत्मानम् ॥२८॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो मिथ्यात्व अज्ञान पाप पुण्य इनिकूं मन वचन कायकरि छोडि मौनव्रतकरि ध्यानविपै तिष्ठया आत्माकूं ध्यावै है ॥

भावार्थ—केई अन्यमती योगी ध्यानी कहावै हैं तातैं जैनखिगी भी कोई द्रव्यकिंग धारे होय ताके निषेध निमित्त ऐसैं कहा है जो— मिथ्यात्व अर अज्ञानकूं छोडि आत्माका स्वरूप यथार्थ जानि श्रद्धान जानैं न किया ताकै मिथ्यात्व अज्ञान तौ लग्या रह्या तत्र ध्यान काहेका होय, बहुरि पुण्य पाप दोऊ बंधस्वरूप हैं इनि विपै प्रीति अप्रीति रहे जेतैं मोक्षका स्वरूप जान्यां नाहीं तत्र ध्यान काहेका होय, बहुरि मन वचनकी प्रवृत्ति छोडि मौन न करै तां एकाग्रता कैसैं होय । तातैं मिथ्यात्व अज्ञान पुण्य पाप मन वचन काय की प्रवृत्ति छोडना ध्यान-विपै युक्त कहा है ऐसैं आत्माकूं ध्याये मोक्ष होय है ॥ २८ ॥

आगैं ध्यान करनेवाला मौन करि तिष्ठै है सो कहा विचारि करि तिष्ठै है, सो कहै है,—

अनु० छंदः—जं मया दिस्पदे रूपं तं ण जानादि सन्वहा ।

जाणगं दिस्सदे णंतं तम्हा जंपेमि केण हं ॥२९॥

संस्कृत—यत् मया दृश्यते रूपं तत् न जानाति सर्वथा ।

ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम् २९

अर्थ—जारूपकूं मैं देखूं हूं सो रूप मूर्तीक वस्तु है जड है अचे-
तन है सर्व प्रकार करि कष्ट ही जाणै नाहीं है, अर मैं ज्ञायकहूं सो

अमूर्त्तिकहूँ यह जड अचेतन है सर्व प्रकार करि कटूही जाणैं नांही है, तातैं मैं कौनसूं बोद्ध ॥

भावार्थ—जो दूजा कोऊ परस्पर बात करने वाला होय तब परस्पर बोलनां संभव, सो आत्मा तौ अमूर्त्तिक—ताकै वचन बोलनां नांही, अर जो रूपी पुद्गल है सो अचेतन है कटू जाणैं नांही देखै नांही । तातैं ध्यान करनेवाला कहै है—मैं कौनसूं बोद्ध तातैं मेरै मौन है ॥ २९ ॥

आगैं कहै है जो—ऐसैं ध्यान करतैं सर्व कर्मके आस्रवका निरोध करि संचित कर्मका नाश करै है;—

श्लोक—सव्वास्रवणिरोहेण कम्मं खवइ संचियं ।

जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं ॥३०॥

संस्कृत—सर्वास्रवनिरोधेन कर्म क्षययति संचितम् ।

योगस्थः जानाति योगी जिनदेवेन भाषितम् ॥३०॥

अर्थ—योग ध्यानविधैं तिष्ठया योगी मुनि है सो सर्व कर्मके आस्रवका निरोधकरि संवरयुक्त भया पूर्वैं बांधे जे कर्म ते संचयरूप हैं तिनिका क्षय करै है ऐसैं जिनदेवनैं कहा है सो जाणिये ॥

भावार्थ—ध्यानकरि कर्मका आस्रव रुकै यातैं आगामी बन्ध होय नांही अर पूर्व संचे कर्मका निर्जग होय है तब केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है, यह आत्माके ध्यानका माहात्म्य है ॥ ३० ॥

आगैं कहै है जो व्यवहारमें तत्पर है ताकै यह ध्यान नांही;—

गाथा—जो सुत्तो व्यवहारे सो जोई जगए सकज्जम्मि ।

जो जग्गदि व्यवहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥३१॥

संस्कृत—यः सुप्तः व्यवहारे सः योगी जागति स्वकार्ये ।

यः जागति व्यवहारे सः सुप्तः आत्मनः कार्ये ॥३१॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहारमें सूता है सो अपना स्वरूपका कार्यविषै जागै है, बहुरि जो व्यवहारविषै जागै है सो अपना आत्मकार्यविषै सूता है ॥

भावार्थ—मुनिकै संसारी व्यवहार तौ कछु है नाहीं, अर जो है तौ मुनि काहेका ? पाखंडी है । बहुरि धर्मका व्यवहार संघमें रहनां महा-व्रतादिक पालनां ऐसे व्यवहारमें भी तत्पर नाहीं हैं, सर्व प्रवृत्तिकी निवृत्ति करि ध्यान करै हैं, सो व्यवहारमें सूता कहिये, अर अपने आत्मस्वरूपमें लीन भया देखे हैं जाणै हैं सो अपने आत्मकार्यविषै जागै है । बहुरि जो इस व्यवहारमें तत्पर है सावधान है स्वरूपकी दृष्टि नाहीं है सो व्यवहारमें जागता कहिये ॥ ३१ ॥

आगै यह कहै है जो—योगी पूर्वोक्त कथनकूं जाणि व्यवहारकूं छोडि आत्मकार्य करै हैं; —

गाथा—इय जाणिउण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।

झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं ॥३२॥

संस्कृत—इति ज्ञात्वा योगी व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वम् ।

ध्यायति परमात्मानं यथा भणितं जिनवरेन्द्रैः ॥३२॥

अर्थ—ऐसै पूर्वोक्त कथनकूं जाणिकरि योगी ध्यानी मुनि है सो व्यवहार सर्व प्रकारही छोडै है अर परमात्माकूं ध्यावै है, कैसै ध्यावै है—जैसै जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनै कहाँ है तैसै ध्यावै है ॥

भावार्थ—सर्वथा सर्व व्यवहारकूं छोडनां कहाँ, ताँ तौ आशय यह जो—लोकव्यवहार तथा धर्मव्यवहार सर्वही छोडे ध्यान होय है । अर जैसै जिनदेवनै कहाँ तैसै परमात्माका ध्यान करनां सो अन्यमती

१—मु. सं. प्रतिमें 'जिणवरिंदेण' ऐसा पाठ है, जिसकी संस्कृत 'जिनवरेन्द्रेण' है ।

परमात्माका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा कहै है, ताका ध्यानका भी अन्यथा उपदेश करै है, ताका निषेध हं । जिनदेवनै परमात्माका तथा ध्यानका स्वरूप कहा सो सत्यार्थ है प्रमाणभूत है तैसेही योगीश्वर करै है, तेई निर्वाणकू पावै हैं ॥ ३२ ॥

आगै जिनदेवनै जसै ध्यान अध्ययनकी प्रवृत्ति कही हं तैसे उपदेश करै है:—

गाथा—पंचमहव्ययजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।

रयणत्तयसंजुत्तो ज्ञाणज्झयणं सदा कुणह ॥ ३३ ॥

गाथा—पंचमहाव्रतयुक्तः पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु ।

रत्नत्रयसंयुक्तः ध्यानाध्ययनं सदा कुरु ॥ ३३ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हं जो—पांच महाव्रतकरियुक्त भया, बहुरि पांच समिति तीन गुप्ति इनिविषै युक्त भया, बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय तिसकरि संयुक्त भया, हे मुनिजनहो ! तुम ध्यान अर अध्ययन शास्त्रका अभ्यास ताहि करौ ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग ये तौ पांच महाव्रत, अर ईर्या भाषा ण्णणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापनां ये पांच समिति, अर मन वचन कायका निग्रहरूप तीन गुप्ति, यह तेरह प्रकार चारित्र जिनदेवनै कहा हं तिसकरि युक्त होय, अर निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहा हं इनिकरि युक्त होय करि ध्यान अर अध्ययन करवाका उपदेश है । तहां प्रधान तौ ध्यान हं ही अर तिसमै न धर्म तत्र शास्त्रका अभ्यासमै मन लगावै यही ध्यानतुल्य है जातै शास्त्रमै परमात्माका स्वरूपका निर्णय है सो यह ध्यानहीका अंग है ॥ ३३ ॥

आगै कहै है जो रत्नत्रयकू आराधै है सो जीव आराधक ही है,

गाथा—रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो ।

आराहणाविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं ॥३४॥

संस्कृत—रत्नत्रयमाराधयन् जीवः आराधकः ज्ञातव्यः ।

आराधनाविधानं तस्य फलं केवलज्ञानम् ॥३४॥

अर्थ—रत्नत्रय जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ताहि आराधता जीव है सो आराधक जाननां, अर जो आराधनाका विधान है ताका फल केवलज्ञान है ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं आराधै है सो केवलज्ञानकूं पावै है सो जिनमार्गमें प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

आगैं कहै है जो शुद्ध आत्मा है सो केवलज्ञान है अर केवलज्ञान है सो शुद्धात्मा है;—

गाथा—सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरसी य ।

सो जिणवरेहिं भणियो जाण तुमं केवलं णाणं ॥३५॥

संस्कृत—सिद्धः शुद्धः आत्मा सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।

सः जिनवरैः भणितः जानीहि त्वं केवलं ज्ञानम् ॥३५॥

अर्थ—आत्मा जिनवर सर्वज्ञदेवनें ऐसा कथा है, कैसा है—

सिद्ध; काहूकरि निपज्या नांही है स्वयंसिद्ध है, बहुरि शुद्ध है कर्ममलतैं रहित है, बहुरि सर्वज्ञ हं सर्व लोकालोककूं जानै है बहुरि सर्वदर्शी है सर्व लोक अलोककूं देखै है, ऐसा आत्मा है सो मुने ! तिसहीकूं तु केवलज्ञान जाणि अथवा तिस केवलज्ञानहीकूं आत्मा जाणि । आत्मामैं अर ज्ञानमें कछू प्रदेश भेद है नांही, गुण गुणी भेद है सो गौण है । यह आराधनाका फल पूवैं केवलज्ञान कहा, सो है ॥ ३५ ॥

आगैं कहै है जो योगी जिनदेवके मतकरि रत्नत्रयकूं आराधै है सो आत्माकूं ध्यावै है;—

गाथा—रयणत्तयं पि जोइ आराहइ जो हु जिणवरमएण ।

सो ज्ञायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो ॥३६॥

संस्कृत—रत्नत्रयमपि योगी आराधयति यः स्फुटं जिनवरमतेन ।

सः ध्यायति आत्मानं परिहरति परं न सन्देहः ॥३६॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेवके मतकी आज्ञाकरि रत्न-
त्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकू निश्चयकरि आराधै है सो प्रगटपणै आत्मा-
हीकूं ध्यावै है जातै रत्नत्रय आत्माका गुण है । अर गुण गुणीमें भेद
नांही, रत्नत्रयकी आराधना है सो आत्माहीका आराधन है सो ही पर-
द्रव्यकूं छोडै है यामें संदेह नांही ॥ ३६ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ ३६ ॥

आगै पूछथा जो आत्माविषै रत्नत्रय कैसै है ताका उत्तर आचार्य
कहे है;—

गाथा—जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेय ।

तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्यपापाणं ॥३७॥

संस्कृत—यत् जानाति तत् ज्ञानं यत्पश्यति तच्च दर्शनं ज्ञेयम् ।

तत् चारित्रं भणितं परिहारः पुण्यपापानाम् ॥३७॥

अर्थ—जो जाणौ सो ज्ञान है, जो देखै सो दर्शन है, बहुरि जो
पुण्य अर पापका परिहार है सो चारित्र है; ऐसै जाननां ॥

भावार्थ—इहां जाननेवाला अर देखनेवाला अर त्यागनेवाला दर्शन
ज्ञान चारित्रकूं कह्या सो ये तौ गुणीके गुण हैं ते कर्त्ता होय नांही यातै
ज्ञानन देखन त्यागन क्रियाका कर्त्ता आत्मा है, यातै ये तीनों आत्माही
हैं, गुण गुणीमें किछू प्रदेश भेद है नांही । ऐसै रत्नत्रय है सो आत्माही
है, ऐसै जाननां ॥ ३७ ॥

आगे इसही अर्थकू अन्य प्रकार करि कहै है,—

गाथा—तत्त्वर्हं सम्पत्तं तत्त्वग्रहणं च हृवइ सण्णाणं ।

चारित्तं परिहारो पयंपियं जिणवरिंदेहिं ॥३८॥

संस्कृत—तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं तत्त्वग्रहणं च भवति संज्ञानम् ।

चारित्रं परिहारः प्रजल्पितं जिनवरेन्द्रैः ॥३८॥

अर्थ—तत्त्वरुचि है सो सम्यक्त्व है, तत्त्वका ग्रहण है सो सम्यग्ज्ञान है, परिहार है सो चारित्रहै, ऐसैं जिनवरेन्द्र तीर्थकर सर्वज्ञदेवनैं कछा है ॥

भावार्थ—जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा बंध मोक्ष इनि तत्त्वनिका श्रद्धान रुचि प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि तिनिहीका जाननां सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि परद्रव्यका परिहार तिससंबंधी क्रियाकी निवृत्ति सो चारित्र है; ऐसैं जिनेश्वरदेवनैं कछा है, इनिकूं निश्चय व्यवहार नय करि आगमकै अनुसार साधनां ॥ ३८ ॥

आगे सम्यग्दर्शनकूं प्रधानकरि कहै है;—

गाथा—दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं ।

दंसणविहीणपुरिसो न लहइ तं इच्छियं लाहं ॥३९॥

संस्कृत—दर्शनशुद्धः शुद्धः दर्शनशुद्धः लभते निर्वाणम् ।

दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं इष्टं लाभम् ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष दर्शनकरि शुद्ध है सो ही शुद्ध है जातैं दर्शन शुद्ध है सो निर्वाणकूं पावै है, बहुरि जो पुरुष सम्यग्दर्शनकरि रहित है सो पुरुष ईप्सित लाभ जो मोक्ष ताहि न पावै है ॥

भावार्थ—छोकमैं प्रसिद्ध है जो कोई पुरुष कछु वस्तु चाहै ताकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न होय तो ताकी प्राप्ति न होय यातैं सम्यग्दर्शनही निर्वाणकी प्राप्ति विषैं प्रधान है ॥ ३९ ॥

आगे कहै है जो—ऐसा सम्यग्दर्शनका ग्रहणका उपदेश सार है ताकू जो मानै है सो सम्यक्त्व है;—

माथा—इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु ।

तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि ॥४०॥

संस्कृत—इति उपदेशं सारं जरामरणहरं स्फुटं मन्यते यत्तु ।

तत् सम्यक्त्वं भणितं श्रमणानां श्रावकाणामपि ॥४०॥

अर्थ—इति कहिये ऐसा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका उपदेश है सो सार है जरा मरणका हरणैवाला है तहां याकू जो मानै है श्रद्धै है सो ही सम्यक्त्व कहा है सो मुनिनिक्कू तथा श्रावकनिक्कू सर्वहीकू कहा है तातैं सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्रकू अंगीकार करौ ॥

भावार्थ—जीवके जे ते भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सार हैं उत्तम हैं जीवके हित हैं, बहुरि तिनिमैं भी सम्यग्दर्शन प्रधान हैं जातैं याबिनां ज्ञान चारित्रभी मिथ्या कहावै है तातैं सम्यग्दर्शनकू प्रधान जाणि पहलैं अंगीकार करनां, यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सबहीकू है ॥ ४० ॥

आगे सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहै है;—

माथा—जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण ।

तं सण्णाणं भणियं अविद्यत्थं सव्वदरसीहिं ॥ ४१ ॥

संस्कृत—जीवाजीवविभक्तिं योगी जानाति जिनवरमतेन ।

तत् संज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शीभिः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो योगी मुनि जीव अजीव पदार्थका भेद जिनवरके मतकरि जाणै है सो सम्यग्ज्ञान सर्वदर्शी सर्वका देखनेवाला सर्वज्ञदेवनै कहा है सो ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थका कहा सत्यार्थ नाहीं असत्यार्थ है, सर्वज्ञका कहा ही सत्यार्थ है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञदेव जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छह द्रव्य कहे हैं तिनिमें जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप कहा है सो अमूर्तीक है स्पर्श रस गंध वर्ण इनिमें रहित है अर पुद्गल आदि पांच अजीव कहे हैं ते अचेतन हैं जड हैं । तिनिमें पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दसहित मूर्तीक है इंद्रियगोचर है, अन्य अमूर्तीक हैं; तहां आकाशादि चारि तौ जैसे हैं तैसें तिष्ठे हैं, अर जीव पुद्गलके अनादिसंबंध है छद्मस्थके इंद्रियगोचर पुद्गलस्कंध हैं तिनिं प्रहणकरि रागद्वेष मोहरूप परिणमै है शरीरादिकूं आपा मानै है तथा इष्ट अनिष्ट मांनि रागद्वेषरूप होय है यातैं नवीन पुद्गल कर्मरूप होय बंधकूं प्राप्त होय है, यह निमित्त नैमित्तिकभाव है; ऐसैं यह जीव अज्ञानी भया संता जीव पुद्गलका भेदकूं न जानि मिथ्याज्ञानी होय है । यातैं आचार्य कहै है जो जिनदेवके मतमें जीव अजीवका भेद जानि सम्यग्ज्ञानका स्वरूप जाननां, बहुरि यह जिनदेव कहा सो ही सत्यार्थ है प्रमाण नयकरि ऐसैं ही सिद्ध होय हं जातैं जिनदेव सर्वज्ञ है सो सर्व वस्तुकूं प्रत्यक्ष देखि-करि कहा है । अन्यमती छद्मस्थ हैं तिनिमें अपनी बुद्धिमें आया तैसें कल्पना करि कहा है सो प्रमाणसिद्ध नाहीं; तिनिमें केई वेदान्ती तौ एक ब्रह्ममात्र कहैं है अन्य किछु वस्तुभूत नाहीं मायारूप अवस्तु है ऐसैं मानैं हैं, अर केई नैयायिक वैशेषिक जीवकूं सर्वथा नित्य सर्वगत कहैं हैं जीवके अर ज्ञानगुणके सर्वथा भेद मानैं हैं अर अन्य कार्यमात्र हैं तिनिं ईश्वर करै हैं ऐसैं मानैं हैं, बहुरि केई सांख्यमती पुरुषकूं उदासीन चैतन्यस्वरूप मांनि सर्वथा अकर्ता मानैं हैं ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मानैं हैं, केई बौद्धमती सर्व वस्तुकूं क्षणिक मानैं हैं सर्वथा अनित्य मानैं हैं तिनिमें भी मतभेद अनेक हैं, केई विज्ञानमात्र तत्व मानैं हैं केई सर्वथा शून्य मानैं हैं कोई अन्यप्रकार मानैं हैं, बहुरि मीमांसक

कर्मकांडमात्रही तत्व मानै हैं जीवकू अणुमात्र मानै है तौऊ कछू परमार्थ नित्य वस्तु नाहीं इत्यादि मानै हैं, बहुरि चार्वाकमती जीवकू तत्व मानै नाहीं पंचभूततैं जीवकी उत्पत्ति मानै हैं । इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्व मानि परस्पर विवाद करै हैं, सो युक्तही है—वस्तुका पूर्णरूप दीखै नाहीं तब जैसैं अंधे हस्तीका विवाद करै तैसैं विवादही होय; तातैं जिनदेव सर्वज्ञ है वस्तुका पूर्णरूप देख्या है सोही कह्या है सो प्रमाण नयनिकरि अनेकान्तस्वरूप सिद्ध होय है सो इनिकी चर्चा हेतुवादके जैनके न्यायशास्त्र है तिनितैं जानी जाय है; यातैं यह उपदेश है—जिनमतमें जीवाजीवका स्वरूप सत्यार्थ कह्या है ताकू जानै हैं सो सम्यग्ज्ञान है ऐसा जाणि जिनदेवकी आज्ञा मानि सम्यग्ज्ञानकू अंगीकार करणां, याहीतैं सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति होय है, ऐसैं जाननां ॥

आगैं सम्यक्चारित्रका स्वरूप कहै हैं;—

गाथा—जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्यपापाणं ।

तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिण्हिं ॥ ४२ ॥

संस्कृत—यत् ज्ञात्वा योगी परिहारं करोति पुण्यपापानाम् ।

तत् चारित्रं भणितं अविकल्पं कर्मरहितैः ॥ ४२ ॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि हैं सो तिस पूर्वोक्त जीवका भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान ताहि जानिकरि अर पुण्य तथा पाप इनि दोऊनिका परिहार करै त्यागकरै सो चारित्र घातिकर्मतैं रहित जो सर्वज्ञ देव तांनै कह्या है, कैसा है निर्विकल्प है प्रवृत्तिरूप जे क्रियाके विकल्प तिनिकरि रहित हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—चारित्र निश्चय व्यवहार भेदकरि दोय भेदरूप है, तहां महाव्रतं समिति गुप्तिके भेदकरि कह्या है सो तौ व्यवहार है तिनितैं प्रवृत्तिरूप क्रिया है सो, शुभकर्मरूप बंध करै है अर इनि क्रियानितैं

जेता अंश निवृत्ति है ताका फल बंध नांही है, ताका फल कर्मकी एक देश निर्जरा है । अर सर्व कर्मतैं रहित अपनां आत्मस्वरूप होनां सो निश्चय चारित्र है ताका फल कर्मका नाशही है, सो यह पुण्य पापके परिहाररूप निर्विकल्प है, पापका तौ त्याग मुनिकै है ही, अर पुण्यका त्याग ऐसैं जो—शुभ क्रियाका फल पुण्य कर्मका बंध है ताकी वांछा नांही है; बंधके नाशका उपाय निर्विकल्प निश्चय चारित्रका प्रधान उद्यम है । ऐसैं इहां निर्विकल्प पुण्य पापकरै रहित ऐसा निश्चय चारित्र कहा है । चौदहवें गुणस्थानके अंतसमय पूर्ण चारित्र होय है, तिसतैं लगताही मोक्ष होय है ऐसा सिद्धांत है ॥ ४२ ॥

आगैं कहै है जो—ऐसे रत्नत्रयसहित भया तप संयम समिति पालता शुद्धात्माकूं ध्यावता मुनि निर्वाण पावै है;—

गाथा—जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए ।

सो पावइ परमपयं ज्ञायंतो अण्णयं सुद्धं ॥४३॥

संस्कृत—यः रत्नत्रययुक्तः करोति तपः संयतः स्वशक्त्या ।

सः प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम् ॥४३॥

अर्थ—जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त भया संता संयमी अपनी शक्तिसारू तप करै है सो शुद्ध आत्माकूं ध्यावता संता परमपद जो निर्वाण ताहि पावै है ॥

भावार्थ—जो मुनि संयमी पंच महाव्रत पांच समिति तीन मुसि यह तेरह प्रकार चारित्र सोही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र संयम ताकूं अंगी-कार करि अर पूर्वोक्त प्रकार निश्चय चारित्रकरि युक्त भया अपनी शक्ति-सारू उपवास कायहेरादि बाह्य तप करै है सो मुनि अन्तरंग तप जो ध्यान ताकरि शुद्ध आत्माकूं एकाग्र चित्तकरि ध्यावता सन्ता निर्वाणकूं पावै है ॥ ४३ ॥

आगैं कहै है जो—ध्यानी मुनि ऐसा भया परमात्माकूं ध्यावै है;—
गाथा—तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिण्ण
 परियरिओ ।

दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई ॥४४॥
संस्कृत—त्रिभिः त्रीन् धृत्वा नित्यं त्रिकरहितः तथा त्रिकेण
 परिकरितः ।

द्विदोषविप्रमुक्तः परमात्मानं ध्यायते योगी ॥४४॥

अर्थ—‘त्रिभिः’ कहिये मन वचन कायकरि, “त्रीन्” कहिये वर्षा
 शीत उष्ण तीन कालयोग तिनिहि धरि करि, बहुरि त्रिकरहित कहिये
 माया मिथ्या निदान तीन शल्य तीनकरि रहित भया, तथा “त्रिकेण
 परिकरितः” दर्शन ज्ञान चारित्र करि मंडित भया, बहुरि दो दोष कहिये
 राग द्वेष तेही भये दोष तिनिकरि रहित भया योगी ध्यानी मुनि है सो
 परमात्मा जो सर्वकर्मरहित शुद्ध परमात्मा ताकूं ध्यावै है ॥

भावार्थ—मन वचन कायकरि तीन काल योग धरि परमात्माकूं
 ध्यावै सो ऐसैं कष्ट में दृढ़ रहै तब जाणिये याकै ध्यानकी सिद्धि है,
 कष्ट आये चिगिजाय तब ध्यानकी सिद्धि काहंकी ? बहुरि कोई प्रकारकी
 चिन्तामें शल्य रहै तब चित्त एकाग्र होय नांही तब ध्यान कैसें होय ?
 तातैं शल्य रहित कह्या, बहुरि श्रद्धान ज्ञान आचरण यथार्थ न होय
 तब ध्यान काहेका तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र मंडित कह्या, बहुरि राग द्वेष
 इष्ट अनिष्ट बुद्धि रहै तब ध्यान कैसें होय ? तातैं परमात्माका ध्यान करै
 सो ऐसा होय करै, यह तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

आगैं कहै है जो—ऐसा होय सो उत्तम सुखकूं पावै है;—
गाथा—मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ यजो जीवो ।
 निम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोख्खं ॥४५॥

संस्कृत—मदमायाक्रोधरहितः लोभेन विवर्जितश्च यः जीवः ।

निर्मलस्वभावयुक्तः सः प्राप्नोति उत्तमं सौख्यम् ४५

अर्थ—जो जीव मद माया क्रोध इनिकार रहित होय बहुरि लोभ-
कारि विशेषकरि रहित होय सो जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त भया
उत्तम सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—लोकमें ऐसैं हं जो मद कहिये अतिमानी बहुरि माया
कपट अर क्रोध इनिकारि रहित होय अर लोभेकरि विशेष रहित होय
सो सुख पावै है, तीव्रकषायी अति आकुलतायुक्त होय निरंतर दुखी
रहै है; सो यह रीति मोक्षमार्गमें भी जाणू—जो क्रोध मान माया लोभ
ध्याय कषायतैं रहित होय है तब निर्मल भाव होय तब यथाख्यात
चारित्र पाय उत्तम सुख पावै है ॥ ४५ ॥

आगैं कहैं है जो विषय कषायनिमें आसक्त है परमात्माकी भावनातैं
रहित है रौद्रपरिणामी है सो जिनमतसूं पराङ्मुख है सो मोक्षके सुख-
निकूं नांही पावै है,—

गाथा—विसयकसाएहि जुदो रुदो परमप्यभावरहियमणो ।

सो ण लहइ सिद्धिसुखं जिणमुदपरम्मुहो जीवो ॥४६॥

संस्कृत—विषयकषायैः युक्तः रुद्रः परमात्मभावरहितमनाः ।

सः न लभते सिद्धिसुखं जिणमुद्रापराङ्मुखः जीवः ४६

अर्थ—जो जीव विषय कषायनिकारि युक्त है, बहुरि रुद्रपरिणामी है
हिंसादिक विषयकषायादिक पापनिविषैं हर्षसहित प्रवर्तैं है, बहुरि पर-
मात्माकी भावनाकरि रहित है चित्त जाका ऐसा जीव जिणमुद्रातैं परा-
ङ्मुख है सो ऐसा सिद्धिसुख जो मोक्षका सुख ताहि नांही पावै है ॥

भावार्थ—जिनमतमें ऐसा उपदेश है जो हिंसादिक पापनिमें विरक्त
अर विषय कषायनिमें आसक्त नांही अर परमात्माका स्वरूप जाणि

तिसकी भावनासहित जीव हांय है सो मोक्ष पावै है तातैं जिनमतकी मुद्रासं जो पराङ्मुख है ताकै काहेतैं मोक्ष होय संसारहीमें भ्रमै है । इहां रुद्रका विशेषण किया है ताका ऐसा भी आशय हैं जो रुद्र म्यारा होय हैं ते विषय कषायनिमें आसक्त होय जिनमुद्रातैं भ्रष्ट होय हैं तिनकै मोक्ष न होय है, तिनकी कथा पुराणनिमें जाननी ॥ ४६ ॥

आगैं कहै है जो—जिनमुद्रातैं मोक्ष होय है सो यह मुद्रा जिनि जीवनिक् न रुचै है ते संसारमें ही तिष्ठैं हैं;—

गाथा—जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्धिदा ।

सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ४७

संस्कृत—जिनमुद्रा सिद्धिसुखं भवति नियमेन जिनवरोद्धिदा ।

स्वप्नेऽपि न रोचते पुनः जीवाः तिष्ठन्ति भवगहने ४७

अर्थ—जिनमुद्रा है सो ही सिद्धिसुख है मुक्तिसुखही है, यह कारणविषै कार्यका उपचार जाननां, निजमुद्रा मोक्षका कारण है मोक्षसुख ताका कार्य है कैसी है जिनमुद्रा—जिन भगवाननैं जैसी कही है तैसीही है । तहां ऐसी जिनमुद्रा जो जीवकूं साक्षात् तौ दूरिही रहो स्वप्नविषैभी कदाचित् भी न रुचै है ताका स्वप्ना आवै है तौह अवज्ञा आवै है तौ सो जीव संसाररूप गहन वनविषै तिष्ठै है मोक्षके सुखकूं नाहीं पावै है ॥

भावार्थ—जिनदेवभाषित जिनमुद्रा मोक्षका कारण है सो मोक्षरूप ही है जातैं जिनमुद्राके धारक वर्तमानमेंभी स्वाधीन सुखकूं भोगवैं हैं अर पीछैं मोक्षके सुख पावै है । अर जा जीवकूं यह न रुचै है सो मोक्ष नाहीं पावै हैं संसारहीमें रहैं हैं ॥ ४७ ॥

आगैं कहै हैं जो परमात्माकूं ध्यावैं हैं सो योगी लोभरहित होय नवीन कर्मका आस्रव नाहीं करैं हैं;—

गाथा—परमपय झावंतो जोई मुबेइ मलदलोहेण ।

णादियदि णवं कम्मं णिदिहं जिणवरिदेहिं ॥४८॥

संस्कृत—परमात्मानं ध्यायन् योगी मुच्यते मलदलोमेन ।

नाद्रियते नवं कर्म निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥४८॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी परमात्माकू ध्यावता संता वर्ते है सो मल-का देनहारा जो लोभकषाय ताकरि छूटिये हैं ताँकै लोभ मल न लागै है याहीतैं नवीन कर्मका आस्रव ताँकै न होय यह जिनवरेन्द्र तीर्थकर सर्वज्ञदेवनै कहा है ॥

भावार्थ—मुनिमी होय अर परजन्मसंबंधी प्रासिका लोभ होय निदान करै ताँकै परमात्माका ध्यान नांही यातैं जो परमात्माका ध्यान करै ताँकै इस लोक परलोकसंबंधी परद्रव्यका कछू भी लोभ न होय है याहीतैं ताँकै नवीनकर्मका आस्रव न होय है, यह जिनदेव कही है। यह लोभ-कषाय ऐसा है जो—दशम गुणस्थान ताई पहुंचि अव्यक्त होय भी आत्माकै मल लगावे है तातैं याका काटनाही युक्त है। अथवा जहां ताई मोक्षकी चाहरूप लोभ रहै तहां ताई मोक्ष न होय तातैं लोभका अत्यन्त निषेध है ॥ ४८ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं निर्लोभी होय दृढ सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रवान होय परमात्माकू ध्यावै सो परमपदकू पावै है;—

गाथा—होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ ।

झायंतो अप्पाणं परमपयं पार्वण जोई ॥४९॥

संस्कृत—भूत्वा दृढचरित्रः दृढसम्यक्त्वेन भावितमतिः॥

ध्यायन्नात्मानं परमपदं प्राप्नोति योगी ॥४९॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार योगी ध्यानी मुनि दृढसम्यक्त्वकीर भावित है मति जाकी बहुरि दृढ है चारित्र जाकै ऐसा होयकरि आत्माकू ध्यावता संता परमपद जो परमात्मपद ताकू पावै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप दृढ होय परीषह आये न चिगै, ऐसैं आत्माकूं ध्यावै सो परमपद पौवै यह तात्पर्य है ॥ ४८ ॥

आगैं दर्शन ज्ञान चारित्रतैं निर्वाण होय है ऐसा कहते आये सो तहां दर्शन ज्ञान तौ जीवका स्वरूप है ते जाणें, अर चारित्र कहा है ! ऐसी आशंकाका उत्तर कहै है,—

गाथा—चरणं हवइं सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो ।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ॥५०॥

संस्कृत—चरणं भवति स्वधर्मः धर्मः सः भवति आत्मसमभावः ।
स रागरोषरहितः जीवस्य अनन्यपरिणामः ॥५०॥

अर्थ—स्वधर्म कहिये आत्माका धर्म है सो चरण कहिये चारित्र है, बडुरि धर्म हैं सो आत्मासमभाव है सर्व जीवनिविषैं समानभाव है जो अपना धर्म है सोही सर्व जीवनिमैं है अथवा सर्व जीवनिं आपसमान माननां है, बडुरि जो आत्मस्वभावसूं रागद्वेषकरि रहित है काहूतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि नाहीं है ऐसा चारित्र है सो जेसैं जीवके दर्शन ज्ञान है तैसैंही अनन्य परिणाम है जीवहीका भाव है ॥

भावार्थ—चारित्र है सो ज्ञान विषैं रागद्वेषरहित निराकुलतारूप धिरता भाव है सो जीवहीका अभेदरूप परिणाम है, कछू अन्य वस्तु नांही है ॥ ५० ॥

आगैं जीवके परिणामकै स्वच्छताकूं दृष्टान्तकरि दिखावै है,

गाथा—जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो ।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अण्णविहो ५१

संस्कृत—यथा स्फटिकमणिः विशुद्धः परद्रव्ययुतः भवत्यन्यः सः
तथा रागादिवियुक्तः जीवः भवति स्फुटमन्यान्यविधः

अर्थ—जैसेँ स्फटिकमणि विशुद्ध है निर्मल है उज्ज्वल है सो परद्रव्य जो पीत रक्त हरित पुष्पादिक तिनिकरि युक्त भया अन्य सा दीखै पीतादिवर्णमयी दीखै, तैसेँ जीव है सो विशुद्ध है स्वच्छस्वभाव है सो रागद्वेषादिक भावकरि युक्त भया संता अन्य अन्य प्रकार भया दीखै है यह प्रगट है ॥

भावार्थ—इहां ऐसा जाननां जे रागादि विकार^१ हैं ते पुलटलके विकार हैं अर यह जीवकै ज्ञानविषै आय झलकै तब तिनि^२ उपयुक्त भया ऐसेँ जानै जो ये भाव मेरेही हैं तिनिका भेदज्ञान न होय तब जीव अन्य अन्य प्रकाररूप अनुभवमै आवै है तहां स्फटिकमणिका दृष्टान्त है ताकै अन्यद्रव्य पुष्पादिकका डांक लागै तब अन्यसा दीखै है, ऐसेँ जीवके स्वच्छभावकी विचित्रता जाननीं ॥ ५१ ॥

याहीतैं आगै कहै है जो जेतैं मुनिकै रागद्वेषका अंश होय है तेतैं सम्यग्दर्शनकूं धारता भी ऐसा होय है;—

गाथा—देव गुरुम्मिय भक्तो साहम्मिय संजदेसु अणुरक्तो ।

सम्मत्तमुच्चहंतो ज्ञाणरओ होइ जोई सो ॥५२॥

संस्कृत—देवे गुरौ च भक्तः साधर्मिके च संयतेषु अनुरक्तः ।

सम्यक्त्वमुद्रहन् ध्यानरतः भवति योगी सः ॥५२॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्वकूं धारता संता है अर जे तैं यथाख्यात चारित्रकूं न प्राप्त होय है तेतैं देव जो अरहंत सिद्ध अर गुरु जो शिक्षादीक्षाका देनेवाला इनि विषै तौ भक्तियुक्त होय है इन्की भक्ति विनय सहित होय है, बहुरि अन्य संयमी मुनि आपसमान धर्मसहित हैं तिनिविषै अनुरक्त है अनुरागसहित होय है सो ही मुनि ध्यानविषै प्रीति-बान होय है, अर मुनि होयकरिभी देव गुरु साधर्मीनिविषै भक्ति अनु-रागसहित न होय ताकूं ध्यानकै विषै रुचिबान न कहिये जातैं ध्यान

होय तन्नै ध्यानवालासूं रुचि प्रीति होय, ध्यानवाले न रुचै तब जानिये याकूं ध्यान भी न रुचै ऐसैं जाननां ॥ ५२ ॥

आगैं कहै है जो—ध्यान सम्यग्ज्ञानीकै होय है सो ही तप करि कर्मका क्षय करै है;—

गाथा—उग्रतपेण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं ।

तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥ ५३ ॥

संस्कृत—उग्रतपसाञ्जानी यत् कर्म क्षपयति भवैर्बहुकैः ।

तज्ज्ञानी त्रिभिः गुप्तः क्षपयति अन्तर्मुहूर्तेन ॥ ५३ ॥

अर्थ—अज्ञानी है सो उग्र कहिये तीव्र जो तप ताकरि बहुत भव-
निकरि जो कर्म क्षय करै है तिस कर्मकूं ज्ञानी मुनि तीन गुप्तिकरि युक्त
भया अन्तर्मुहूर्तकरि क्षय करै है ॥

भावार्थ—जो ज्ञानका सामर्थ्य है सो तीव्र तपकाभी सामर्थ्य नांही
जाहैं ऐसैं है—जो अज्ञानी अनेक कष्ट सहि करि तीव्र तपकूं करतां संता
कोड्यां भवनिकरि जो कर्मका क्षय करै सो आत्म भावनासहित ज्ञानी
मुनि तिस कर्मकूं अन्तर्मुहूर्तमें क्षय करै है, यह ज्ञानका सामर्थ्य है ॥ ५३ ॥

आगैं कहै है जो इष्ट वस्तुका संबंधकरि परद्रव्यविषै रागद्वेष करै है
सो तिस भाव करि अज्ञानी होय है, ज्ञानी यातैं उलटा है;—

गाथा—सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू ।

सो तेण हु अण्णाणी णाणी एत्तो हु विवरीओ ॥ ५४ ॥

संस्कृत—शुभयोगेन सुभावं परद्रव्ये करोति रागतः साधुः ।

सः तेन तु अज्ञानी ज्ञानी एतस्मात्तु विपरीतः ॥ ५४ ॥

अर्थ—शुभ योग कहिये आपकै इष्ट वस्तु ताका योग संबंधकरि
परद्रव्यविषै सुभाव कहिये प्रीतिभाव ताहि करै है सो प्रगट राग द्वेष

है, इष्टविषै राग भया तब अनिष्ट वस्तुविषै द्वेषभाव होयही; ऐसैं जो राग द्वेष करै है सो तिस कारणकरि रागी द्वेषी अज्ञानी है, बहुरि यातैं विपरीत कहिये उलटा है परद्रव्यविषै राग द्वेष नांही करै है सो ज्ञानी है ॥

भावार्थ—ज्ञानी सम्यग्दृष्टी मुनिकैं परद्रव्यविषै रागद्वेष नांही है जातैं राग जाकूं कहिये जो—परद्रव्यकूं सर्वथा इष्ट मानि राग करै तैसैंही अनिष्ट मानि द्वेष करै, सो सम्यग्ज्ञानी परद्रव्यकूं इष्ट अनिष्ट कल्पै नांही तब काहेकूं राग द्वेष होय, चारित्रमोहके उदयतैं कछू धर्मराग होय ताकूं भी रोग जाणि भला न जाणैं तब अन्यसूं कैसैं राग होय, परद्रव्यसूं राग द्वेष करै सो तौ अज्ञानी है; ऐसैं जाननां ॥ ५४ ॥

आगैं कहै है जो जैसैं परद्रव्यकै विषै रागभाव होय है तैसैं मोक्षकै निमित्तभी राग होय तौ सो भी राग आस्रवका कारण है, सो भी ज्ञानी न करै;—

गाथा—आस्रवहेदू य तहा भावं मोक्षस्स कारणं हवदि ।

सो तेण हु अण्णाणी आदसहावा हु विवरीओ ॥५५॥

संस्कृत—आस्रवहेतुश्च तथा भावः मोक्षस्य कारणं भवति ।

सः तेन तु अज्ञानी आत्मस्वभावात्तु विपरीतः ॥५५॥

अर्थ—जैसैं परद्रव्यविषै राग कर्मबंधका कारण पूर्वैं कहा तैसाही राग भाव जो मोक्षनिमित्तभी होय तौ आस्रवहीका कारण है। कर्मका बंधही करै है तिस कारणकरि जो मोक्षकूं परद्रव्यकी ज्यों इष्ट मानि तैसैंही रागभाव करै तौ सो जीव मुनिभी अज्ञानी है जातैं कैसा है सो आत्मस्वभावतैं विपरीत है, आत्मस्वभावकूं जान्यां नांही ॥

भावार्थ—मोक्ष तौ सर्व कर्मनितैं रहित अपनांही स्वभाव है आपकूं सर्व कर्म रहित होनां, तातैं ये भी रागभाव ज्ञानीकै न होय; यद्यपि

चारित्र मोहका उदय होय तौ तिस रागकूं बंधका कारण जानि रोगवत् छोड्या चाहै तौ ज्ञानी है ही, अर इस रागभावकूं भला जांणि आप करै तौ अज्ञानी है आत्माका स्वभाव सर्व रागादिकतैं रहित है ताकूं यानैं न जान्या; ऐसैं रागभावकूं मोक्षका कारण अर भला जानि करै ताका निषेध जाननां ॥ ५५ ॥

आगैं कहै है जो—कर्मही मात्र सिद्धि मानै है तानैं आत्मस्वभाव जान्यां नांही सो अज्ञानी है जिनमततैं प्रतिकूल है;—

गाथा—जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो ।

सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो ॥५६॥

संस्कृत—यः कर्मजातमतिकः स्वभावज्ञानस्य खंडदूषणकरः ।

सः तेन तु अज्ञानी जिनशासनदूषकः भणितः ॥५६॥

अर्थ—जो कर्महीकैं बिषैं उपजै है बुद्धि जाकै ऐसा पुरुष है सो स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान ताकूं खंडरूप दूषणका करनेवाला है, इन्द्रिय-ज्ञान खंडखंडरूप है अपने अपने विषयकूं जानै है तिसमात्रही ज्ञानकूं मानै है तिस कारणकरि ऐसैं माननेवाला अज्ञानी है जिनमतका दूषण करै है ॥

भावार्थ—भीमांसकमती कर्मवादी हैं सर्वज्ञकूं मानै नांही, इन्द्रियज्ञानमात्रही ज्ञानकूं मानै हैं, केवलज्ञानकूं मानै नांही, ताका इहां निषेध किया है जातैं जिनमतमें आत्माका स्वभाव सर्वका जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कह्या है सो कर्मके निमित्ततैं आच्छादित होय इन्द्रियनिकै द्वार क्षयोपशमके निमित्ततैं खंडरूप भया खंड खंड विषय-निक्कूं जानै है, कर्मका नाश भये केवलज्ञान प्रगट होय तब आत्मा सर्वज्ञ होय है ऐसैं भीमांसक मती मानै नांही सो अज्ञानी है जिनमततैं

प्रतिकूल है कर्ममात्रहीक विषै जाकी बुद्धि गत होय रही है; ऐसै कोऊ और भी मानै सो ऐसाहा जाननां ॥ ५६ ॥

आगै कहै है जो ज्ञान चारित्र रहित होय अर तप सम्यक्त्व रहित होय अर अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न होय तौ ऐसै केवल लिंग भेष-मात्रही करि कहा सुख है ? किछू भी नांही;—

गाथा—णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहि संयुत्तं ।

अण्णेषु भावरहियं लिंगग्रहणेण किं सोक्खं ॥५७॥

संस्कृत—ज्ञानं चारित्रहीनं दर्शनहीनं तपोभिः संयुक्तम् ।

अन्येषु भावरहितं लिंगग्रहणेन किं सौख्यम् ॥५७॥

अर्थ—जहां ज्ञान तौ चारित्ररहित है, बहुरि जहां तपकरि तौ युक्त है अर दर्शन जो सम्यक्त्व ताकरि रहित है, बहुरि अन्य भी आवश्यक आदि क्रिया हैं तिनि विषै शुद्धभाव नांही है; ऐसै लिंग जो भेष ताके ग्रहणविषै कहा सुख है ॥

भावार्थ—कोई मुनि भेषमात्र तौ मुनि भयो अर शास्त्र भी पढै हैं ताकू कहै है जो—शास्त्र पढि ज्ञान तौ किया परन्तु निश्चय चारित्र जो शुद्ध आत्माका अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष न किया अर तपका क्लेश बहुत किया अर सम्यक्त्व भावना न भई अर आवश्यक आदि बाह्य क्रियाकरी अर भाव शुद्ध न लगाया तौ ऐसै बाह्य भेषमात्रमें तौ क्लेश ही भया कुछ शान्तभावरूप सुख तौ न भया अर यह भेष परलोकके सुखके विषै भी कारण न भया; तातैं सम्यक्त्वपूर्वक भेष धारनां श्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

आगै सांख्यमती आदिका आशयका निषेध करै है;

गाथा—अज्ञेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी ।

सो पुण्ण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ॥५८॥

संस्कृत—अचेतनेपि चेतनं यः मन्यते सः भवति अज्ञानी ।

सः पुनः ज्ञानी भणितः यः मन्यते चेतने चेतनम् ५८

अर्थ—जो अचेतनविषै चेतनकूं मानै है सो अज्ञानी है बहुरि जो चेतनविषै ही चेतनकूं मानै है सो ज्ञानी कहा है ॥

भावार्थ—संख्यमती ऐसैं कहै है जो पुरुष तौ उदासीन चेतनास्वरूप नित्य है अर यह ज्ञान है सो प्रधान धर्म है, ताके मतमें सो पुरुषकूं उदासीन चेतनास्वरूप मान्यां सो ज्ञान विना तौ जडही भया, ज्ञानविना चेतन काहेका ? बहुरि ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मान्या अर प्रधानकूं जड मान्यां तब अचेतनविषै चेतनामानी तब अज्ञानीही भया । बहुरि नैयायिक वैशेषिकमती गुण गुणीकै सर्वथा भेद मानैं है तब चेतना गुण जीवतैं न्यारा मान्यां तब जीव तौ अचेतनही रह्या ऐसैं अचेतनविषै चेतनपणां मान्या । बहुरि भूतवादी चार्वाक भूत पृथ्वी आदिकतैं चेतनता उपजी मानै है तहां भूत तौ जड है तिनिविषै चेतनता कैसैं उपजै । इत्यादिक अन्य भी केई मानैं हैं ते सारे अज्ञानी हैं तातैं चेतनविषै ही चेतन मानै सो ज्ञानी है, यह जिनमत है ॥ ५८ ॥

आगैं कहै है जो तपरहित तौ ज्ञान अर ज्ञानरहित तप ये दोऊ ही अकार्य हैं दोऊ संयुक्त भयेही निर्वाण है;—

गाथा—तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो ।

तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ ५९ ॥

संस्कृत—तपोरहितं यत् ज्ञानं ज्ञानवियुक्तं तपः अपि अकृतार्थम् ।

तस्मात् ज्ञानतपसा संयुक्तः लभते निर्वाणम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो ज्ञान तपरहित है बहुरि जो तप है सो भी ज्ञानरहित है तौ दोऊही अकार्य हैं तातैं ज्ञान तपकरि संयुक्त है सो निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—अन्यमती सांख्यादिक कोई तौ ज्ञानचर्चा तौ बहुत करै है अर कहै है—ज्ञानहीतैं मुक्ति है अर तप करै नांही, विषयकषायनिकूं प्रधानका धर्म मानि स्वच्छंद प्रवर्तैं। बहुरि केई ज्ञानकूं निष्फल मानि अर ताकूं यथार्थ जानैं नांही अर तप क्लेशादिकहीतैं सिद्धि मानि ताके करनेमें तत्पर रहै। तहां आचार्य कहै है—ये दोऊही अज्ञानी हैं जे ज्ञान-सहित तप करै हैं ते ज्ञानी हैं वैही मोक्ष पावैं हैं, यह अनेकांतस्वरूप जिनमतका उपदेश है ॥ ५९ ॥

आगैं याही अर्थकूं उदाहरणतैं दृढ करै है;—

गाथा—ध्रुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं ।

णाउण ध्रुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि ॥ ६० ॥

संस्कृत—ध्रुवसिद्धिस्तीर्थकरः चतुर्ज्ञानयुतः करोति तपश्चरणम् ।

ज्ञात्वा ध्रुवं कुर्यात् तपश्चरणं ज्ञानयुक्तः अपि ॥ ६० ॥

अर्थ—आचार्य कहै है—देखो जाकै नियमकरि मोक्ष होनी है अर चार ज्ञान मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इनिकरि युक्त है ऐसा तीर्थकर है सो भी तपश्चरण करै हैं, ऐसैं निश्चयकरि जानि ज्ञानकरि युक्त होतैं भी तप करनां योग्य है ॥

भावार्थ—तीर्थकर मति श्रुति अवधि इनि तीन ज्ञान सहित तौ जनमै है बहुरि दीक्षा लेतैंही मनःपर्यय ज्ञान उपजै है बहुरि मोक्ष जाकै नियम-करि होनी है तौऊ तप करै है, तातैं ऐसा जानि ज्ञान होतैंभी तप कर-नेविषैं तत्पर होनां, ज्ञानमात्रहीतैं मुक्ति न माननीं ॥ ६० ॥

आगैं जो बाह्यलिंगकरि सहित है अर अभ्यंतरलिंगरहित है सो स्वरू-पाचरण चारित्रतैं अष्ट भया मोक्षमार्गका विनाश करनेवाला है, ऐसा सामान्यकरि कहै है;—

गाथा—बाहिरलिङ्गेण जुदो अब्भंतरलिङ्गरहियपरियम्मो ।

सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहु ॥६१॥

संस्कृत—बाह्यलिङ्गेन युतः अभ्यंतरलिङ्गरहितपरिकर्म्मा ।

सः स्वकचारित्रभ्रष्टः मोक्षपथविनाशकः साधुः॥६१॥

अर्थ—जो जीव बाह्यलिङ्ग भेषकरि संयुक्त है, अर अभ्यंतरलिङ्ग जो परद्रव्यतै सर्व रागादिक ममत्वभावतै रहित आत्माका अनुभवन ताकरि रहित है परिकर्म कहिये परिवर्त्तन जाँमें ऐसा मुनि है सो स्वकचारित्र कहिये अपना आत्मस्वरूपका आचरण जो चारित्र ताकरि भ्रष्ट है, याहीतै मोक्षमार्गका विनाश करनेवाला है ॥

भावार्थ—यह संक्षेपकरि कह्या जानूं जो बाह्यलिङ्गसंयुक्त है अर अभ्यंतर कहिये भावलिङ्ग रहित है सो स्वरूपाचरण चारित्रतै भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका नाश करनेवाला है ॥ ६१ ॥

आगै कहै है—जो सुखकरि भाया ज्ञान है सो दुःख आये नष्ट होय है ताँ तपश्चरणसहित ज्ञानकूं भावनां;—

अनुदुपः—सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि ।

तम्हा जहावलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावण ॥६२॥

संस्कृत—सुखेन भावितं ज्ञानं दुःखे जाते विनश्यति ।

तस्मात् यथावलं योगी आत्मानं दुःखैः भावयेत्॥६२॥

अर्थ—जो सुखकरि भाया हुवा ज्ञान है सो उपसर्ग परीषहादिकरि दुःखकूं उपजेतै नष्ट होजाय है ताँ यह उपदेश है जो योगी ध्यानी मुनि है सो तपश्चरणादिके कष्ट दुःखसहित आत्माकूं भावै ॥

भावार्थ—तपश्चरणका कष्ट अंगीकार करि ज्ञानकूं भावै तौ परीषह आये ज्ञानभावनातै चिगै नांही ताँ शक्तिसारु दुःख सहित ज्ञानकूं भावनां,

सुखहीमें भावै दुःख आये व्याकुल होय तब ज्ञानभावना न रहै; तत्तै यह उपदेश है ॥ ६२ ॥

आगै कहै है जो—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां;—

गाथा—आहारासणनिद्राजयं च काऊण जिणवरमएण ।

झायव्वो णियअप्पा णाऊणं गुरुप्पसाएण ॥६३॥

संस्कृत—आहारासननिद्राजयं च कृत्वा जिनवरमत्तेन ।

ध्यातव्यः निजात्मा ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥६३॥

अर्थ—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि अर जिनवरके मत करि गुरुके प्रसादकरि जानि निज आत्माकूं ध्यावनां ॥

भावार्थ—आहार आसन निद्राकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां तौ अन्यमतीभी कहै हैं परन्तु तिनिक्कै यथार्थ विधान नाहीं ताँतै आचार्य कहै है कि जैसें जिनमतमें कहा है तिस विधानकूं गुरुनिके प्रसादकरि जानि अर ध्याये सफल हैं, जैसें जैनसिद्धान्तमें आत्माका स्वरूप तथा ध्यानका स्वरूप अर आहार आसन निद्रा इनिके जीतनेका विधान कहा है तैसें जानिकरि तिनिमें प्रवर्त्तनां ॥ ६३ ॥

आगै आत्माकूं ध्यावनां सो आत्मा कैसा है, सो कहै है,—

गाथा—अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा ।

सो ज्ञायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुप्पसाएण ॥६४॥

संस्कृत—आत्मा चारित्रवान् दर्शनज्ञानेन संयुतः आत्मा ।

सः ध्यातव्यः नित्यं ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥६४॥

अर्थ—आत्मा है सो चारित्रवान् है बहुरि दर्शन ज्ञानकरि संहित है ऐसा आत्मा गुरुके प्रसादकरि जानि ध्यावनां ॥

भावार्थ—आत्माका रूप दर्शनज्ञानचारित्रमयी है सो याका रूप जैनगुरुनिके प्रसादकरि जान्या जाय है । अन्यमर्ता अपनी बुद्धिकल्पित जैसे तैसें मानि ध्यावैं हैं तिनिकै यथार्थ सिद्धि नाहीं; तातैं जैनमतकै अनुसार ध्यावनां ऐसा उपदेश है ॥ ६४ ॥

आगैं कहैं हैं—आत्माका जाननां भावनां विषयनिर्तैं विरक्त होनां ये उत्तरोत्तर दुःखतैं पाइये है;—

गाथा—दुःखे गज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं ।

भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥६५॥

संस्कृत—दुःखेन ज्ञायते आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा भावना दुःखम् ।

भावितस्वभावपुरुषः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥६५॥

अर्थ—प्रथम तौ आत्माकूं जानिये है सो दुःखतैं जानिये है, बहुरि आत्माकूं जानिकरि भी भावना करनां फेरि फेरि याहीका अनुभव करनां दुःखतैं होय है, बहुरि कदाचित् भावनां भी कोई प्रकार होय तौ भाया है जिनभावना जानैं ऐसा पुरुष विषयनिविषैं विरक्त बडे दुःखतैं होय है ॥

भावार्थ—आत्माका जाननां भावनां विषयनिर्तैं विरक्त होनां उत्तरोत्तर यह योग मिलनां बहुत दुर्लभ है, यातैं यह उपदेश है जो—योग मिले प्रमादी न होनां ॥ ६५ ॥

आगैं कहैं हैं जेतैं विषयनिर्तैं यह मनुष्य प्रवर्त्तैं है तेतैं आत्मज्ञान न होय है;—

गाथा—ताम ण गज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम ।

विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥६६॥

संस्कृत—तावन्न ज्ञायते आत्मा विषयेषु नरः प्रवर्त्तते यावत् ।

विषये विरक्तचित्तः योगी जानाति आत्मानम् ॥६६॥

अर्थ—जेतैं यह मनुष्य इन्द्रियनिके विषयनिविषैं प्रवर्तैं है तेतैं आत्माकूं नांही जानैं है तातैं योगी ध्यानी मुनि है सो विषयनिविषैं विरक्त है चित्त जाका ऐसा भया संता आत्माकूं जानैं है ॥

भावार्थ—जीवका स्वभावकै उपयोगकी ऐसी स्वच्छता है जो जिस ज्ञेय पदार्थसूं उपयुक्त होय तैसाही हो जाय है, तातैं आचार्य कहै हैं जो—जेतैं विषयनिमें चित्त रहै तेतैं तिनिरूप रहै है आत्माका अनुभव नांही होय; तातैं योगी मुनि ऐसा विचारि विषयनिमें विरक्त होय आत्मामें उपयोग लगावै तब आत्माकूं जानै अनुभवै तातैं विषयनिमें विरक्त होनां यह उपदेश है ॥ ६६ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करै है जो आत्माकूं जानि करिभी भावना बिना संसारहीमें रहै है;—

गाथा—अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपम्भट्टा ।

हिंडंति चाउरंगं विसयेसु विमोहिया मूढा ॥६७॥

संस्कृत—आत्मानं ज्ञात्वा नराः केचित् सद्भावभावप्रभ्रष्टाः ।

हिण्डन्ते चातुरंगं विषयेषु विमोहिताः मूढाः ॥६७॥

अर्थ—केई मनुष्य आत्माकूं जानिकरिभी अपने स्वभावकी भावनातैं अत्यंत भ्रष्ट भये विषयनिविषैं मोहित होय करि अज्ञानी मूर्ख च्यार गतिरूप संसारविषैं भ्रमे है ॥ ६७ ॥

भावार्थ—पहलैं कहाथा जो आत्माकूं जाननां भावनां विषयनिमें विरक्त होनां ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाइये है, तहां विषयनिमें लग्या प्रथम तौ आत्माकूं जानैं नांही ऐसैं कहा, अब इहां ऐसैं कहा जो आत्माकूं जानिकरिभी विषयनिकै वशीभूत भया भावना न करै तौ संसारहीमें भ्रमे है; तातैं आत्माकूं जानि विषयनिमें विरक्त होनां यह उपदेश है ॥ ६७ ॥

आगैं कहै है—जो विषयनिहैं विरक्त होय आत्माकूं जानि करि भावै हैं ते संसारकूं छोड़ैं हैं;—

गाथा—जे पुण विसयविरक्ता अप्पा णाऊण भावणासहिंया ।

छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥६८॥

संस्कृत—ये पुनः विषयविरक्ताः आत्मानं ज्ञात्वा भावनासहिताः।

त्यजन्ति चातुरंगं तपोगुणयुक्ताः न सन्देहः ॥६८॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जे पुरुष मुनि विषयनिहैं विरक्त होयकरि आत्माकूं जानि भावै हैं बारंबार भावनाकरि अनुभवैं हैं ते तप कहिये बारह प्रकार तप अर मूलगुण उत्तरगुणनिकरि युक्त भये- संसारकूं छोड़ैं हैं, मोक्ष पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयनिहैं विरक्त होय आत्माकूं जानि भावना करनीं यातैं संसारतैं छूटि मोक्ष पावो, यह उपदेश है ॥ ६८ ॥

आगैं कहै है जो परद्रव्यविषै लेशमात्रभी राग होय तौ सो पुरुष अज्ञानी है, अपनां स्वरूप जान्यां नाहीं;

गाथा—परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रदि हवेदि मोहादो ।

सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ॥६९॥

संस्कृत—परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रतिर्भवति मोहात् ।

सः मूढः अज्ञानी आत्मस्वभावात् विपरीतः ॥६९॥

अर्थ—जा पुरुषकै परद्रव्यविषै परमाणुप्रमाणभी लेशमात्र मोहतैं रति कहिये राग प्रीति होय तौ सो पुरुष मूढ है, अज्ञानी है आत्मस्वभावतैं विपरीत है ॥

भावार्थ—भेदविज्ञान भये पीछैं जीव अजीवकूं न्यारे जानैं तब परद्रव्यकूं अपनां न जानैं तब तिसतैं राग भी न होय, अर जो राग होय तौ—जानिये—यानैं आपा परका भेद जान्यां नाहीं, अज्ञानी है,

आत्मस्वभावतैँ प्रतिकूल है; अर ज्ञानी भये पीछे चारित्र्यमोहका उदय रहे जेतै कलूक राग रहै है ताकूं कर्मजन्य अपराध मानै है, तिस रागतै राग नाहीं है तातैँ विरक्त ही है तातैँ ज्ञानी परद्रव्यतैँ रागी न कहिये; ऐसैँ जाननां ॥

आगैँ इस अर्थकूं संक्षेपकरि कहै है;—

गाथा—अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं ।

होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥७०॥

संस्कृत—आत्मानं ध्यायतां दर्शनशुद्धीनां दृढचारित्राणाम् ।

भवति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥७०॥

अर्थ—जे पूर्वोक्त प्रकार विषयनिस्सूं विरक्त है चित्त जिनिका, बहुरि आत्माकूं ध्यायते संते वतैँ हैं, बहुरि बाह्य अम्यंतर दर्शनकी शुद्धता जिनिकै है, बहुरि दृढ चारित्र जिनिकै है, तिनिकै निश्चयकरि निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—पूर्वैँ कहा जो विषयनिस्सूं विरक्त होय आत्माका स्वरूप जानि जे आत्माकी भावना करै हैं ते संसारतैँ छूटै हैं, तिसही अर्थकूं संक्षेपकरि कहा है—जो इंद्रियनिके विषयनिस्सूं विरक्त होय बाह्य अम्यंतर दर्शनकी शुद्धताकीरि दृढ चारित्र पालै हैं तिनिकै नियमकरि निर्वाणकी प्राप्ति होय है, इंद्रियनिके विषयनिविषैँ आसक्तता है सो सर्व अनर्थका मूल है तातैँ इनिँ विरक्त भये उपयोग आत्माँ लागै जब कार्य सिद्धि होय है ॥ ७० ॥

आगैँ कहै है जो परद्रव्यविषैँ राग है सो संसारका कारण है तातैँ योगीश्वर आत्माविषैँ भावना करै है;—

अनुष्टुप—जेण रागो परे दब्बे संसारस्स हि कारणं ।

तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे समावणा ७१

संस्कृत—येन रागः परे द्रव्ये संसारस्य हि कारणम् ।

तेनापि योगी नित्यं कुर्यात् आत्मनि स्वभावनाम् ७१

अर्थ—जा कारणकरि परद्रव्यविषै राग है सो संसारहीका कारण है तिस कारणही करि योगीश्वर मुनि है ते नित्य आत्माहीविषै भावना करै हैं ॥

भावार्थ—कोई ऐसी आशंका करै जो—परद्रव्यविषै राग करे कहा होय है ! परद्रव्य है सो पर है ही, अपने राग जिसकाळ भया तिसकाळ है पीछें मिटि जाय है ताकूं उपदेश किया है—परद्रव्यसूं राग किये परद्रव्य अपनी लार लागै है यह प्रसिद्ध है बहुरि अपने रागका संस्कार दृढ होय है तब परलोक ताई भी चल्या जाय है यह तौ युक्ति सिद्ध है; अर जिनागममें रागतैं कर्मका बंध कहाहै तिसका उदय अन्य जन्मकूं कारण है ऐसैं परद्रव्यविषै रागतैं संसार होय है; तगतैं योगीश्वर मुनि परद्रव्यतैं राग छोडि आत्माविषै निरन्तर भावना राखै है ॥ ७१ ॥

आगैं कहै है जो ऐसे समभावतैं चारित्र होय है;—

अनुष्टुप—पिंदाय य पसंसाय दुःखे य सुहृत्सु य ।

सत्तूणं चैव बंधूणं चारित्रं समभावदो ॥७२॥

संस्कृत—निंदायां च प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च ।

शत्रूणां चैव बंधूनां चारित्रं समभावतः ॥७२॥

अर्थ—निंदाविषै बहुरि प्रशंसाविषै बहुरि दुःखविषै बहुरि सुखविषै बहुरि शत्रूनिविषै बहुरि बंधु मित्रनिविषै समभाव जो समतापरिणाम रंगैं देखतैं रहितपणां, ऐसे भावतैं चारित्र होय है ॥

भावार्थ—चारित्रका स्वरूप यह कहा है जो आत्माका स्वभाव है सो कर्मके निमित्ततैं ज्ञानविषै परद्रव्यतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि होय है,

तिस इष्ट अनिष्ट बुद्धिका अभावतैं ज्ञानहीमैं उपयोग लागैं ताकूं शुद्धो-
पयोग कहिये है सो ही चारित्र है, सो यह होय जहां निन्दा प्रशंसा
दुःख सुख शत्रु मित्रविधैं समान बुद्धि होय है, निन्दा प्रशंसाका द्विधा-
भाव मोहकर्मका उदयजन्य है, याका अभाव सो ही शुद्धोपयोगरूप
चारित्र है ॥ ७२ ॥

आगैं कहै है—जो.केई मूर्ख ऐसैं कहै हैं जो अबार पंचमकाल है
सो आत्मध्यानका काल नांही, तिनिका निषेध करै है,—

गाथा—चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्ठा ।

केई जंपंति णरा ण हु कालो ज्ञाणजोयस्स ॥७३॥

संस्कृत—चर्यावृताः व्रतसमितिवर्जिताः शुद्धभावप्रभ्रष्टाः ।

केचित् जल्पंति नराः न स्फुटं कालः ध्यानयोगस्य ७३

अर्थ—जो केई नर कहिये मनुष्य ऐसे हैं जो चर्या कहिये आचार-
क्रिया सो है आवृत जिनकैं चारित्र मोहका उदय प्रबल है ताकारिं चर्या
प्रकट न होय है याहीतैं व्रतसमितिकरि रहित हैं बहुरि मिथ्या अभिप्रा-
यकरि शुद्धभावतैं अत्यंत भ्रष्ट हैं, ते ऐसैं कहै हैं जो—अबार पंचम-
काल है सो यह काल प्रगट ध्यान योगका नांही ॥ ७३ ॥

ते प्राणी कैसे हैं सो आगैं कहै हैं;—

गाथा—सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को ।

संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ ज्ञाणस्स ॥७४॥

संस्कृत—सम्यक्त्वज्ञानरहितः अभव्यजीवः स्फुटं मोक्षपरिमुक्तः ।

संसारसुखे सुरतः न स्फुटं कालः भणति ध्यानस्य ७४

अर्थ—पूर्वोक्त ध्यानका अभाव कहनेवाला जीव कैसा है सम्यक्त्व
अर ज्ञानकरि रहित है अभव्य है याहीतैं मोक्षकरि रहित है, अर संसारके

इंद्रिय सुख है तिनिहीकूं भले जानि तिनिमें रत है, आसक्त है, यातैं कहै है—जो अबार ध्यानका काल नाहीं ॥

भावार्थ—जाकूं इंद्रियनिके सुखही प्रिय लागैं हैं अर जीवाजीव पदार्थका श्रद्धान ज्ञानतैं रहित है, सो ऐसैं कहै है जो अबार ध्यानका काल नाहीं । यातैं जानिये है—ऐसैं कहनेवाला अभव्य है याकै मोक्ष न होयगी ॥ ७४ ॥

फेरि कहै है जो अबार ध्यानका काल न कहै है तानैं पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्तिका स्वरूप जान्यां नाहीं—

गाथा—पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।

जो मूढो अण्णाणी ण हु कालोभणइ ज्ञाणस्स ॥७५॥

संस्कृत—पंचसु महाव्रतेषु च पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु ।

यः मूढः अज्ञानी न स्फुटं कालः भणिति ध्यानस्य ७५

अर्थ—जो पांच महाव्रत पांचसमिति तीन गुप्ति इन विषैं मूढ है अज्ञानी है इनिका स्वरूप नाहीं जानैं है अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतैं इनिकूं पालि न सकै है, सो ऐसैं कहै हैं जो अबार ध्यानका काल नाहीं है ॥ ७५ ॥

आगैं कहै है जो अबार इस पंचमकालमें धर्मध्यान होय है, यह न मानैं है सो अज्ञानी है,

गाथा—भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं ह्वेइ साहुस्स ।

तं अप्यसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६॥

संस्कृत—भरते दुःषमकाले धर्मध्यानं भवति साधोः ।

तदात्मस्वभावस्थिते न हि मन्यते सोऽपि अज्ञानी ७६

अर्थ—इस, भरतक्षेत्रविषैं दुःषमकाल जो पंचमकाल ताविषैं साधु मुनिकै धर्मध्यान होय है सो यह धर्मध्यान आत्मस्वभावकै विषैं स्थित हैं

तिस मुनिकै होय है; यह न मानै सो अज्ञानी है जाकूं धर्मध्यानका स्वरूपका ज्ञान नांही ॥

भावार्थ—जिनसूत्रमें इस भरतक्षेत्र पंचमकालमें आत्माभावनाविषै स्थित मुनिकै धर्मध्यान कहा है; जो यह न मानै सो अज्ञानी है, जाकूं धर्मध्यानके स्वरूपका ज्ञान नांहीं ॥ ७६ ॥

आगै कहै हैं—जो अबार कालमेंभी रत्नत्रयका धारी मुनि होय सो स्वर्गविषै लौकान्तिकपणां इन्द्रपणां पाय तहांतैं चय मोक्ष जाय है, ऐसैं जिनसूत्रमें कहा है;—

गाथा—अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा ज्ञाएवि लहइ इंदत्तं ।

लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

संस्कृत—अद्य अपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभंते इन्द्रत्वम् ।
लौकान्तिकदेवत्वं ततः च्युत्वा निर्वृतिं यांति ॥७७॥

अर्थ—अबार इस पंचमकालमेंभी जे मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्धकरि संयुक्त होय हैं ते आत्माकूं ध्यायकरि इन्द्रपणां पावैं हैं तथा लौकान्तिकदेवपणां पावैं हैं, बहुरि तहांतैं चय करि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—कोई कहै है जो अबार इस पंचमकालमें जिनसूत्रमें मोक्ष होना कथा नाहीं तातैं ध्यानका करना तौ निष्फल खेद है, ताकूं कहै है रे भाई ! मोक्ष जानो निषेधो है अरु शुकध्यान निषेधो है; धर्मध्यान तौ निषेधा नांहीं अबार जे मुनि रत्नत्रयकरि शुद्ध भये धर्मध्यानमें लीन होय आत्माकूं ध्यावैं हैं ते मुनि स्वर्गमें इन्द्रपणां पावैं हैं अथवा लौकान्तिकदे व एकाभवतारी है तिनमें जाय उपजै हैं तहांतैं चयकरि मनुष्य होय मोक्ष पावैं हैं । ऐसै धर्मध्यानतैं परंपरा मोक्ष होय तब सर्वथा निषेध

काहेकू कीजिये, जे निषेध करै ते अज्ञानी मिथ्यादृष्टी हैं तिनिकू विषयक-
पायनिमें स्वच्छन्द रहनां है तातैं ऐसे कहै है ॥ ७७ ॥

आगैं कहै है जो अबार कालमें ध्यानका अभाव मानि अर मुनि
लिंगपहलैं ग्रहण किया तिसकू गौणकरि पापमें प्रवर्त्तैं हैं ते मोक्षमार्गतैं
च्युत हैं;—

गाथा—जे पावमोहियमई लिंगं वेंचूण जिणवरिंदाणं ।

पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥

संस्कृत—ये पापमोहितमतयः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम् ।

पापं कुर्वन्ति पापाः ते त्यक्त्वा मोक्षमार्गे ॥७८॥

अर्थ—जे पापकर्मकरि मोहित है बुद्धि जिनिकी ऐसे हैं ते जिनव-
रेन्द्र तीर्थकरका लिंग ग्रहण करिभी पाप करैं हैं ते पापी मोक्षमार्गतैं
च्युत हैं ॥

भावार्थ—जे पहलैं निर्ग्रन्थ लिंग धार्या पीछैं ऐसी पाप बुद्धि
उपजी—जो अबार ध्यानका तौ काल नाहीं तातैं काहेकू प्रयास करैं, ऐसैं
विचारि अर पापमें प्रवर्त्तनैं लगिजाय हैं, ते पापी हैं, तिनिकै
मोक्षमार्ग नाहीं ॥ ७२ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ते कैसे हैं;—

गाथा—जे पंचचेलसत्ता ग्रंथग्गाहीय जायणासीला ।

आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥

संस्कृत—ये पंचचेलसक्ताः ग्रंथग्राहिणः याचनाशीलाः ।

अधः कर्मणि रताः ते त्यक्ताः मोक्षमार्गे ॥७९॥

अर्थ—पंच प्रकारके चेल कहिये वस्त्र तिनिनिषेध आसक्त हैं; अंडज,
कर्पासज, बल्कल, चर्मज, रोमज ऐसैं पंच प्रकार वस्त्रमें सूं कोई एक
वस्त्रकू ग्रहण करैं हैं, बहुते ग्रंथग्राही कहिये परिग्रहके ग्रहण करनेवाले

हैं, बहुरि याचनाशील कहिये याचना मागनेकाही जिनिका स्वभाव है, बहुरि अधःकर्म जो पापकर्म ताविषैं रत हैं सदोष आहार करैं हैं ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ॥

भावार्थ—इहां आशय ऐसा है जो पहलैं तौ निर्ग्रंथ दिगंबर मुनि भये थे पाछैं कालदोष विचारि चारित्र पालनेकूं असमर्थ होय विग्रंथ लिंगतैं भ्रष्ट होय वस्त्रादिक अंगीकार किया, परिग्रह राखनेलग्गे याचना करने लगैं अधः-कर्म औदोशिक आहार करनेलग्गे तिनिका निषेध है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं । पहलैं तौ भद्रबाहुस्वामी निर्ग्रंथ थे । पीछैं दुर्भिक्षकालमें भ्रष्ट होय अर्द्ध-फालक कहावैं थे पीछैं तिनिमैं श्वेतांबर भये तिनिमैं तिनिनैं तिस भेषके पोखनेकूं सूत्र बनाये तिनिमैं केई कल्पित आचरण तथा तिसकी साधक कथा लिखी । बहुरि इनि सिवाय अन्य भी केई भेष बदले, ऐसैं काल दोषतैं भ्रष्टनिका संप्रदाय प्रवर्तैं है सो यह मोक्षमार्ग नांही है, ऐसा जनाया है । यातैं इनिभ्रष्टनिकूं देखि ऐसा ही मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करनां ॥ ७९ ॥

आगैं कहै है जो मोक्षमार्गी तौ ऐसे मुनि हैं;—

गाथा—गिगंथमोहमुक्ता बावीसपरीषहा जियकसाया ।

पावारंभविमुक्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८०॥

संस्कृत—निर्ग्रंथाः मोहमुक्ताः द्वाविंशतिपरीषहाः जितकर्षायाः ।

पापारंभविमुक्ताः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥८०॥

अर्थ—जे मुनि निर्ग्रंथ हैं परिग्रहकरि रहित हैं, बहुरि मोह करि रहित हैं काहू परद्रव्यसूं ममत्वभाव जिनिकै नांही है, बहुरि बाईस परीषहनिका सहना जिनिकै पाइये है, बहुरि जीतैं हैं क्रोधादि कषाय जिनिनैं, बहुरि पापारंभकरि रहित हैं गृहस्थके करनेका आरंभादिक पाष है

तिसमें नांही प्रवर्तैं हैं, ऐसे हैं ते मुनि मोक्षमार्गमें प्रहण किये हैं माने हैं ॥

भावार्थ—मुनि हैं ते लौकिक कष्टनितैं रहित हैं जैसा जिनेश्वर मोक्ष-मार्ग बाह्य अभ्यंतर परिग्रहैं रहित नग्न दिगंबररूप कहा है तैसेमें प्रवर्तैं हैं ते ही मोक्षमार्गी हैं, अन्य मोक्षमार्गी नांही हैं ॥ ८० ॥

आगैं फेरि मोक्षमार्गीकी प्रवृत्ति कहैं हैं;—

गाथा—उद्धुमज्जलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी । उद्धुमज्जलोये

इयभावणाए जोई पावंति हु सासयं ठाणं ॥८१॥

संस्कृत—उर्ध्वाधोमध्यलोके केचित् मम न अहकमेकाकी ।

इति भावनया योगिनः प्राप्नुवन्ति स्फुटं शाश्वतं स्थानं ॥

अर्थ—मुनि ऐसी भावना करै—उर्ध्वलोक मध्यलोक अधोलोक इनि तीनों लोकमें मेरा कोई भी नांही है, मैं एकाकी आत्माहूं, ऐसी भावना करि योगी मुनि प्रगटपणैं शाश्वता सुख है ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मुनि ऐसी भावना करै जो त्रिलोकमें जीव एकाकी है याका संबंधी दूजा कोई नांही है, ये परमार्थरूप एकत्व भावना है सो जा मुनिकै ऐसी भावना निरन्तर रहे है सो ही मोक्षमार्गी है, जो भेष लेकरि भी लौकिकजननिसूं लाल पाल राखै है सो मोक्षमार्गी नांही ॥ ८१ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—देवगुरुणं भक्ता णिव्वेयपरंपरा विचिर्त्तिता ।

ज्ञाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८२॥

संस्कृत—देवगुरुणां भक्ताः निर्वेदपरंपरां विचिन्तयन्तः ।

ध्यानरताः सुचरित्राः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥८२॥

अर्थ—जे मुनि देव गुरुनिके भक्त हैं बहुरि निर्वेद कहिये संसार देह भोगतैं विरागताकी परंपराकूं चितवन करै है, बहुरि ध्यानके बिषैं

रत हैं रक्त हैं तत्पर हैं बहुरि भला है चरित्र जिनिकै, ते मोक्षमार्गविषै ग्रहण किये हैं ॥

भावार्थ—जिनिमैं मोक्षमार्ग पाया ऐसा अरहंत सर्वज्ञ वांतराग देव अर तिसके अनुसारी बडे मुनि दीक्षा शिक्षा देनेवाले गुरु तिनिकी तौ भक्तियुक्त होय, बहुरि संसार देह भोगम् बिरक्त होय मुनि भये तैसेही जिनकै वैराग्यभावना है, बहुरि आत्मानुभवनरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता सोही भया ध्यान ताविषै तत्पर है, बहुरि व्रत समिति गुप्तिरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यक्चरित्र जिनिकै पाईये है तेही मुनि मोक्षमार्गी हैं, अन्य भेषी मोक्षमार्गी नांही ॥ ८२ ॥

आगैं निश्चयनयकार ध्यान ऐसैं करनां, ऐसैं कहै हैं;—

गाथा—णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पग्ग्मि अप्पणे सुरदो ।

सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥८३॥

संस्कृत—निश्चयनयस्य एवं आत्मा आत्मनि आत्मने सुरतः ।

सः भवति स्फुटं सुचरित्रः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो निश्चयनयका ऐसा अभिप्राय है—जो आत्मा आत्महीविषै आपहीकै अर्थ भलैप्रकार रत होय सो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्चरित्रवान भया संता निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—निश्चयनयका स्वरूप ऐसा है जो—एक द्रव्यकी अवस्था जैसी होय ताहीकूं कहै । तहां आत्माकी दोय अवस्था;—एक तौ अज्ञान अवस्था अर एक ज्ञान अवस्था । तहां जेतैं अज्ञान अवस्था रहै तेतै तौ बंधपर्यायकूं आत्मा जानै जो मैं मनुष्यहूं मैं पशुहूं मैं क्रोधीहूं, मैं मानीहूं, मैं मायावीहूं, मैं पुण्यवान धनवानहूं, मैं निर्धन दरिद्रीहूं, मैं राजाहूं, मैं रंकहूं, मैं मुनिहूं, मैं श्रावकहूं इत्यादि पर्यायनिविषै

आपा मानैं तिनि पर्यायनिविषैं लीन है तब मिथ्यादृष्टी है अज्ञानी है, याका फल संसार है ताकूं भोगवै है । बहुरि जब जिनमतके प्रसादकरि जीव अजीव पदार्थनिका ज्ञान होय तब आपा परका भेद जानि ज्ञानी होय तब ऐसैं जानैं जो—मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूपहूं अन्य मेरा किल्लूभी नांही, तब यह आत्मा आपहीविषैं आपही करि आपहीकै अर्थि लीन होय तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होय आपहीकूं ध्यावै, तबही सम्यग्ज्ञानी हं याका फल निर्वाण है; ऐसैं जाननां ॥ ८३ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते संते कहैं हैं;—

गाथा—पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो ।

जो ज्ञायदि सो जोई पावहरो हवदि णिदंदो ॥८४॥

संस्कृत—पुरुषाकार आत्मा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्रः ।

यः ध्यायति सः योगी पापहरः भवति निर्द्वन्द्वः ॥८४॥

अर्थ—यह आत्मा ध्यानकै योग्य कैसा है—पुरुषाकार है, बहुरि योगी है मन वचन कायके योगनिका जाकै निरोध है सर्वांग मुनिश्चल है, बहुरि वर कहिये श्रेष्ठ सम्यक् रूप ज्ञान अर दर्शनकरि समग्र है परिपूर्ण है केवलज्ञानदर्शन जाकै पाइये है, ऐसा आत्माकूं जो योगी ध्यानी मुनि ध्यावै है सो मुनि पापका हरनेवाला है अर निर्द्वन्द्व है रागद्वेष आदि विकल्पनिकरि रहित है ॥

भावार्थ—जो अरहंतरूप शुद्ध आत्माकूं ध्यावै है ताका पूर्व कर्मका आश होय है अर वर्तमानमें रागद्वेषरहित होय है तब आगामी कर्मकूं नांही बाधै है ॥ ८४ ॥

आगैं कहैं है जो ऐसैं मुनिनिकूं प्रवर्त्तनां कइया । अब श्रावकनिकूं प्रवर्त्तनेकै अर्थि कहिये है;—

गाथा—एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु ।

संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ॥८५॥

संस्कृत—एवं जिनैः कथितं श्रमणानां श्रावकाणां पुनः शृणुत ।

संसारविनाशकरं सिद्धिकरं कारणं परमं ॥८५॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार तौ उपदेश श्रमण जे मुनि तिनिकूं जिनदेवनैं कहा है । बहुरि अब श्रावकनिकूं कहिये है सो सुनो, कैसा कहिये है—संसारका तौ विनाश करनेवाला अर सिद्धि जो मोक्ष ताका करनेवाला उत्कृष्ट कारण ऐसा उपदेश है ॥

भावार्थ—पहलैं कहा सो तौ मुनिनिकूं कहा अर अब आगैं कहिये है सो श्रावकनिकूं कहिये है, ऐसा कहिये है जातैं संसारका विनाश होय अर मोक्षकी प्राप्ति होय ॥ ८५ ॥

आगैं श्रावकनिकूं प्रथम कहा करनां, सो कहै है;—

गाथा—गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिकंप ।

तं जाणे झाइज्जइ सावय ! दुक्खक्खयट्ठाए ॥८६॥

संस्कृत—गृहीत्वा च सम्यक्त्वं सुनिर्मलं सुरगिरेरिव निष्कंपम् ।

तत् ध्याने ध्यायते श्रावक ! दुःखक्षयार्थे ॥८६॥

अर्थ—प्रथम तौ श्रावकनिकूं सुनिर्मल कहिये भलै प्रकार निर्मल अर मेखत् निःकंप अचल अर चल मलिन 'अगाढ दूषणरहित ज्यंत्यंत निश्चल ऐसा सम्यक्त्वकूं ग्रहण करि तिसकूं ध्यानविषै ध्यावनां, कौन अर्थ—दुःखका क्षयकै अर्थ ध्यावनां ॥

भावार्थ—श्रावक पहलै तौ निरतिचार निश्चल सम्यक्त्वकूं ग्रहण-करि जाका ध्यान करै जा सम्यक्त्वकी भावनतैं गृहस्थकै गृहकार्यसंबंधी आकुलता क्षोभ दुःख होय है सो मिटि जाय है, कार्यके विगडनैं सुधर-

नेमैं वस्तुके स्वरूपका विचार आवै तब दुःख मिटै है । सम्यग्दृष्टीकै ऐसा विचार होय है—जो वस्तुका स्वरूप सर्वज्ञनै जैसा जान्या है तैसा निरन्तर परिणमै है सो होय है, इष्ट अनिष्ट मानि दुःखी सुखी होनां निष्फल है । ऐसे विचारतैं दुःख मिटै है यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है जातैं सम्यक्त्वका ध्यान करना कहा है ॥ ८६ ॥

आगैं सम्यक्त्वका ध्यानही की महिमा कहै है,—

माथा—सम्मत्तं जो झायइ सम्माइटी हवेइ सो जीवो ।

सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठकम्माणि ॥८७॥

संस्कृत—सम्यक्त्वं यः ध्यायति सम्यग्दृष्टिः भवति सः जीवः ।

सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि ॥८७॥

अर्थ—जो श्रावक सम्यक्त्वकूं व्यावै है सो जीव सम्यग्दृष्टी है बहुरि सम्यक्त्वरूप परिणया संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिका क्षय करै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका ध्यान ऐसा है जो पहलैं सम्यक्त्व न भया होय तौऊ याका स्वरूप जानि याकूं व्यावै तौ सम्यग्दृष्टी होजाय है । बहुरि सम्यक्त्व भये याका परिणाम ऐसा है जो संसारके कारण जे दुष्ट अष्ट कर्म तिनिका क्षय होय है, सम्यक्त्व होतैं ही कर्मनिका गुणश्रेणी निर्जरा होनैं लगि जाय है, अनुक्रमतैं मुनि होय तब चारित्र अर शुद्ध ध्यान याके सहकारी होय तब सर्व कर्मका नाश होय है ॥ ८७ ॥

आगैं याकूं संक्षेपकरि कहै है,—

माथा—किं बहुणा भणिणं जे सिद्धा णरवरा गए काले ।

सिज्झहहि जे वि भविया तं जाणइ सम्ममाहणं ८८

संस्कृत—किं बहुना भणितेन ये सिद्धाः नरवराः गते काले ।

सेत्स्यति येषां भव्याः तज्जानीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम्

अर्थ—आचार्य कहै है जो—बहुत कहनेकारि कहा साध्य है जे नर-
प्रधान अतीतकालविषै सिद्ध भये अर आगामी कालविषै सिद्ध होयगे
सो सम्यक्त्वका माहात्म्य जानो ॥

भावार्थ—इस सम्यक्त्वका ऐसा माहात्म्य है जो अष्टकर्मका नाश
करि जे मुक्तिप्राप्त अतीतकालमें भये है तथा आगामी होयगे ते इस
सम्यक्त्वतैं ही भये है अर होयगे, तातैं आचार्य कहै हैं जो बहुत कह-
नेकारि कहा! यह संक्षेपकरि कथा जानो जो—मुक्तिका प्रधान कारण यह
सम्यक्त्वही है। ऐसा मति जानो जो गृहस्थकै कहा धर्म है सो यह
सम्यक्त्वधर्म ऐसा है जो सर्व धर्मनिके अंगनिकूं सफल करै है ॥८८॥

आगैं कहै हैं जो—निरन्तर सम्यक्त्व पाळै है ते धन्य है—

गाथा—ते धण्णा सुकयत्था ते सूरु ते वि पंडिया मणुया ।

सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८९॥

संस्कृत—ते धन्याः सुकृतार्थाः ते शूराः तेऽपि पंडिता मनुजाः।

सम्यक्त्वं सिद्धिकरं स्वप्नेऽपि न मलिनितं यैः ॥८९॥

अर्थ—जिनि पुरुषनितैं मुक्तिका करनेवाला सम्यक्त्व है ताकूं स्वप्ना-
वस्थाविषैं भी मलिन न किया अतीचार न लगाया ते पुरुष धन्य हैं ते
ही मनुष्य हैं ते ही भले कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर हैं ते ही पंडित हैं ॥

भावार्थ—लोकमें कछू दानादिक करै तिनिंकूं धन्य कहिये है तथा
विवाहादिक यज्ञादिक करैं हैं तिनिंकूं कृतार्थ कहै हैं युद्धमें पाछा न होय
ताकूं शूरवीर कहैं हैं, बहुत शास्त्र पढ़ै ताकूं पंडित कहै हैं। ये सारे
कहनेके हैं जो मोक्ष का कारण सम्यक्त्व ताकूं मलिन न करैं हैं निर-
तिचार पाळै हैं ते धन्य हैं ते ही कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर है तेही पंडित
हैं ते ही मनुष्य हैं; या विना मनुष्य पशुसमान है, ऐसा सम्यक्त्वका
माहात्म्य कथा ॥ ८९ ॥

आगँ शिष्य पूछया जो सम्यक्त्व कैसाक है ? ताके समाधानकूं या सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न बतावै है,—

गाथा—हिंसारहित धर्मे अटारहदोसवज्जिए देवे ।

णिगंथे पव्वयणे सदहणं होइ सम्मत्तं ॥ ९० ॥

संस्कृत—हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे ।

निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥ ९० ॥

अर्थ—हिंसारहित धर्म, अटारह दोषरहित देव, निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षका मार्ग तथा गुरु इनिविधैं श्रद्धान हातैं संतैं सम्यक्त्व होय है ॥

भावार्थ—लौकिकजन तथा अन्यमती जीवनिकी हिंसा करि धर्म मानैं हैं, अर जिनमतमें अहिंसा धर्म कहा है ताहीकूं श्रद्धे अन्यकूं नाहीं श्रद्धे सो सम्यग्दृष्टी है । लौकिक अन्यमतीनिनैं माने हैं ते सर्व देव शुधादि तथा रागद्वेषादि दोषनि करि संयुक्त हैं तातैं वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देव सर्वदोषनिकारि रहित है ताकूं देव मानै श्रद्धे सो सम्यग्दृष्टी है । इहां दोष अठार कहे ते प्रधानता अपेक्षा कहे हैं ते उपलक्षणरूप जाननैं, इनि साखिरे अन्यभी जानि लेनैं । बहुरि निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षमार्ग सोही मोक्षमार्ग है, अन्यलिगंतैं अन्यमती श्वेतांबरादिक जैनाभास मोक्ष मानैं हैं सो मोक्षमार्ग नाहीं है । ऐसा श्रद्धे सो सम्यग्दृष्टी है, ऐसा जाननां ॥ ९० ॥

आगँ इसही अर्थकूं दृढ करते कहैं हैं,—

गाथा—जहजायरुवरुवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं ।

लिगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं ॥ ९१ ॥

संस्कृत—यथाजातरुपरुवं सुसंयतं सर्वसंगपरित्यक्तम् ।

लिगं न परापेक्षं यः मन्यते तस्य सम्यक्त्वम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—मोक्षमार्गका लिंग भेष ऐसा है यथाजातरूप तौ जाका रूप है, बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित्मात्रभी जाभैं नाहीं है; बहुरि सुसंयत कहिये सम्यक्प्रकार इन्द्रियनिका निग्रह अर जीवनिकी दया जाभैं पाइये ऐसा संयम है; बहुरि सर्वसंग कहिये सर्वही परिग्रह तथा सर्व लौकिक जननिकी संगतितैं रहित है; बहुरि जाभैं परकी अपेक्षा कछू नाहीं है मोक्षके प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजनकी अपेक्षा नाहीं है । ऐसा मोक्षमार्गका लिंग मानै श्रद्धै तिस जीवकै सम्यक्त्व होय है ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमें ऐसाही लिंग है, अन्य अनेक भेष हैं ते मोक्षमार्गमें नाहीं हैं ऐसा श्रद्धान करै ताकै सम्यक्त्व होय है । इहां परापेक्ष नाहीं—ऐसा कहनें तैं जनाया है जो—ऐसा निर्ग्रंथ रूप भी जो काहू अन्य आशयतैं धारै तौ वह भेष मोक्षमार्ग नाहीं; केवल मोक्षहीकी अपेक्षा जाभैं होय ऐसा होय ताकूं मानै सो सम्यग्दृष्टी है ऐसा जाननां ॥ ९१ ॥

आगैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहैं हैं;—

गाथा—कुच्छिद्यदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु ।

लज्जाभयगारवदो मिच्छादिदृष्टी हवे सो हु ॥ ९२ ॥

संस्कृत—कुत्सितदेवं धर्मं कुत्सितलिंगं च वन्दते यः तु ।

लज्जाभयगारवतः मिथ्यादृष्टिः भवेत् सः स्फुटम् ९२

अर्थ—कुत्सित देव जो क्षुधादिक अर रागद्वेषादि दोषनिकरि दूषित होय सो, अर कुत्सित धर्म जो हिंसादि दोषनिकरि सहित होय सो, कुत्सितलिंग जो परिग्रहादिकरि सहित होय सो, इनिकूं जो बंदै पूजै सो तो प्रगट मिथ्यादृष्टी है । इहां विशेष कहै है जो भले हितकरनेवाले मानिकरि बंदै पूजै सो तौ प्रगट मिथ्यादृष्टी है, परन्तु जो लज्जा भय गारव इनि कारणनि करि भी बंदै पूजै सो भी प्रगट मिथ्यादृष्टी है । तहां लज्जा तौ ऐसैं—जो लोक इनिकूं बंदै पूजै है हम नाहीं पूजैगे तौ

लोक हमको कहाँ कहेंगे ? हमारी या लोकमें प्रतिष्ठा जायगी ? ऐसैं तौ लज्जाकरि बंदै पूजै । बहुरि भय ऐसैं जो—इनिकुं राजादिक मानैं हैं, हम न मानैगे तौ हम ऊपरि कछु उपद्रव आवैगा ऐसैं भयकरि बंदै पूजै । बहुरि गारव ऐसैं जो—हम बडे हैं महंत पुरुष हैं, सर्वहीका सन्मान करैं हैं इनिकार्यनिमैं हमारी बडाई है, ऐसैं गारवकरि बंदनां पूजनां होय हैं । ऐसैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहें ॥ ९२ ॥

आगैं इसही अर्थकुं दृढ करते संते कहैं हैं;—

गाथा—स्वपरापेक्षं लिंगं राई देवं असंजयं बंदे ।

माण्ड मिच्छादिद्वी ण हु मण्ड सुद्धसम्मत्ती ॥ ९३ ॥

संस्कृत—स्वपरापेक्षं लिंगं रागिणं देवं असंयतं वन्दे ।

मानयति मिथ्यादृष्टिः न स्फुटं मानयति शुद्धसम्यक्ती ९३

अर्थ—स्वपरापेक्ष तौ लिंग जो कछु आप लौकिक प्रयोजन मनमें धारि भेष ले सो स्वापेक्ष है, बहुरि काहू परकी अपेक्षातैं धारै काहूके आप्रहृतैं तथा राजादिकका भयतैं धारै सो परापेक्ष है । बहुरि रागी देव जाकै स्त्री आदिका राग पाइये, बहुरि संयमरहित इनिकुं ऐसैं कहें जो मैं बंदू हूं; तथा तिनिकुं मानैं श्रद्धैं सो मिथ्यादृष्टी है । बहुरि शुद्धसम्यक्त्व भये संतैं तिनिकुं न मानैं है, श्रद्धे नांही, वंदै पूजै नांही ॥

भावार्थ—ये कहे तिनिसूं मिथ्यादृष्टीकै प्राप्ति भक्ति उपजै है, जो निरतीचार सम्यक्त्ववानहं सो इनिकुं न मानै है ॥ ९३ ॥

गाथा—सम्माइद्वी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि ।

विवरीयं कुब्बंतो मिच्छादिद्वी मुण्येयव्वो ॥ ९४ ॥

संस्कृत—सम्यग्दृष्टिः श्रावकः धर्मं जिनदेवदेशितं करोति ।

विपरीतं कुर्वन् मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो जिनदेवका उपदेश्या धर्म करै है सो सम्यग्दृष्टी श्रावक है, बहुरि जो अन्यमतका उपदेश्या धर्म करै है सो मिथ्यादृष्टी जाननां ॥ ९४ ॥

भावार्थ—ऐसैं कहनेतैं इहां कोई तर्क करै जो—यह तौ अपनां मत पोषनेकी पक्षपातमात्र वार्ता कही ? ताकूं कहिये है, जो—ऐसैं नांहीं है, जामैं सर्व जीवनि का हित होय सो धर्म है सो ऐसा अहिंसारूप धर्म जिनदेवहीनै प्ररूप्याहै, अन्यमतमैं ऐसा धर्मका निरूपण नांहीं, ऐसैं जाननां ॥ ९४ ॥

आगैं कहै है जो—मिथ्यादृष्टी जीव है सो संसारविषैं दुःखसहित भ्रमै है,—

गाथा—मिच्छादिद्वीं जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ ।

जन्मजरमरणपउरे दुखसहस्माउलो जीवो ॥ ९५ ॥

संस्कृत—मिथ्यादृष्टिः यः सः संसारे संसरति सुखरहितः ।

जन्मजरामरणप्रचुरे दुःखसहस्राकुलः जीवः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टी जीव है सो जरा मरणनिकरि प्रचुर भया अर दुःखनिके हजारानिकरि व्याप्त जो संसार ताविषैं सुखकरि रहित दुःखी भया भ्रमै है ॥

भावार्थ—मिथ्याभावका फल संसारमैं भ्रमण करनां हीहै, सो यह संसार जन्म जरा मरण आदि हजारां दुःखनि करि भया है, तिनिदुःखनिकूं मिथ्यादृष्टी या संसारमैं भ्रमता संता भोगवै है । इहां दुःखतौ अमितां हैं हजारा कहने तैं प्रसिद्ध अपेक्षा बहुलता जनाई है ॥ ९५ ॥

आगैं सम्यक्त्व मिथ्यात्व भावके कथनकूं संकोचै है,—

गाथा—सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविउण तं कुणसु ।

जं ते मणस्स रुद्ध किं बहुणा पलविणं तु ॥ ९६ ॥

संस्कृत—सम्यक्त्वे गुण मिथ्यात्वे दोषः मनसा परिभाव्य तत् कुरु
यत् ते मनसे रोचते किं बहुना प्रलपितेन तु ॥९६॥

अर्थ—हे भव्य ! ऐसै पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनिक्कू अपने मन करि भावनाकरि अर जो अपना मनक्कू रुचै प्रियलगौ सो कर, बहुत प्रलापरूप कहनेकरि कहा साध्य है । ऐसै आचार्यनै उपदेश किया है ॥

भावार्थ—ऐसै आचार्यनै कहा है जो—बहुत कहनेकरि कहा ? सम्यक्त्व मिथ्यात्वके गुण दोष पूर्वोक्त जानि जो मनमें रुचै सो करो । तहां ऐसा उददेशका आशय है जो—मिथ्यात्वक्कू छोडो सम्यक्त्वक्कू ग्रहण करो यातै संसारका दुःख भेटि मोक्ष पावो ॥ ९६ ॥

आगै कहै है जो मिथ्यात्व भाव न छोड्या तब बाह्य भेषतै कलू नांही है;—

गाथा—बाहिरसंगविमुक्तो णा वि मुक्तो मिच्छभाव णिगन्थो ।

किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं ९७

संस्कृत—बहिः संगविमुक्तः नापि मुक्तः मिथ्याभावेन निर्ग्रन्थः ।

किं तस्य स्थानमौनं न अपि जानाति अस्मत्समभावं ९७

अर्थ—जो बाह्य परिग्रहतै रहित अर मिथ्याभावसहित निर्ग्रन्थ भेष धारण किया है सो परिग्रह रहित नांही है ताकै ठाण कहिये खड़ा होय कायोत्सर्ग करनेकरि कहा साध्य है ? अर मौन धरै ताकरि कहा साध्य है ? जातै आत्माका समभाव जो वीतराग परिणाम ताक्कू न जानै है ॥

भावार्थ—जो आत्माका शुद्ध स्वभावक्कू जानि सम्यग्दृष्टी होय है । अर मिथ्याभावसहित परिग्रह छोडि निर्ग्रन्थ भी भया है, कायोत्सर्ग करनेना मौन धारना इत्यादि बाह्य क्रिया करै है तौ ताका क्रिया मोक्षमा-

गमैं सराहनेयोग्य नांही है जातैं सम्यक्त्वविना बाह्य क्रियाका फल संसारही है ॥ ९७ ॥

आगैं आशंका उपजै है जो सम्यक्त्वविना बाह्यलिंग निष्फल कहा तहां जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाडै ताकै सम्यक्त्व रहै कि नांही ? ताका समाधानकूं कहै है;—

गाथा—मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू ।

सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं ॥

संस्कृत—मूलगुणं छित्त्वा च बाह्यकर्म करोति यः साधुः ।

सः न लभते सिद्धिसुखं जिणलिंगविराधकः नियतं ॥

अर्थ—जो मुनि निर्ग्रन्थ होय मूलगुण धारण करै है तिनिकूं छेदनकरि बिगाडकरि केवल बाह्यक्रियाकर्म करै है सो सिद्धि जो मोक्ष ताका सुखकूं नांही पावै है जातैं ऐसा मुनि जिनलिंगका विराधक है ॥

भावार्थ—जिन आज्ञा ऐसी है जो—सम्यक्त्वसाहित मूलगुण धारि धन्य जे साधु किया हैं ते करैं हैं । तहां मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं—पांच महाव्रत ५ पांच समिति ५ पंचइंद्रियनिका निरोध ५ छह आवश्य ६ भूमिशयन १ स्नानका त्याग १ वस्त्रका त्याग १ केशलोच १ एकवार भोजन १ खड़ा भोजन १ दंतधावनका त्याग १ ऐसैं अट्ठाईस मूलगुण हैं तिनिकूं विराधकरि अर कायोत्सर्ग मौन तप ध्यान अव्ययन करै है तो तनि कियानिकरि मुक्ति न होय है । जातैं जो ऐसैं श्रद्धान करै जो हमारे सम्यक्त्व तौ है ही, बाह्य मूलगुण बिगडै तौ बिगडौ हम मोक्षमार्गीही हैं—तौ ऐसी श्रद्धातैं तौ जिन आज्ञा भंग करनेतैं सम्यक्त्वकाभी भंग होय है तब मोक्ष कैसैं होय अर कर्मके प्रबल उदयतैं चारित्र भ्रष्ट होय । अर जिन आज्ञा है तैसा श्रद्धान रहै तौ सम्यक्त्व रहै है, अर मूलगुण बिना केवल सम्यक्त्वहीतैं मुक्ति नांही, अर सम्यक्त्वविना केवल क्रियाहीतैं

मुक्ति नांही; ऐसैं जाननां । इहां कोई पूछै—मुनिकै स्नानका त्याग कक्षा अर हम ऐसैं भां मुनै हैं जो चांडाल आदिका स्पर्श होय तौ दंडस्नान करै है ? ताका समाधान जो—जैसैं गृहस्थ स्नान करै है तैसैं स्नान करनेका त्याग हैं जातैं यामैं हिंसाकी बहुलता है, बहुरि मुनिकै ऐसा स्नान है जो—कमंडलुमें प्रासुकजल रहै ताकरि मंत्र पढ़ि मस्तकपरि धारामात्र देहैं अर तिसदिन उपवास करैं हैं सो ऐसा स्नान है सो नाममात्र स्नान है; इहां मंत्र अर तपस्नान प्रधान है जलस्नान प्रधान नांही, ऐसैं जाननां ॥९८॥

भागैं कहै है जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है सो कहा करै ? मोक्षमार्गमें तौ कछू भी कार्य न करै है;—

गाथा—किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु

किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो ॥ ९९ ॥

संस्कृत—किं करिष्यति बहिः कर्म किं करिष्यति बहुविधं च क्षमणं तु ।

किं करिष्यति आतापः आत्मस्वभावात् विपरीतः ९९

अर्थ—आत्मस्वभावतैं विपरीत प्रतिकूल बाह्यकर्म जो क्रियाकांड सो कहा करैगा ? कछू मोक्षका कार्य तौ किंचिन्मात्रभी नांही करैगा, बहुरि बहुत अनेक प्रकार क्षमण कहिये उपवासादि बाह्यतप सो भी कहा करैगा ? कछू भी नांही करैगा, बहुरि आतापनयोगआदि काय-केश सो कहा करैगा ? कछू भी नांही करैगा ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित है अर शरीर जड है आत्मा चेतन है, तहां जडकी क्रिया तौ चेतनकूं कछू फल करै है नांही जैसा चेतनाका भाव जेती क्रियामैं मिलै है ताका फल चेतनकूं लागै है । तहां चेतनका अशुभ उपयोग मिलै तब तौ अशुभकर्म बंधै, अर शुभयोग मिलै तब शुभकर्म बंधै, अर जब शुभ अशुभ दोउतैं रहित उपयोग

होय तब कर्म न बंधै, पहले कर्म बंधे तिनिकी निर्जरा करि मोक्ष करै है। ऐसैं चेतना उपयोगकै अनुसार फलै, तातैं ऐसैं कहा है जो बाह्य क्रियाकर्मतैं तौ कछू मोक्ष होय है नाहीं, शुद्ध उपयोग भये मोक्ष होय है। तातैं दर्शन ज्ञान उपयोगका विकार भेटि शुद्ध ज्ञान चेतनाका अम्यास करनां मोक्षका उपाय है ॥ ९९ ॥

आगैं याही अर्थका फेरि विशेष कहै है;—

गाथा—जदि पढदि बहुसुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं य चारितं ।

तं बालसुद्धं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं ॥१००॥

संस्कृत—यदि पठति बहुश्रुतानि च यदि करिष्यति बहुविधं च चारित्रं ।

तत् बालश्रुतं चरणं भवति आत्मनः विपरीतम् १००

अर्थ—जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रानकूं पढेगा बहुरि बहुत प्रकार चारित्रकूं आचरेगा तौ ते सर्वही बालश्रुत अर बाल-चारित्र होयगा । जो आत्मस्वभावतैं विपरीत शास्त्रका पढनां अर चारित्रका आचरनां ये सर्वही बालश्रुत बालचारित्र हैं अज्ञानीकी क्रिया है जातैं म्यारह अंग नव पूर्व पर्यन्त तौ अभव्यजीवभी पढ़ै है अर बाह्य मूल-गुणरूप चारित्रभी पालै है तौऊ मोक्षकै योग्य बाहीं, ऐसैं जाननां ॥ १०० ॥

आगैं कहै है जो—ऐसा साधु मोक्ष पावै है;—

गाथा—वेरगपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो हादि ।

संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ॥१०१॥

गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिओ साहू ।

ज्ञानज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥१०२॥

संस्कृत—वैराग्यपरः साधुः परद्रव्यपराङ्मुखश्च यः भवति ।
 संसारसुखविरक्तः स्वकशुद्धसुखेषु अनुरक्तः ॥१०१॥
 गुणगणविभूषितांगः हेयोपादेयनिश्चितः साधुः ।
 ध्यानाध्ययने सुरतः सः प्राप्नोति उत्तमं स्थानम् १०२

अर्थ—जो साधु ऐसा होय सो उत्तमस्थान जो लोकशिखरपरि सिद्ध क्षेत्र तथा मिथ्यात्वआदि चौदह गुणस्थाननिर्ते परै शुद्धस्वभाव रूप स्थान सो पावै है । कैसा भया प्रथम तौ वैराग्यविषै तत्पर होय संसार देह भोगतैं पहलैं विरक्त होय मुनि भया तिसही भावनायुक्त होय; बहुरि परद्रव्यतैं पराङ्मुख होय जैसे वैराग्य भया तैसेही परद्रव्यका त्यागकरि तिसतैं पराङ्मुख रहै; बहुरि संसारसंबंधी इंद्रियनिकै द्वारै विषयनिर्ते सुखसा होय है तातैं विरक्त होय, बहुरि अपनां आत्मीक शुद्ध कषायनिके क्षोभ रहित निराकुल शांतभावरूप ज्ञानानंद ताविषै अनुरक्त होय, लीन होय वारंवार तिसहीकी भावना रहै । बहुरि गुणके गणकरि विभूषित है आत्मप्रदेशरूप अंग जाका, मूलगुण उत्तरगुणनिकरि आत्माकूं अलंकृत शोभायमान किये है, बहुरि हेय उपादेय तत्त्वका निश्चय जाकै होय, निज आत्मद्रव्य तौ उपादेय है अर अन्य परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपने विकारभाव ते सर्व हेय हैं, ऐसा जाकै निश्चय होय, बहुरि साधु होय आत्माके स्वभावके साधनेविषै नीकैं तत्पर होय बहुरि धर्म शुक्लव्यान अर अव्यात्मशास्त्रनिकूं पढि ज्ञानकी भावनाविषै तत्पर होय सुरत होय भैल प्रकार लीन होय । ऐसा साधु उत्तमस्थान जो मोक्ष ताकूं पावै है ॥ १०१-१०२ ॥

भावार्थ—मोक्षके साधनेके ये उपाय हैं अन्य कछु नाहीं है ॥ १०१-१०२ ॥

आगे कहै है—जो सर्वतैं उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्माहै सो या देह-

धमें तिष्ठै है ताकूं जानो;—

गाथा—णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं ।

धुव्वंतेहिं धुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह ॥१०३॥

संस्कृत—नतैः यत् नम्यते ध्यायते ध्यातैः अनवरतम् ।

स्तूयमानैः स्तूयते देहस्थं किमपि तत् जानीत १०३

अर्थ—हे भव्यजीव हौ ! तुम या देहविषै जो तिष्ठया ऐसा कछू क्यों है ताहि जानो, कैसा है—लोकमें नमने योग्य इंद्रादिक हैं तिनि-करि तौ नमने योग्य अर ध्यावने योग्य है, बहुरि जे स्तुति करने योग्य तीर्थकरादिक हैं तिनि कै स्तुति करने योग्य है, ऐसा कछू है सो या देहहीविषै तिष्ठै है ताकूं यथार्थ जानो ॥

भावार्थ—शुद्ध परमात्मा है सो यद्यपि कर्मकरि आच्छादित है तौऊ भेदज्ञानीनिकै या देहहीविषै तिष्ठताहीकूं ध्याय करि तीर्थकरादि भी मोक्ष पावै है, यातैं ऐसा कहा है जो—लोकमें नमने योग्य तौ इंद्रादिक हैं अर ध्यावने योग्य तीर्थकरादिक हैं तथा स्तुति करने योग्य तीर्थकरादिक हैं ते भी जाकूं नमैं हैं ध्यावैं हैं जाकी स्तुति करैं हैं ऐसा वचन कछू वचनकै अगोचर भेदज्ञानीनिकै अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है ताका स्वरूप जानो ताकूं नमो ध्यावो, बाहरि काहेकूं हेरो; ऐसा उपदेश है ॥१०३

आगैं आचार्य कहै है जो—अरहंतादिक पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषै ही हैं तातैं आत्मा ही शरण है;—

गाथा—अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेष्ठी ।

ते वि हु चिट्ठहि आषे तम्हा आदा हु मे सरणं १०४

संस्कृत—अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्यायाः साधवाः पंच

परमेष्ठिनः ।

ते अपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे
शरणं ॥ १०४ ॥

अर्थ—अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय अर साधु ये पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषै ही चेष्टारूप हैं आत्माकी अवस्था हैं तातैं मेरै आत्माहीका शरणा है, ऐसैं आचार्य अभेदनय प्रधानकरि कहा है ॥

भावार्थ—ये पांच पद आत्माहीके हैं जब यह आत्मा घातिकर्मका नाश करै है तब अरहंतपद होय है, बहुरि सो ही आत्मा अघाति कर्म-निका नाशकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है तब सिद्धपद कहावै है, बहुरि जब शिक्षा दीक्षा देनेवाला मुनि होय है तब आचार्य कहावै है, बहुरि ाहुडपाठनविषै तत्पर ऐसा मुनि होय है तब उपाध्याय कहावै है, अर जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गकूं केवल साधैही तब साधु कहावै है; ऐसैं पांचूं पद आत्माहीमै हैं । सो आचार्य विचारै है जो या देहमें आत्मा तिष्ठै है सो यद्यपि कर्मआच्छादित है तौऊ पांचूं पदयोग्य है, याहीकूं शुद्ध-स्वरूप ध्याये पांचूं पदका ध्यान है तातैं मेरै या आत्माहीका शरणा है ऐसी भावनां करी है, अर पंचपरमेष्ठीका ध्यानरूप अंतमंगल जानाया है ॥ १०४ ॥

आमैं कहै है जो अंतसमाधिमरणमें च्यारि आराधनाका आराधन कहा है सो येभी आत्माहीका चेष्टा है तातैं आत्माहीका मेरै शरणं है;—

गाथा—सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं (य) सत्तवं चैव ।

चउरो चिह्हि आदे तम्हा आदा हु मे शरणं ॥ १०५ ॥

संस्कृत—सम्यक्त्वं सज्ज्ञानं सच्चारित्रं सत्तपः चैव ।

चत्वारः तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं १०५

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर सम्यक् तप ये च्यारि आराधना हैं तेभी आत्माविषैही चेष्टारूप हैं, ये च्यारूं आत्माहीकी

अवस्था हैं, तातैं आचार्य कहै है मेरै आत्माहीका शरणा है ॥ १०५ ॥

भावार्थ—आत्माका निश्चयव्यवहारत्मक तत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणाम सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि संशय विमोह विभ्रम इनिकरि रहित अर निश्चयव्यवहारकरि निजस्वरूपका यथार्थ जाननां सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि तत्त्वार्थनिकू जानि रागद्वेषादिकसूं रहित परिणाम सो सम्यक्चारित्र है; बहुरि अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्ज्ञानपूर्वक कष्ट आदरि स्वरूपका साधनां सो सम्यक्तप है; ऐसैं ये च्यारूंही परिणाम आत्माके हैं तातैं आचार्य कहै है मेरै आत्माहीका शरण है, याहीकी भावनामें च्यारूं आयगये । अंतसह्लेखनामें च्यारि आराधनाका आराधन कइया हूं, तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिका उद्योत उद्यवन निर्वहण साधन निस्तरण ऐसैं पंचप्रकार आराधना कइया है, सो आत्माके भावनेमें च्यारूं आयगये, ऐसैं अंतसह्लेखनाकी भावना याहीमें आयगई ऐसैं जाननां । तथा आत्माही परममंगलरूप है ऐसा भी जनाया है ॥ १०५ ॥

आगैं यह मोक्षपाहुडंगंथ पूर्ण किया ताका पढनैं सुननैं भावनैंका फल कहै है;—

गाथा—एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य कारणं सुभत्तीए ।

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सुखं १०६

संस्कृत—एवं जिनप्रज्ञप्तं मोक्षस्य च कारणं सुभक्त्या ।

यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति शान्धतं

सौख्यं ॥ १०६ ॥

अर्थ—एवं कहिये ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनदेवनैं कइया ऐसा मोक्षपाहुड ग्रंथ है ताहि जो जीव भक्तिभावकरि पढै है याकी बारंबार चितव-

नरूप भावना करै है तथा सुनै है सो जीव शाश्वता सुख जो नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय सुख ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मोक्षपाहुडमें मोक्ष अर मोक्षका कारणका स्वरूप कहा है अर जे मोक्षका कारणका स्वरूप अन्यप्रकार मानै हैं तिनिका निषेध किया है तातैं या ग्रंथके पढनें सुननें तैं ताका यथार्थ स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान आचरण होय है तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय अर ताकी बार-बार भावना करनेतैं ताविषैं दृढ होय एकाग्रध्यानकी सामर्थ्य होय है, तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय शाश्वता सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होय है । तातैं या ग्रंथकूं पढनां सुननां निरन्तर भावना राखनी यह आशय है ॥ १०६ ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यनैं यह मोक्षपाहुडग्रंथ संपूर्ण किया । याका संपेक्ष ऐसा—जो यह जीव शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है तौऊ अनादिहीतैं पुद्गल कर्मके संयोगतैं अज्ञान मिथ्यात्व रागद्वेषादिक विभाव-रूप परिणमै है तातैं नवीनकर्मबंधके संतानकरि संसारमें भ्रमै है । तहां जीवकी प्रवृत्तिके सिद्धान्तमें सामान्यकरि चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं—तिनिमें मिथ्यात्वके उदयकरि मिथ्यात्वगुणस्थान होय है, अर मिथ्यात्वकी सहकारिणी अनंतानुबंधी कषाय है ताके केवल उद-यकरि सासादन गुणस्थान होय है, अर सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊके मिला-परूप मिश्रप्रकृतिके उदयकरि मिश्रगुणस्थान होय है; इनि तीन गुण स्थाननिमें तौ आत्मभावनाका अभावही है । बहुरि जब काललब्धिके निमित्ततैं जीवाजीव पदार्थनिका ज्ञान श्रद्धान भये सम्यक्त्व होय तब या जीवकूं अपनां परंका अर हिताहितका हेय उपादेयका जाननां होय है तब आत्माकी भावना होय है तब अविरतनाम चौथा गुणस्थान होय है अर जब एकदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिका परिणाम होय है तब जो एकदेश-

चारित्ररूप पांचमां गुणस्थान होय है ताकूं श्रावकपद कहिये, बहुरि सर्वदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिरूप परिणाम होय तब सकलचारित्ररूप छट्टा गुणस्थान कहिये, यामैं कलू संज्वलन चारित्र मोहका तीव्र उदयतैं स्वरूपके साधनेविषैं प्रमाद होय है तातैं ताका नाम प्रमत्तैं है; इहांतैं लगाय ऊपरिके गुणस्थानवालेकूं साधु कहिये है। बहुरि जब संज्वलन चारित्र मोहका मंद उदय होय तब प्रमादका अभाव होय तब स्वरूपके साधने-विषैं बड़ा उद्यम होय तब याका नाम अप्रमत्त ऐसा सातवां गुणस्थान है, यामैं धर्मध्यानकी पूर्णता है। बहुरि जब इस गुणस्थानमैं स्वरूपमैं लीन होय तब सातिशय अप्रमत्त होय है श्रेणीका प्रारंभ करै है तब यातैं ऊपरी चारित्रमोहका अव्यक्त उदयरूप अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय नाम धारक ये तीन गुणस्थान होय हैं। चौथासूं लगाय दशमां सूक्ष्मसांपरायताई कर्मकी निर्जरा विशेषताकरि गुणश्रेणीरूप होय है। तब यातैं ऊपरि मोहकर्मका अभावरूप ग्यारमां बारमां उपशांतकषाय क्षीणकषाय गुणस्थान होय है। ता पीछैं तीन घातिया कर्म रहे तिनिका नाशकरि अनंत चतुष्टय प्रगट होय अरहंत होय है तहां सयोगी जिन नाम गुणस्थान है, इहां योगकी प्रवृत्ति है। बहुरि योगनिका निरोध करि अयोगीजिन नामा चौदमा गुणस्थान होय है, तहां अघातिकर्मकाभी नाशकरि अर लगताही अनंतर समय निर्वाणपदकूं प्राप्त होय है, तहां संसारका अभावतैं मोक्ष नाम पावै है। ऐसैं सर्व कर्मका अभावरूप मोक्ष होय है, ताका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहे तिनिकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान सम्यक्त्व प्रगट होनेतैं एकदेश कहिये, तहांतैं लगाय आगे जैसैं जैसैं कर्मका अभाव होय तैसैं तैसैं सम्यग्दर्शनादिकी प्रवृत्ति बधती जाय अर जैसैं जैसैं इनिकी प्रवृत्ति बधै तैसैं तैसैं कर्मका अभाव होता जाय जब घातिकर्मका अभाव होय तब तेरह चौदह गुणस्थान

अरहंत होय तब जीवनमुक्त कहावै अर चौदाह गुणस्थानके—
अंत रत्नत्रय की पूर्णता होय है तातैं अघाति कर्मकाभी नाश होय अभा
व होय तब साक्षात् मोक्ष होय तब सिद्ध कहावै। ऐसैं मोक्षका अर
मोक्षके कारणका स्वरूप जिन अगमतैं जानि अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र
मोक्षका कारण कहा है ताकूं निश्चय व्यवहाररूप यथार्थ जानि सेवनां
अर तप भी मोक्षका कारण है सो भी चरित्रमें अन्तर्भूत करि त्रया-
त्मकही कहा है। ऐसैं इनि कारणनितैं प्रथम तौ तद्भवही मोक्ष होय
है। अर जेतैं कारणकी पूर्णता न होय ता पहली कदाचित् आयुकर्मकी
पूर्णता होय तौ स्वर्गविषैं देव होय हैं तहां भी यह बांछा रहैं जो यह
शुभोपयोगका अपराध है इहांतैं चयकरि मनुष्य होजंगा, तब सम्यग्द-
र्शनादि मोक्षमार्गकूं सेय मोक्षप्राप्त होजंगा, ऐसी भावना रहैं है तब तहां
तैं चय मोक्ष पावै है। अर अबार इस पंचमकालमें द्रव्य क्षेत्र काल
भावकी सामग्रीका निमित्त नांही तातैं तद्भव मोक्ष नांही तौज जो रत्न-
त्रयकूं शुद्धताकीरि सेवैं तौ इहांतैं देव पर्याय पाय पीछैं मनुष्य होय मोक्ष
पावै है। तातैं यह उपदेश है जैसैं वनैं तैसैं रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय
करनां, तहां भी सम्यग्दर्शन प्रधान है ताका उपाय तौ अवश्य चाहिये,
तातैं जिनागमकूं समक्षि सम्यक्त्वका उपाय अवश्य करनां योग्य है
ऐसैं इस ग्रंथका संक्षेप जानो ॥

छप्पय ।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं

ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं ।

सेबो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,

जिन आज्ञा सिर धारि अन्यस्त तजि अघकारू ॥

इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो
भविजीवनिंकुं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो ॥१॥

दोहा ।

बंदू मंगलरूप जे अर मंगलकरतार ।

पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार ॥ २ ॥

इहां कोई पूछै—जो ग्रंथनिमें जहां तहां पंचणमोकारकी महिमा बहुत लिखी, मंगलकार्यमें विघ्नके भेटनेंकुं यही प्रधान कहा, अर यामें पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार है सो पंचपरमेष्ठीकी प्रधानता भई, पंचपरमेष्ठीकूं परम गुरु कहे तहां याही मंत्रकी महिमा तथा मंगलरूपपणा अर यातैं विघ्नका निवारण अर पंचपरमेष्ठीकै प्रधानपणां अर गुरुपणां अर नमस्कार करने योग्यपणां कैसैं है ? सो कहनां ।

ताका समाधानरूप कहूक लिखिये है:—तहां प्रथम तौ पंचणमोकार मंत्र है, ताके पैतीस अक्षर हैं, सो ये मंत्रके बीजाक्षर हैं तथा इनिका जीड सर्व मंत्रनितैं प्रधान है, इनि अक्षरनिका गुरु आम्नायतैं शुद्ध उच्चारण होय तथा साधन यथार्थ होय तब ये अक्षर कार्यमें विघ्नके निवारणेंकूं कारण हैं तातैं मंगलरूप हैं । जो 'मं' कहिये पाप ताकूं गालैं ताकूं मंगल कहिये तथा 'मंग' कहिये सुखकूं ल्यावै दे ताकूं मंगल कहिये सो यातैं दोऊ कार्य होय हैं । उच्चारणतैं विघ्न टलैं हैं, अर्थ विचारे सुख होय हं, याही तैं याकूं मंत्रनिमें प्रधान कहा है, ऐसैं तौ मंत्रके आश्रय महिमा है । बहुरि पंचपरमेष्ठीकूं नमस्कार यामें है—ते पंचपरमेष्ठी अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये हैं सो इनिका स्वरूप तौ ग्रंथनिमें प्रसिद्ध है, तथापि कहू लिखिये है:—तहां यह अनादिनिघन अकृत्रिम सर्वज्ञकी परंपराकरि सिद्ध आगममें कहा है ऐसा षट्द्वयस्वरूप

लोक है, तामें जीवद्रव्य अनंतानंत हैं अर पुद्गलद्रव्य तिनिहैं अनंतानंत गुणे हैं, बहुरि एक एक धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य हैं, बहुरि काल द्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं । तहां जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप है । अर पांच अजीव हैं ते चेतनारहित जड हैं—तहां धर्म अधर्म आकाश काळ ये च्यारि द्रव्य तौ जैसे हैं तैसें तिहैं हैं तिनिहैं विकारपरिणति नांहीं; बहुरि जीव पुद्गलद्रव्यकं परस्पर निमित्त नैमित्तिकभावतैं विभावपरिणति हैं तामें भी पुद्गल तौ जड है ताकैं विभावपरिणतिकी दुःख सुखका संवेदन नांहीं, अर जीव चेतन है याकैं सुख दुःखका संवेदन है । तहां जीव अनंतानंत हैं तिनिहैं केई तौ संसारी हैं, केई संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध भये हैं । तहां संसारी जीव हैं तिनिहैं केई तौ अभव्य हैं तथा अभव्यसारिखे हैं ते दोऊ जातिके संसारतैं निवृत्त कबहू न होय है तिनिहैं संसार अनादिनिधन हैं; बहुरि केई भव्य हैं ते संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध होय हैं, ऐसैं जीवनिकी व्यवस्था है । अब इनिकें संसारकी उत्पत्ति कैसें है सो कहै है—तहां जीवनिहैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मनिका अनादिबंधरूप पर्याय है तिसबंधके उदयके निमित्ततैं जीव रागद्वेषमोहादि विभावपरिणतिरूप परिणम है, तिस विभाव परिणतिके निमित्ततैं नवीन कर्मबंध होय है, ऐसैं इनिके संतानतैं जीवकैं चतुर्गतिरूप संसारकी प्रवृत्ति होय है तिस संसारमें चतुर्गतिविधैं अनेक प्रकार मुखदुःखरूप भया भ्रमै है; तहां कोई काल ऐसा आवै जो मुक्त होनां निकट आवै तब सर्वज्ञके उपदेशका निमित्त पाय अपनां स्वरूपकूं अर कर्मबंधका स्वरूपकूं अर आपमें विभावका स्वरूपकूं जानै इनिका भेद ज्ञान होय तब परद्रव्यकूं संसारके निमित्त जानि तिनिहैं धिरक्त होय अपने स्वरूपका अनुभवका साधन करै दर्शनज्ञानरूप स्वभावविधैं स्थिर होनेका साधन करै तब याकैं

बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापनिका त्यागरूप निर्ग्रन्थपद सर्व परिग्रहका त्यागरूप निर्ग्रन्थ दिगंबर मुद्रा धारै पांच महाव्रत पांच समितिरूप तीन गुप्तिरूप प्रवर्तै तब सर्व जीवनिकी दया करनेवाले साधु कहावै, तामैं तीन पदवी होय—जो आप साधु होय अन्यकूं साधुपदकी शिक्षादीक्षा देय सो तौ आचार्य कहावै, अर साधु होय जिनसूत्रकूं पढ़ै पढ़ावै सो उपाध्याय कहावै, अर जो अपने स्वरूपका साधनमें रहै सो साधु कहावै अर जो साधु होय अपने स्वरूपका साधनका ध्यानका ब्रलतैं च्यारि घाति कर्मनिका नाशकरि केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्यकूं प्राप्त होय सो अरहंत कहावै, तब तीर्थकर तथा सामान्यकेवली जिन इंद्रादिककरि पूज्य होय तिनिकी बाणी खिरै जिसतैं सर्व जीवनिका उपकार होय अहिंसा धर्मका उपदेश होय सर्व जीवनिकी रक्षा करावै यथार्थ पदार्थनिका स्वरूप जनाय मोक्षमार्ग दिखावै ऐसी अरहंत पदवी होय हैं; बहुरि जो च्यारि अघाति कर्मकाभी नाशकरि सर्व कर्मनितैं रहित होय सो सिद्ध कहावै। ऐसैं ये पांच पद हैं, ते अन्य सर्व जीवनितैं महान हैं तातैं पंच परमेष्ठी कहावैं हैं, तिनिके नाम तथा स्वरूपके दर्शन तथा स्मरण ध्यान पूजन नमस्कारतैं अन्य जीवनिके शुभपरिणाम होय हैं तातैं पापका नाश होय है, वर्त्तमानका विघ्न विलय होय है, आगामी पुण्यका बंध होय हैं तातैं स्वर्गादिक शुभ-गति पावै है। अर इनिकी अज्ञानुसार प्रवर्त्तनेतैं परंपराकरि संसारतैं निवृत्तिभी होय है तातैं ये पंच परमेष्ठी सर्व जीवनिके उपकारी परमगुरु हैं, सर्व संसारार्थ जीवनिके पूज्य हैं। इनि सिवाय अन्य संसारी जीव हैं ते राग द्वेष मोहादि विकारनिकरि मलिन हैं, ते पूज्य नाहीं, तिनिके महानपणां गुरुपणां पूज्यपणां नाहीं, आपही कर्मनिके बशि मलिन तब अन्यका पाप तिनितैं कैसें कटै। ऐसैं जिनमतमें इनि पंच परमेष्ठीका महानपणां प्रसिद्ध है अर न्यायके बलतैंभी ऐसैंही सिद्ध होय है जातैं जे

संसारके भ्रमणतैं रहित होय तेही अन्यकै संसारका भ्रमण भेटनेकूं कारण होय जैसे जाकै धनादि वस्तु होय सो ही अन्यकूं धनादिक दे अर आप दरिद्री होय तब अन्यका दरिद्र कैसें भेटैं, ऐसें जाननां । ऐसें जिनकूं संसारके विघ्न दुःख भेटनें होय अर संसारका भ्रमणका दुःखरूप जन्म मरणतैं रहित होनां होय ते अरहंतादिक पंच परमेष्ठीका नाम मंत्र जपो, इनिके स्वरूपका दर्शन स्मरण ध्यान करो, तातैं शुभ परिणाम होय पापका नाश होय, सर्व विघ्न टलैं परंपराकरि संसारका भ्रमण मिटै कर्मका नाश होय मुक्तिकी प्राप्ति होय, ऐसा जिनमतका उपदेश है सो भव्य जीवनिकै अंगीकार करनें योग्य है ।

इहां कोई कहैं—अन्यमतमें ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक इष्ट देव मानैं हैं तिनिंके विघ्न टलते देखिये हैं तथा तिनिंके मतमें राजादि बड़े बड़े पुरुष देखिये हैं तिनिंके भी ते इष्ट है सो विघ्नादिकका भेटनेंवाले हैं तैसें तुमारे भी कहौ, ऐसें क्यों कहो जो ये पंचपरमेष्ठीही प्रधान हैं अन्य नांही ? ताकूं कहिये, रे भाई ! जीवनिके दुःख तौ संसार भ्रमणका है अर संसारके भ्रमणका कारण राग द्वेष मोहादिक परिणाम है अर रागादिष्वर्त्तमानमें आकुलतामयी दुःखस्वरूप हैं तातैं ते ब्रह्मादिक इष्ट दश कहे ते तौ रागादिक काम क्रोधादिकरि युक्त हैं, अज्ञान तपके फलतैं केई जीव सर्व लोकमें चमत्कारसहित राजादिक बड़ी पदवी पावैं ताकूं लोक बडा मानि लोक ब्रह्मादिक भगवान कहनें लगिजाय, कहैं जो—ये परमेश्वर ब्रह्मका अवतार है सो ऐसे मानैं तौ कछू मोक्षमार्गी तथा मोक्षरूप होय नांही, संसारीही रहैं हैं । ऐसेंही अन्यदेव सर्व पदवी वाले जाननें ते आपही रागादिकरि दुःखरूप हैं जन्ममरण करि सहित हैं ते परका संसारका दुःख कैसें भेटेंगे । अग तिनिंके मतमें विघ्नका टलनां अर राजादिक बड़े पुरुष होते कहे सो ये तौ जीवनिकै पूर्व कछू शुभ कर्म बंधेथे ।

तिनिका फल है, पूर्वजन्ममें किंचित् शुभ परिणाम कियाथा ताँतै पुण्य-
कर्म बंध्याथा ताका उदयतै कछू विघ्न टलै है अर राजादिक पदवी पावै
है सो पूर्वे कछू अज्ञानतप किया होय ताका फल है सो ये तौ पुण्यपाप-
रूप संसारकी चेष्टा है, यामैं कछू बडाई नांही; बडाई तौ जो है जातैं
संसारका भ्रमण मिटै सो तौ वीतराग विज्ञान भावनिहीतैं मिटैगा, सो
तिस वीतराग विज्ञान भावनियुक्त पंच परमेष्ठी हैं तेही संसारका भ्रमण
के दुःख मेटनेकूं कारण हैं। वर्त्तमानमें कछू पूर्व शुभ कर्मका उदयतैं
पुण्यका चमत्कार देखि तथा पापका दुःख देखि भ्रम नहीं उपजावनां,
पुण्य पाप दोऊ संसार हैं तिनितैं रहित मोक्ष है, सो संसारतैं छूटि मोक्ष
होय तैसाही उपाय करनां। अर वर्त्तमानकाभी विघ्न जैसा पंचपरमेष्ठीका
नाम मत्र ध्यान दर्शन स्मरणतैं मिटैगा तैसा अन्यके नामादिकतैं तौ न
मिटैगा जातैं ये पंचपरमेष्ठी ही शांतिरूप है केवल शुभ परिणामनिहीकूं
कारण हैं। बहुरि अन्य इष्टके रूप हैं ते तौ रांद्ररूप हैं तिनिका तौ दर्शन
स्मरण है सो रागादिक तथा भयादिकका कारण है, तिनितैं तौ शुभ
परिणाम होता दीखै नांही। कोईकै कदाचित् कछू धर्मानुरागके वशतैं
शुभपरिणाम होय तौ सो तिनितैं तौ न भया कहिये, वा प्राणीकै स्वाभा-
विक धर्मानुरागके वशतैं होय है। तातैं अतिशयवान शुभपरिणामका
कारण तौ शांतिरूप पंच परमेष्ठीहीका रूप है तातैं याहीका आराधन
करनां, वृथा खोटी युक्ति मुनि भ्रम नहीं उपजावनां, ऐसैं जाननां ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित मोक्षप्राभृतकी ।

जयपुरनिवासि पं. जयचन्द्रजीछावड़ाकृत-

देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ६ ॥

॥ श्री ॥
अथ लिंगपाहुड ।

—:०:—

(७)

अथ लिंगपाहुडकी वचनिका लिखिए है;—

दोहा ।

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय ।
कर्म नाशि शिवसुख लियो वंदूं तिनिके पांय ॥१॥

ऐसैं मंगलकै अर्थ जिनि मुनिनिनैं शिवसुख पाया ।तीनिकूं नमस्कार करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृत गाथाबंध लिंगपाहुडनाम ग्रंथ है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—तहां प्रथमही आचार्य मंगलकै अर्थि इष्टकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करै हैं;—

गाथा—काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं ।

बोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण ॥१॥

संस्कृत—कृत्वा नमस्कारं अर्हतां तथैव सिद्धानाम् ।

वक्ष्यामि श्रमणलिंगं प्राभृतशास्त्रं समासेन ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—मैं अरहंतनिकूं नमस्कार करि अर तैसैं ही सिद्धनिकूं नमस्कार करि अर श्रमण लिंगका है निरूपण जामें ऐसा पाहुडशास्त्र है ताहि कहूंगा ॥

भावार्थ—इस कालमें मुनिका लिंग जैसा जिनदेवनैं कक्षा है तैसामैं विपर्यय भया ताका निषेध करनेकूं यह लिंगके निरूपणका शास्त्र आचार्यनैं रच्या है, ताकी आदिमें घातिकर्मका नाशकरि अनंत चतुष्टय

पाय अरहंत भये तिनिनै यथार्थ श्रमणका मार्ग प्रवर्त्तीया अर तिस लिंगकूं साधि सिद्ध भये; ऐसैं अरहंत सिद्ध तिनिकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगै कहै हं जो—लिंग बाह्यभेष है सो अंतरंगधर्मसहित कार्य-
करी है;—

गाथा—धर्मेण होइ लिंगं न लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती ।

जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥२॥

संस्कृत—धर्मेण भवति लिंगं न लिंगमात्रेण धर्मसंप्राप्तिः ।

जानीहि भावधर्मं किं ते लिंगेन कर्त्तव्यम् ॥२॥

अर्थ—धर्मकरि सहित तौ लिंग होय है बहुरि लिंगमात्रहीकरि धर्मकी प्राप्ति नाहीं है, तातैं हे भव्यजीव ! तू भावरूप धर्म है ताहि जानि अर केवल लिंगहीकरि तरै कहा कार्य होय है, कछु भी नाहीं ॥

भावार्थ—इहां ऐसा जानो जो—लिंग ऐसा चिह्नका नाम है सो बाह्य भेष धारै सो मुनिका चिह्न है सो ऐसा चिह्न जो अंतरंग वीतराग स्वरूप धर्म होय तौ ता सहित तौ यह चिह्न सत्यार्थ होय है अर तिस वी-तरागस्वरूप आत्माका धर्म बिना लिंग जो बाह्य भेष तिस मात्रकरि धर्मकी संपत्ति जो सम्यक् प्राप्ति सो नाहीं है, तातैं उपदेश किया है जो अंतरंग भावधर्म जो रागद्वेष रहित आत्माका शुद्ध ज्ञान दर्शन रूप स्वभाव सो धर्म है ताहि हे भव्य ! तू जानि; अर इस बाह्य लिंग भेष मात्रकरि कहा कार्य है कछुभी नाहीं । बहुरि इहां ऐसाभी जाननां जो—जिनमतमें लिंग तीन कहै हैं—एक तौ मुनिका यथाज्ञात दिगंबर लिंग १ दूजा उत्कृष्ट श्रावकका २ तीजा आर्यकाका ३ इनितीनही लिंगनि कूं धारि भ्रष्ट होय अर जो कुक्रिया करै ताका निषेध है । तथा अन्य

मतके कोई भेष है तिनिकू भी धारि जो कुक्रिया करै सो भी निंदाही पावै, तातैं भेषधरि कुक्रिया न करनां ऐसा जनाया है ॥ २ ॥

आमैं कहै है जो जिनका लिंग जो—निर्ग्रथ दिगंबररूप ताहि ग्रहण-
करि जो कुक्रिया करि हास्य करावै सो पापबुद्धि है;—

गाथा—जो पावमोहिदमदी लिंगं घेतूण जिणवरिंदाणं ।

उवहसइ लिंगिभावं लिंगिमिय णारदो लिंगी ॥३॥

संस्कृत—यः पापमोहितमतिः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम् ।

उपहसति लिंगिभावं लिंगिषु नारदः लिंगी ॥३॥

अर्थ—जो जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थकरदेवका लिंग नग्न दिगंबररूपकूं
ग्रहण करि अर लिंगीपणांका भावकूं उपहसै है हास्यमात्र गिनै है; सो
कैसा है—लिंगी कहिये भेषी तिनिविषैं नारद लिंगी है तैसा है । अथवा
या गाथाका चौथा पादका पाठान्तर ऐसा है—“लिंग णासेदि लिंगीणं”
याका अर्थ—यह जो लिंगी जो अन्य कोई लिंगका धारी तिनिका लिंगकूं
भी नष्ट करै है, ऐसा जनावै है जो लिंगी सर्व ऐसेही हैं, कैसा है लिंगी—
पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ॥

भावार्थ—लिंगधारी होय अर पापबुद्धिकरि किछू कुक्रिया करै तब तानैं
लिंगीपणां हास्यमात्र गिण्यां, किछू कार्यकारी गिण्या नांही । लिंगीपणा
तौ भावशुद्धतैं सोहै था सो भाव विगडे तब बाह्य कुक्रिया करनें लग्या
तब यानैं तिस लिंगकूं लजाया अर अन्य लिंगीनिका लिंगकूं भी कलंक
लगाया, लोक कहनें लगे—जो लिंगी ऐसेही होय हैं । अथवा जैसें नार-
दका भेष है तामैं वह स्वइच्छानुसार स्वच्छंद जैसें प्रवर्तै है तैसें यह भी
भेषी ठहण्या । तातैं आचार्य ऐसा आशय धरि कह्या है जो—जिनेन्द्रका
भेषकूं लजावनां योग्य नांही ॥ ३ ॥

आगैं लिंग धारि कुक्रिया करै ताकूं प्रगट कहै है;—

गाथा—णञ्चदि गायदि तावं वायं बाणदि लिंगरूपेण ।

सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥४॥

संस्कृत—नृत्यति गायति तावत् वाद्यं वादयति लिंगरूपेण ।

सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥४॥

अर्थ—जो लिंगरूप करि नृत्य करै है गावै है वादित्र बजावै है, सो कैसा है—पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा है, सो तिर्यचयोनि है, पशु है; श्रमण नाहीं ॥

भावार्थ—लिंग धारि भाव विगाडि नाचनां गावनां बजावनां इत्यादि क्रिया करै सो पापबुद्धि है पशु है अज्ञानी है, मनुष्य नाहीं, मनुष्य होय तौ श्रमणपणां राखै । जैसे नारद भेषधारी नाचै गावै है बजावै है तैसें यह भी भेषी भया तब उत्तमभेषकूं लजाया, तातैं लिंग धारि ऐसा होनां युक्त नाहीं ॥ ४ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—सम्मूहदि रक्खेदि य अटं झाणदि बहुपयत्तेण ।

सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥५॥

संस्कृत—सम्मूहयति रक्षति च आर्त्तं ध्यायति बहुप्रयत्नेन ।

सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥५॥

अर्थ—जो निर्ग्रेथ लिंग धारि अर परिग्रहकूं संग्रहरूप करै है अथ वा ताकी बांछा चितवन ममत्व करै है, बडुरि तिस परिग्रहकी रक्षा करै है ताका बहुत यत्न करै है, ताकै अर्थ आर्त्तध्यान निरन्तर ध्यावै है; सो कैसा है—पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा तिर्यचयोनि है पशु है अज्ञानी है, श्रमण तौ नाहीं श्रमणपणां बिगाडै है, ऐसें जाननां ॥५॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिङ्गी ।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिङ्गिरूवेण ॥६॥

संस्कृत—कलहं वादं द्यूतं नित्यं बहुमानगर्वितः लिङ्गी ।

व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिङ्गिरूपेण ॥६॥

अर्थ—जो लिङ्गी बहुत मानकषायकरि गर्ववान भया निरंतर कलह करै है वाद करै है द्यूतक्रीडा करै है सो पापी नरककू प्राप्त होय हैं, कैसा है लिङ्गी—पाप करि ऐसैं करता संता बर्तै है ॥

भावार्थ—जो गृहस्थरूप करि ऐसी क्रिया करै है ताकूं तौ यह उराहनां नांही जातैं कदाचित् गृहस्थ तौ उपदेशादिकका निमित्त पाप कुक्रिया करता रह जाय तौ नरक न जाय । बहुरि लिङ्ग धारि तिसरू-पकरि कुक्रिया करै तौ ताकूं उपदेश भी न लागै, यातैं नरककाही पात्र होय है ॥६॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—पाओपहदभावो सेवदि य अबंभु लिङ्गिरूवेण ।

सो पावमोहिहमदी हिंडदि संसारकांतारे ॥७॥

संस्कृत—पापोपहतभावः सेवते च अब्रह्म लिङ्गिरूपेण ।

सः पापमोहितमतिः हिंडते संसारकांतारे ॥७॥

अर्थ—जो पापकरि उपहत कहिये घात्या गया है आत्मभाव जाका ऐसा भया संता लिङ्गीका रूपकरि अब्रह्म सेवै है, सो पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा लिङ्गी संसाररूपी कांतार जो वन तावियै भ्रमै है ॥

भावार्थ—पहले तौ लिङ्गधारण किया अर पीछैं ऐसा पाप परिणाम भया जो व्यभिचार सेवने लग्या, ताकी पापबुद्धिका कहा कहना ? ताका संसारमें भ्रमण न क्यों न होय ? जाकै अमृतहू जहररूप परिणमै ताके

रोग जानेकी कहा आशा ? तैसैं; यहू-भया, ऐसेका संसार कटनं कठिन है ॥ ७ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूपेण ।

अट्टं ज्ञायदि ज्ञाणं अणंतसंसारिओ होदि ॥८॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्राणि उपधानानि यदि न लिंगरूपेण ।

आर्त्तं ध्यायति ध्यानं अनंतसंसारिकः भवति ॥८॥

अर्थ—यदि कहिये जो लिंगरूप करि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं तौ उपधानरूप न किये धारण न किये अर आर्त्तध्यानकूं ध्यावै हैं तौ ऐसा लिंगी अनंतसंसारी होय है ॥

भावार्थ—लिंग धारण करि दर्शन ज्ञान चारित्रका-सेवन करनां था सो तौ न किया अर परिग्रह कुटुंब आदि विषयनिका परिग्रह छोड्या ताकी फेरि चिंताकरि आर्त्तध्यान ध्यावने लगा तब अनंतसंसारी क्यों न होय ? याका यह तात्पर्य है जो—सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तौ पहले भये नांहीं अर किछू कारण पाय लिंग ध्याया, ताकी अवधि कहा ? पहली भाव शुद्ध करि लिंग धारनां युक्त है ॥ ८ ॥

आगैं कहै है;—जो—भावशुद्धि बिना गृहस्थचारा छोड़े यह प्रवृत्ति होय है;—

गाथा—जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च ।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूपेण ॥९॥

संस्कृत—यः योजयति विवाहं कृषिकर्मवाणिज्यजीवघातं च ।

व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥९॥

अर्थ—जो गृहस्थनिके-परस्पर-विवाह जोड़े है सणपण करावै है, बहुरि कृषिकर्म कहिये खेती-वाहना किसानका कार्य अर वाणिज्य कहिये

च्यापार विणज वैश्यका कार्य अर जीवघात कहिये वैद्यकर्मके अर्थ जीव-
घात करनां अथवा धीवरादिकका कार्य इनि कार्यनिकूं करै है सो लिंग-
रूपकरि ऐसैं करता पापी नरककूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि शुभ भाव विना लिंगी भया था, याकी
भावकी वासना मिटी नाहीं तब लिंगीका रूप धारि करिभी करनेलगा
आप विवाह न करै तौऊ गृहस्थनिकै सणपण कराय विवाह करावै तथा
खेती विणज जीवहिंसा आप करै तथा गृहस्थनिकूं करावै, तब पापी
भया संता नरक जाय । ऐसे भेष धारनेतैं तौ गृहस्थही भला था,
पदवीका पाप तौ न लागता, तातैं ऐसा भेष धारणां उचित नाहीं 'यह
उपदेश है ॥ ९ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—चौराण लाउराण य जुद्ध विवादं च तिव्वक्कम्मेहिं ।

जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं ॥१०॥

संस्कृत—चौराणां लापराणां च युद्धं विवादं च तीव्रकर्मभिः ।

यंत्रेण दीव्यमानः गच्छति लिंगी नरकवासं ॥१०॥

अर्थ—जो लिंगी ऐसैं प्रवर्तै है सो नरकवासकूं प्राप्त होय है जो
चौरनिके अर लापर कहिये झूठ बोलनेवालानिकै युद्ध अर विवाद करावै
है बहुरि तीव्रकर्म जो जिनमें बहुत पाप उपजै ऐसे तीव्र कषायनिके
कार्य तिनिकरि तथा यंत्र कहिये चौपडि सतरंज पासा हिंदोला आदि
ताकरि क्रीडा करता संता वर्तै है, ऐसैं बरतता नरक जाय है । इहां
'लाउराण' का पाठांतर ऐसाभी है राउलार्ण,' याका अर्थ—रावल कहिये
राजकार्य करनेवाले तिनिकै युद्ध विवाद करावै, ऐसैं जाननां ॥

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'समाएण' ऐसा पाठ है जिसकी छाया 'मिथ्या-
वादिना' इस प्रकार है ।

भावार्थ—लिंग धारण करि ऐसे कार्य करै तौ सो नरक पावैही यामैं संशय नाहीं ॥ १० ॥

आगैं कहै है जो लिंग धारि लिंगयोग्य कार्य करता दुःखी रहै है तिनि कार्यानिका आदर नाहीं करै है, सो भी नरकमैं जाय है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि ।

पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥११॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्रेषु तपः संयमनियमनित्यकर्मसु ।

पीडयते वर्त्तमानः प्राप्नोति लिंगी नरकवासम् ११

अर्थ—जो लिंगधारणकरि इनि क्रियानिविधैं करता बाध्यमान होय पीडा पावै है दुःखी होय है सो लिंगी नरकवासकूं पावै है । ते किया कहा ? प्रथम तौ दर्शन ज्ञान चारित्र तिनिविधैं इनिका निश्चय व्यवहार-रूप धारण करनां, बहुरि तप अनशनादिक बारह प्रकार तिनिका शक्तिसारू करनां, बहुरि संयम-इंद्रिय मनका वशि करनां जीवनिकी रक्षा करनी, नियम कहिये नित्य किछू त्याग करनां, बहुरि नित्यकर्म कहिये आवश्यक आदि क्रियाका कालकी काल नित्य करनां; ये लिंगकै योग्य क्रिया हैं; इनि क्रियानिविधैं करता दुःखी होय है, सो नरक पावै है ॥

भावार्थ—लिंगधारणकरि ये कार्य करनें थे तिनिका तौ निरादर करै अर प्रमाद सेवै, लिंगकै योग्य कार्य करता दुःखी होय, तब जानिये—याकै भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नाहीं भया । अर भाव बिगडै ताका फल तौ नरकही होय, ऐसैं जाननां ॥ ११ ॥

आगैं कहै है जो भोजनविधैं भी रसनिका लोलुपी होय सो भी लिंगकूं लजावै है;—

गाथा—कंदप्पाइय बट्टइ करमाणो भोगणेषु रसगिद्धि ।

मायी लिंगविबाई तिरिक्खजोणी ण समणो ॥१२॥

संस्कृत—कंदर्पादिषु वर्तते कुर्वाणः भोजनेषु रसगृद्धिम् ।

मायावी लिंगव्यवायी तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः १२

अर्थ—जो लिंग धारि करि भोजनविषै भी रसकी गृद्धि कहिये अति आसक्तता ताहि करता वर्तै है सो कंदर्प आदिकविषै वर्तै है, कामसेवनकी वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक जाकै प्रचुर बढै है तब 'लिंगव्यवायी' कहिये व्यभिचारी होय है, मायावी कहिये कामसेवनकै अर्थि अनेक छल करनां विचारै है; जो ऐसा होय है सो तिर्यचयोनि है पशुतुल्य है मनुष्य नाहीं याहीतैं श्रमण नाहीं ॥

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि आहारविषै लोलुपता करने लग्या तौ गृहस्थचारामैं अनेक रसीले भोजन मिलैं थे, कोहकूं छोड़े, तातैं जानिये है जो आत्मभावनाका रसकूं पहचान्या नाहीं तातैं विषयसुखकी ही चाहि रही तब भोजनके रसकी लारके अन्य भी विषयनिकी चाहि होय तब व्यभिचार आदिमैं प्रवर्त्ति करि लिंगकूं लजावै; ऐसे लिंगतैं तौ गृहस्थचाराही श्रेष्ठ है, ऐसैं जाननां ॥१२॥

आगैं फेरि याहीका विशेष कहै है;—

गाथा—धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काउण भुंजदे पिंडं ।

अवरूपरुई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ॥१३॥

संस्कृत—धावति पिंडनिमित्तं कलहं कृत्वा भुंक्ते पिंडम् ।

अपरप्ररूपी सन् जिनमार्गी न भवति सः श्रमणः १३

अर्थ—जो लिंगधारी पिंड जो आहार ताकै निमित्त दोडै है, बडुरि आहारकै निमित्त कलह करि आहारकूं भुंजै है खाय है, बडुरि ताकै निमित्त अन्यतैं परस्पर ईर्षा करै है सो श्रमण जिनमार्गी नाहीं है ॥

भावार्थ—इस कालमें जिनलिंगतैं भ्रष्ट होय पहले अर्द्धाफलक भये पीछैं तिनिमें श्वेतांबरदिक संघ भये तिनिमें शिथिलाचार पोषि लिंगकी प्रवृत्ति बिगाडी, तिनिका यह निषेध है । -तिनिमें अब भी केई ऐसे देखिये हैं जो—आहारकै आर्थ शीघ्र दोडै है ईर्यापथकी सुध नाहीं, बहुरि आहार गृहस्थका घरसूं ल्याय दोय च्यारि सामिल बैठि खाय तामैं बट-वारामें सरस नीरस आवै तब परस्पर कलह करै बहुरि तिसके निमित्त परस्पर ईर्षा करै, ऐसैं प्रवृत्तैं ते काहेके श्रमण ? ते जिनमार्गी तौ नाहीं कलिकालके भेषी हैं । तिनिंकुं साधु मानैं हैं ते भी अज्ञानी हैं ॥१३॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—गिण्हदि अदत्तदानं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं ।

जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ॥१४॥

संस्कृत—गृह्णाति अदत्तदानं परनिंदामपि च परोक्षदूषणैः ।

जिनलिंगं धारयन् चौरणेव भवति सः श्रमणः॥१४॥

अर्थ—जो बिना दिया तौ दान ले है अर परोक्ष परके दूषणनि-करि परकी निंदा करै है सो जिनलिंगकूं धारता संता भी चौरकी ज्यों श्रमण है ॥

भावार्थ—जो जिनलिंग धारि बिना दिया आहार आदिकूं ग्रहण करै परकै देनैकी इच्छा नाहीं किछू भयादिक उपजाय लेना तथा निरादरतैं लेनां, छिपिकरि कार्य करनां ये तौ चौरके कार्य हैं । यह भेष धारि ऐसैं करनेलग्या तब चौरही ठहन्या तातैं ऐसा भेषी होनां योग्य नाहीं ॥ १४

आगैं कहै है जो लिंग धारि ऐसैं प्रवृत्तैं सो श्रमण नाहीं,—

माथा—उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण ।

इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१५॥

संस्कृत—उत्पतति पतति धावति पृथिवीं खनति लिंगरूपेण ।

ईर्यापथं धारयन् तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१५॥

अर्थ—जो लिंग धारकरि ईर्यापथ सोधि करि चालना था तामैं सो-
धिकरि न चालै दौडता चालता संता उछलै गिरपडै फेरि उठिकरि दौडै
बहुरि पृथ्वीकूं खोदै चालतैं ऐसा पगपटकैं जो तामैं पृथ्वी खुदि जाय
ऐसैं चालै सो तिर्यचयोनि है पशु अज्ञानी है, मनुष्य नाहीं ॥ १५ ॥

आगै कहै है जो बनस्पति आदि स्थावरजीवनिकी हिसातैं कर्मबंध
होय है ताकूं न गिनता स्वच्छंद होय प्रवतैं है, सो श्रमण नाहीं;—

गाथा—बंधो गिरजो संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि ।

छिंददि तरुण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥

संस्कृत—बंधं नीरजाः सन् सस्यं खंडयति तथा च वसुधामपि ।

छिनत्ति तरुणं बहुशः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥

अर्थ—जो लिंग धारणकरि अर बनस्पति आदिकी हिसातैं बंध
होय है ताकूं नाहीं दूषता संता बंधकू न गिनता संता सस्य कहिये
धान्य ताकूं खंडै है; बहुरि तैसैंही वसुधा कहिये पृथिवी ताहि खंडै है
खोदै है, बहुरि बहुत बार तरुण कहिये वृक्षनिकी समूह तिनिकूं छेद है;
ऐसा लिंगी तिर्यचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है श्रमण नाहीं ॥

भावार्थ—बनस्पति आदि स्थावरजीव जिनसूत्रमें कहै हैं अर तिनिकी
हिसातैं कर्मबंध कहा है ताकूं निर्दोष गिनता कहै है जो यामैं काहेका
दोष है काहेका बंध है ऐसैं मानता तथा वैद्यकर्मादिककैं निमित्त औषधा-
दिककूं धान्यकूं तथा पृथ्वीकूं तथा वृक्षनिकूं खंडै है खोदै है छेद है सो
आज्ञानी पशु हैं, लिंग धारि श्रमण कहावै है सो श्रमण नाहीं है ॥१६॥

आगैं कहै है जो लिंग धारणकरि छीनितैं राग करै है अर परकूं
दूषण दे है सो श्रमण नाहीं;—

गाथा—रागो करेदि णिच्चं महिलावर्गं परं च दूसेइ ।

दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो १७

संस्कृत—रागं करोति नित्यं महिलावर्गं परं च दूषयति ।

दर्शनज्ञानविहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१७॥

अर्थ—जो लिंग धारण करि स्त्रीनिके समूहनि प्रति तौ निरंतर राग-प्रीति करै है अर पर जो अन्य कोई निर्दोष है तिनिकुं दूषै है दूषण दे है कैसा है सो दर्शन ज्ञानकरि हीन है, ऐसी लिंगी तिर्यचयोनि है पशुसमान है अज्ञानी है, श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारण करै ताकै सम्यग्दर्शन ज्ञान होय है, अर पर-द्रव्यनितै राग द्वेष न करनां ऐसा चारित्र होय है । तहां जो स्त्रीसमूह-नितै तौ रागप्रीति करै है अर अन्यकूं दूषण लगाय द्वेष करै है व्यभिचारीकासा स्वभाव है तौ ताकै काहेका दर्शन ज्ञान ? अर काहेका चारित्र ? लिंगधारि लिंगकै करनेयोग्य था सो न किया तब अज्ञानी पशु समानही है श्रमण कहावै है सो आपभी मिथ्यादृष्टी है अर अन्यकूं मिथ्या-दृष्टी करनेवाला है, ऐसेका प्रसंग युक्त नांही ॥ १७ ॥

आगै फेरि कहै है;—

गाथा—पव्वज्जहीणगहिणं णोहिं सीसम्मि वट्ठदे बहुसो ।

आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो १८

संस्कृत—प्रव्रज्याहीनगृहिणि स्नेहं शिष्ये वर्त्तते बहुशः ।

आचारविनयहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१८॥

अर्थ—जा लिंगीकै प्रव्रज्या जो दीक्षा ताकरि रहित जे गृहस्थ तनि-परि अर शिष्यनिविषै स्नेह बहुत वर्त्तै अर आचार कहिये मुनिनिकी क्रिया अर गृहनिका विनयकरि रहित होय सो तिर्यचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नांही है ॥

भावार्थ—गृहस्थनितै तौ बार बार लालपाल राखै अर शिष्यनिसूं स्नेह बहुत राखै अर मुनिकी प्रवृत्ति आवश्यक आदि किछु करै नाहीं गुरुनिसूं प्रतिकूल रहै विनयादिक करै नाहीं ऐसा लिंगी पशुसमान है ताकूं साधु न कहिये ॥१८॥

आगैं कहै है जो लिंगधारी ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्तै है सो श्रमण नाहीं, ऐसा संक्षेपकरि कहै है;—

गाथा—एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्ठे णिच्चं ।

बहुलं पि जाणमाणो भावविण्हो ण सो समणो ॥१९॥

संस्कृत—एवं सहितः मुनिवर ! संयतमध्ये वर्त्तते नित्यम् ।

बहुलमपि जानन् भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥१९॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार प्रवृत्तिसहित जो वर्त्तै है सो है मुनिवर ! जो ऐसा लिंगधारी संयमी मुनिनिकै मध्यमी निरन्तर रहै है अर बहुत शास्त्रनिकूं भी जानता है तौऊ भावकरि नष्ट है, श्रमण नाहीं है ॥ १९ ॥

भावार्थ—ऐसा पूर्वोक्त प्रकारका लिंगी जो सदा मुनिनिमै रहै है अर बहुत शास्त्र जानै है तौऊ भाव जो शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणाम ताकरि रहित है, तातैं मुनि नाहीं, अष्ट है, अन्य मुनिनिके भाव बिगाडनेवाला है ॥ १९ ॥

आगैं फेरि कहै है जो स्त्रीनिका संसर्ग बहुत राखै सो भी श्रमण नाहीं है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देहि वीसट्ठो ।

पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविण्हो ण सो समणो २०

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्राणि महिलावर्गे ददाति विश्वस्तः ।

पार्श्वस्थादपि स्फुटं विनष्टः भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥

अर्थ—जो लिंग धारि करि स्त्रीनिके समूहविषैं तिनिका विश्वासकरि तथा तिनिकूं विश्वास उपजाय दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दे है तिनिकूं सम्यक्त्व बतावै है पढ़नां पढ़ावनां ज्ञान देहै, दीक्षा दे है, प्रवृत्ति सिखावै है, ऐसैं विश्वास उपजाय तिनिकूं प्रवर्तैं हें सो ऐसा लिंगी पार्श्वस्थ तैं भी निकृष्ट है, प्रगट भाव करि विनष्ट है श्रमण नाहीं ॥

भावार्थ—लिंग धारि स्त्रीनिकूं विश्वास उपजाय तिनिसूं निरंतर पढ़नां पढ़ावनां लाल पाल राखै ताकूं जानिये—याका भाव खोटा है । पार्श्वस्थ भ्रष्ट मुनिकूं कहिये है तिसतैं भी ये निकृष्ट है, ऐसैं साधु न कहिये ॥ २० ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—पुंछलिधरि जो भुंजइ णिचं संधुणदि पोसए पिंडं ।

पावदि बालसहावं भावविणटो ण सो सवणो ॥२१॥

संस्कृत—पुंश्चलीगृहे यः भुंक्ते नित्यं संस्तौति पुष्पाति पिंडं ।

प्राप्नोति बालस्वभावं भावविनष्टः न सः श्रमणः २१

अर्थ—जो लिंगधारी अर पुंश्चली जो व्यभिचारिणी स्त्री ताकै घर भोजन लेहै आहार करै है अर नित्य ताकी स्तुति करै है—जो यह बड़ी धर्मात्मा है याकै साधुनिकी बड़ी भक्ती है ऐसैं नित्य ताकूं सराहै ऐसैं पिंडकूं पालै है सो ऐसा लिंगी बालस्वभावकूं प्राप्त होय है, अज्ञानी है, भावकरि विनष्ट है, सो श्रमण नाहीं है ॥

भावार्थ—जो लिंग धारि व्यभिचारिणीका आहार खाय पिंड पालै ताकी नित्य सराहना करै, तब जानिये—यह भी व्यभिचारी है अज्ञानी है ताकूं लज्जामी न आवै; ऐसैं भावकरि विनष्ट है मुनिपणाके भाव नाहीं, सब मुनि काहेका ? ॥ २१ ॥

आगैँ इस लिंगपाहुडकूं संपूर्ण करै है अर कहै है जो—धर्मकूं यथार्थ पालै है सो उत्तम सुख पावै है;—

गाथा—इय लिंगपाहुडमिणं सव्वं बुद्धेहिं देसियं धम्मं ।

पालेइ कट्टसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं ॥२२॥

संस्कृत—इति लिंगप्राभृतमिदं सर्वं बुद्धैः देशितं धर्मम् ।

पालयति कट्टसहितं सः गाहते उत्तमं स्थानम् ॥२२॥

अर्थ—ऐसैँ यह लिंगपाहुडकूं शास्त्र सर्वबुद्ध जे ज्ञानी गणधरादिक तिनिनैँ उपदेश्या है ताकूं जानिकरि अर जो मुनि धर्मकूं कट्टसहित बडा जतन करि पालै है राखै है सो उत्तमस्थान जो मोक्ष ताहि पावै है ॥

भाषार्थ—यह मुनिका लिंग है सो बडा पुण्यका उदयतैँ पाइये है ताकूं पायकरि फेरि खोटे कारण मिलाय ताकूं विगाडै है तौ जानिये यह बडा निर्भागी है—चित्तामणि रत्न पाय कौडी साटै गमावै है तातैँ आचार्य उपदेश किया है—जो ऐसा पद पाय याकूं बडा यत्नसूं राखणां—कुसंगतिकरि विगाडैगा तौ जैसैँ पहलैँ संसारभ्रमणथा तैसैँ फेरि संसारमें अनंतकाल भ्रमण होयगा अर यत्नतैँ पालैगा तौ शीघ्रही मोक्ष पावैगा; तातैँ जाकूं मोक्ष चाहिये सो मुनिधर्मकूं पाय यत्नसहित पालो, परीषहका उपसर्गका उपद्रव आवै तौऊ चिगो मति यह श्रीसर्वज्ञदेवका उपदेश है ॥ २२ ॥

ऐसैँ यह लिंगपाहुड ग्रंथ पूर्ण किया ताका संक्षेप ऐसैँ जो—इस पंचमकालमें जिनलिंग धारि फेरि काल दुर्भिक्षके निमित्ततैँ भ्रष्ट भये भेष बिगाड्या अर्द्धफालक कहाये, तिनिनैँ फेरि श्वेतांबर भये, तिनिनैँ भी यापनीय भये, इत्यादिक होय शिथिलाचारके पोषनेके शास्त्र राखि स्वच्छंद भये, तिनिनैँ केतेक निपट निंदा प्रवृत्ति करनेलगे, तिनिनिका निषेधका मिषकरि सर्वके उपदेशकूं यह ग्रंथ है ताकूं समक्षिकरि अद्धानः

करनां । ऐसे निंद्य आचरणवालेनिक्कू साधु मोक्षमार्गी न माननै, तिनिक्कू
वंदन पूजन न करनां यह उपदेश है ॥

छप्पय ।

लिंग मुनीको धारि पाप जो भाव बिगाडै
सो निंदाक्कू पाय आपको अहित विथारै ।
ताक्कू पूजै थुवै वंदना करै जु कोई
ते भी तैसे होइ साथि दुरगतिक्कू लेई ॥
यातैं जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धिमें थिर रहे ।
तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे ॥१॥

दोहा ।

अंतर चाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राक्कू धारि ।
भये सिद्ध आनंदमय बंदू जोग संवारि ॥२॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि विरचित
श्रीलिंगप्राभृतशास्त्रकी
जयपुरनिवासि पं. जयचन्द्रजीछावड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ७ ॥

अथ शीलपाहुड ।

—:—

[८]

अथ शीलपाहुडग्रंथकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—

दोहा ।

भवकी प्रकृति निवारिकै प्रगट किये निजभाव ।

है अरहंत जु सिद्ध फुनि बंदू तिनि धरि चाव ॥१॥

ऐसै इष्टके नमस्काररूप मंगलकरि शीलपाहुडनाम ग्रंथ श्रीकुन्दकुन्दा-
चार्यकृत प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है । तहां
प्रथम श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ग्रंथकी आदिकै विषै इष्टकूं नमस्काररूप मंग-
लकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करै है;—

गाथा—वीरं विसालणयणं रत्नुप्पलकोमलस्समप्पावं ।

तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह ॥१॥

संस्कृत—वीरं विशालनयनं रक्तोत्पलकोमलसमपादम् ।

त्रिविधेन प्रणम्य शीलगुणान् निशाम्यामि ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो मैं वीर कहिये अंतिम तीर्थकर श्रीवर्द्ध-
मानस्वामी परम भट्टारक ताहि मन वचन कायकरि नमस्कारकरि
अर शील जो निज भावरूप प्रकृति ताके गुणनिकूं अथवा शील
अर सम्यग्दर्शनादिक गुण तिनिकूं कहूंगा; कैसे हैं श्रीवर्द्धमान-
स्वामी—विशालनयन हैं, तिनिकै बाह्य तौ पदार्थनिके देखनेकूं नेत्र विशाल
है विस्तीर्ण हैं सुन्दर हैं, बहुरि अंतरंग केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र
समस्त पदार्थनिकूं देखनेवाले हैं; बहुरि कैसे हैं—रक्तोत्पलकोमलसमपाद'

कहिये रक्त कमल सारिखे कोमल जिनिके चरण हैं, ऐसे अन्यके नांही; तातैं सर्वकरि सराहनें योग्य हैं पूजनें योग्य हैं । बहुरि याका दूजा अर्थ ऐसा भी होय है—जो रक्त कहिये रागरूप आत्माका भाव उत्पल कहिये दूर करनां ताविषैं कोमल कहिये कठोरतादिदोषरहित अर सम कहिये राग द्वेष करि रहित पाद कहिये वाणीके पद जिनिके, कोमल हित मित मधुर राग द्वेषरहित जिनिके बचन प्रवर्तैं हैं तिनितैं सर्वका कल्याण होय है ॥

भावार्थ—ऐसे वर्द्धमानस्वामीकुं नमस्काररूप मंगलकरि आचार्य शीलपाहुड ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगैं शीलका रूप तथा यातैं गुण होय हैं सो कहैं हैं;—

गाथा—शीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिदिट्ठो ।

णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥२॥

संस्कृत—शीलस्य च ज्ञानस्य च नास्ति विरोधो बुधैः निर्दिष्टः ।

केवलं च शीलेन विना विषयाः ज्ञानं विनाशयन्ति २

अर्थ—शीलकै अर ज्ञानकै ज्ञानीनिनैं विरोध न कइया है ऐसा नांही जहां शील होय तहां ज्ञान न होय अर ज्ञान होय तहां शील न होय । बहुरि इहां णवरि कहिये विशेष है सो कहैं है—शील विना विषय कहिये इंद्रियनिके विषय है ते ज्ञानकुं विनाशैं हैं नष्ट करैं हैं ज्ञानकुं मिथ्यात्व रागद्वेषमय अज्ञानरूप करै है । इहां ऐसा जाननां जो—शीलनाम स्वभावका प्रकृतिका प्रसिद्ध है, तहां आत्माका सामान्यकरि ज्ञान स्वभाव है । तहां इस ज्ञानस्वभावमें अनादिकर्म सयोगतैं मिथ्यात्व रागद्वेषरूप परिणाम होय हैं सो यह ज्ञानकी प्रकृति कुशीलनाम पावै है यातैं संसार निप-जै है, तातैं याकुं संसार प्रकृति कहिये इस प्रकृतिकुं अज्ञानरूप कहिये

इस प्रकृतितैं संसार पर्यायविषै आपा मानै है तथा परद्रव्यनिविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि करै है । बहुरि यह प्रकृति पलटै तब मिथ्यात्व का अभाव कहिये तब संसारपर्यायविषै आपा न मानै है, परद्रव्यानिविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय अर इस भावकी पूर्णता न होय तैतैं चारित्रमोहका उदयतैं कछु रागद्वेष कषाय परिणाम उपजै ताकूं कर्मका उदय जानै, तिनि भावनिकूं त्यागनेयोग्य जानै, त्याग्या चाहै ऐसी प्रकृति होय तब सम्यग्दर्शनरूपभाव कहिये, इस सम्यग्दर्शनभावतैं ज्ञानभी सम्यक् नाम पावै और यथापदवी चारित्रिकी प्रवृत्ति होय जेता अंश रागद्वेष घटै तेता अंश चारित्र कहिये ऐसी प्रकृतिकूं सुशील कहिये, ऐसैं कुशील सुशील शब्दका सामान्य अर्थ है । तहां सामान्यकरि विचारिये तौ ज्ञानही कुशील है अर ज्ञान ही सुशील है यातैं ऐसैं कहा है जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नाहीं बहुरि जब संसार प्रकृति पलटि मोक्ष सन्मुख प्रकृति होय तब सुशील कहिये, तातैं ज्ञानमें अर शीलमें विशेष कहा जो ज्ञानमें सुशील न आवै तौ ज्ञानकूं इंद्रियनिके विषय नष्ट करै ज्ञानकूं अज्ञान करै तब कुशील नाम पावै । बहुरि इहां कोई पूछै—गाथामैं ज्ञान अज्ञानका तथा सुशील कुशीलका नाम तौ न कहा, ज्ञान अर शील ऐसा ही कहा है ताका समाधान—जो पूवैं गाथामैं ऐसीप्रतिज्ञा करी जो मैं शीलके गुणनिकूं कहूंगा तातैं ऐसा जान्या जाय है जो आचार्यके आशयमें सुशील-हीके कहनेका प्रयोजन है, सुशीलहीकूं शीलनाम करि कहिये, शीलविना कुशील कहिये । बहुरि इहां गुणशब्द उपकारवाचक लेना तथा विशेषवाचक लेना, शीलतैं उपकार होय है; तथा शीलका विशेष गुण है सो कहसी । ऐसैं ज्ञानमें जो शील न आवै तौ कुशील होय इंद्रियनिके निषयनितैं आसक्ति होय तब ज्ञाननाम न पावै, ऐसैं जानना । बहुरि व्यवहारमें शीलनाम छीका संसर्ग वर्जनैकाभी है सो विषयसेवनकाही

निषेध है, तथा परद्रव्यमात्रका संसर्ग छोड़ना, आत्मामें लीन होना सो परमब्रह्मचर्य है। ऐसैं ये शीलहीके नामांतर जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो—ज्ञान भयेभी ज्ञानका भावनां अर विषयनिर्तैं विरक्त होनां कठिन है;—

गाथा—दुःखेणेयदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं ।

भाबियमई व जीवो विसयेसु विरज्जाए दुक्खं ॥३॥

संस्कृत—दुःखेनेयते ज्ञानं ज्ञानं ज्ञात्वा भावना दुःखम् ।

भावितमतिश्च जीवः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥३॥

अर्थ—प्रथम तौ ज्ञान है सोही दुःखकरि प्राप्त होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानभी पावै तौ ताकूं जानि करि ताकी भावना करना बारंबार अनुभव करनां दुःखकरि होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानकी भावनासहित भी जीव होय तौ विषयनिर्कूं दुःखकरि त्यागै है ॥

भावार्थ—ज्ञानका पावनां फेरि ताकी भावना करनां फेरि विषयनिका त्यागनां ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं, अर विषयनिर्कूं त्यागे बिना प्रकृति पलटी न जाय तातैं पूर्वे ऐसा कहा है जो विषय ज्ञानकूं बिगाडै है तातैं विषयनिका त्यागनां सोही मुशील है ॥ ३ ॥

आगैं कहै है जो यह जीव जेतैं विषयनिर्में प्रवर्तैं है तेतै ज्ञानकूं नांही जानै है अर ज्ञानकूं जानें बिना विषयनिर्तैं विरक्त होय तौऊ कर्मनिका क्षय नांही करै है;—

गाथा—ताव ण जाणदि णाणं विसयवलो जाव वट्टए जीवो ।

विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्म ॥४॥

संस्कृत—तावत् न जानाति ज्ञानं विषयबलः यावत् वर्त्तते जीवः ।

विषये विरक्तमात्रः न क्षिपते पुरातनं कर्म ॥ ४ ॥

अर्थ—जेतैं यह जीव विषयबल कहिये विषयनिकै बशीभूत हू बत्तैं है तेतैं ज्ञानकूं नांही जानैं है बहुरि ज्ञानकूं जानें विना केवलविषयनि-विषैं विरक्तमात्रहीकरि पूर्वैं बांधे जे कर्म तिनिका क्षय नांही करै है ॥

भावार्थ—जीवका उपयोग क्रमवर्त्ती है अर स्वस्थस्वभाव हें यातैं जैसा ज्ञेयकूं जानें तिसकाल तिसतैं तन्मय होय बत्तैं है तातैं जेतैं विष-यनिमें आसक्त भया बत्तैं है तेतैं ज्ञानका अनुभव न होय इष्ट अनिष्ट-भावही रहै, बहुरि ज्ञानका अनुभवन भये विना कदाचित् विषयनिकूं त्यागै तौ वर्त्तमानविषयनिकूं तौ छोडै परन्तु पूर्व कर्म बांधे थे तिनिका तौ ज्ञानका अनुभवन भये विना क्षय होय नांही, पूर्व कर्मका बंधका क्षय करनेमें ज्ञानहीकी सामर्थ्य है, तातैं ज्ञानसहित होय विषय त्यागनां श्रेष्ठ है, विषयनिकूं त्यागि ज्ञानकी भावना करनां यही सुशील है ॥४॥

आगैं ज्ञानका अर लिंगग्रहणका अर तपका अनुक्रम कहै है;—

गाथा—णाणं चरित्तहीणं लिंगग्रहणं च दंसणविहूणं ।

संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं ॥ ५ ॥

संस्कृत—ज्ञानं चारित्रहीनं लिंगग्रहणं च दर्शनविहीनं ।

संयमहीनं च तपः यदि चरति निरर्थकं सर्वम् ॥५॥

अर्थ—ज्ञान तौ चारित्ररहित होय सो निरर्थक है, बहुरि लिंगका ग्रहण दर्शनकरि रहित होय सो निरर्थक है, बहुरि संयमकरि रहित तप होय तौ निरर्थक है ऐसैं ए आचरण करै तौ सर्वनिरर्थक है ॥

भावार्थ—हेय उपादेयका ज्ञान तौ होय अर त्यागग्रहण न करै तौ ज्ञान निष्फल होय, यथार्थ श्रद्धान विना भेष ले तौ निष्फल होय है, इन्द्रिय बश करनां जीवनिकी दया करनां यह संयम है या त्रिणां कछू तप करै तौ आहंसादिकका विपर्यय होय तब निष्फल होय; ऐसैं इनिका आचरण निष्फल होय है ॥५॥

आगै याहीतै कहै है जो—ऐसैं किये थोड़ा भी करै तौ बड़ा फल होय है;—

गाथा—णाणं चरित्तसुद्धं लिङ्गग्रहणं च दंसणविसुद्धं ।

संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ ॥६॥

संस्कृत—ज्ञानं चारित्रशुद्धं लिङ्गग्रहणं च दर्शनविशुद्धम् ।

संयमसहितं च तपः स्तोकमपि महाफलं भवति ॥६॥

अर्थ—ज्ञानतौ चारित्रकरि शुद्ध, अर लिङ्गका ग्रहण दर्शन करि शुद्ध, संयमसहित तप ऐसैं थोड़ाभी आचरै तौ महाफलरूप होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान थोड़ाभी होय अर आचरण शुद्ध करै तौ बड़ा फल होय; बड़ुरि याथार्थश्रद्धापूर्वक भेषले तौ बड़ाफल करै जैसे सम्यग्दर्शन-सहित श्रावकर्हा होय तौ श्रेष्ठ, अर तिस विना मुनिका भेषभी श्रेष्ठ नाहीं; बड़ुरि इन्द्रिसंयम प्राणसंयम सहित उपवासादिक तप थोड़ाभी करै तौ बड़ा फल होय, अर विषयामिलाष अर दयारहित बड़ा कष्ट सहित तप करै तौऊ फल नाहीं; ऐसैं जाननां ॥ ६ ॥

आगै कहै है जो कोई ज्ञानकुं जानिकरिभी विषयासक्त रहै है ते संसारहीमें भ्रमैं हैं;—

गाथा—णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता ।

हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढा ॥ ७ ॥

संस्कृत—ज्ञानं ज्ञात्वा नराः केचित् विषयादिभावसंसक्ताः ।

हिंडंते चतुर्गतिं विषयेषु विमोहिता मूढाः ॥ ७ ॥

अर्थ—केई मूढ मोहा पुरुष ज्ञानकुं जानिकरिभी विषयनिरूप भाव-निकरि आसक्त भये संते चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमैं हैं जातैं विषयनि-करी विमोहित भये फेरिभी जगतमें प्राप्त होसी तामैं भी विषय कषायनि-काही संस्कार है ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषय कषाय छोड़ना भला है, नातरि ज्ञान अज्ञानतुल्यही है ॥ ७ ॥

आगै कहै है जो ज्ञान पाय ऐसैं करै तब संसार कटै;—

गाथा—जे पुण विसयविरत्ता णाणं गाऊण भावणासहिदा ।

छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ८ ॥

संस्कृत—ये पुनः विषयविरक्ताः ज्ञानं ज्ञात्वा भावनासहिताः ।

छिन्दन्ति चतुर्गतिं तपोगुणयुक्ताः न सन्देहः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे ज्ञानकूं जानिकरि अर विषयनिर्ते विरक्त भये संते तिस ज्ञानकी बारबार अनुभवरूप भावनासहित होय है ते तप अर गुण कहिये मूलगुण उत्तरगुणयुक्त भये संते चतुर्गतिरूप जो संसार है ताहि छेदै हैं काटैं हैं, यामैं संदेह नाहीं ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषयकषाय छोड़ि ज्ञानकी भावना करै, मूल-गुण उत्तरगुण ग्रहणकरि तप करै सो संसारका भावकरि मुक्तिप्राप्त होय—यह शीलसहितज्ञानरूप मार्ग है ॥ ८ ॥

आगै ऐसैं शीलसहित ज्ञानकरि जीव शुद्ध होय है ताका दृष्टान्त कहै है;—

गाथा—जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण ।

तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण ॥९॥

संस्कृत—यथा कांचनं विशुद्धं धमत् खटिकालवणलेपेन ।

तथा जीवोऽपि विशुद्धः ज्ञानविसलिलेन विमलेन ॥९॥

अर्थ—जैसैं कांचन कहिये सुवर्ण है सो खडिय कहिये सुहागा अर लूप इनिका लेपकरि विशुद्ध निर्मल कांतियुक्त होय है तैसैं जीव है सो भी विषयकषायनिके मलकरि रहित निर्मल ज्ञानरूप जलकरि पखाह्या कर्मनिकरि रहित विशुद्ध होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान है सो आत्माका प्रधान गुण है परन्तु मिथ्यात्व विषयानि तैं मलिन है या तैं मिथ्यात्वविषयनिरूप मलकूं दूरिकरि याकी भावना करै याका एकाग्रकरि ध्यान करै तौ कर्मनिका नाश करै, अनंत-चतुष्टय पाय मुक्त होय शुद्ध आत्मा होय है; तहां सुवर्णका दृष्टान्त है सो जाननां ॥९॥

आगैं कहै है जो ज्ञान पाय विषयासक्त होय है सो ज्ञानका दोष नांही है, कुपुरुषका दोष है;—

गाथा—णाणस्स णत्थि दोसो कप्पुरिसाणो वि मंदबुद्धीणो ।

जे णाणगव्विदा होऊणं विसण्णसु रज्जंति ॥१०॥

संस्कृत—ज्ञानस्य नास्ति दोषः कापुरुषस्यापि मंदबुद्धेः ।

ये ज्ञानगर्विताः भूत्वा विषयेषु रज्जन्ति ॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष ज्ञानगर्वित होयकरि ज्ञानमदकरि विषयनिविषैं रंजित होय हैं सो यह ज्ञानका दोष नांही है ते मंदबुद्धि कुपुरुष हैं तिनका दोष है ॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि ज्ञानकरि बहुत पदार्थनिकूं जानै तब विषयनिमैं रंजायमान होय है सो यह ज्ञानका दोष है; तहां आचार्य कहै है—ऐसैं मति जानो—ज्ञान पाय विषयनिमैं रंजमान होय है सो यह ज्ञानका दोष नांही है—यह पुरुष मंदबुद्धि है अर कुपुरुष है ताका दोष है, पुरुषका होणहार खोटा होय तब बुद्धि बिगडजाय तब ज्ञानकूं पाय अर ताका मदमैं छुकि जाय विषय कषायनिमैं आसक्त होय सो यह दोष पुरुषका है, ज्ञानका नांही । ज्ञानका तौ कार्य वस्तुकूं जैसा होय तैसा जनायदेनाही है पीछै प्रवर्त्तनां पुरुषका कार्य है, ऐसैं जाननां ॥ १० ॥

आगैं कहै है—पुरुषकै ऐसैं निर्वाण होय है;—

गाथा—णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण ।

होहदि परिणिब्बाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं ॥११॥

संस्कृत—ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।

भविष्यति परिनिर्वाणं जीवानां चारित्रशुद्धानाम् ११

अर्थ—ज्ञान दर्शन तप ये सम्यक्त्व भावसहित आचरे होय तब चारित्रकरि शुद्ध जीवनिकै निर्वाणकी प्राप्ति होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वकरि सहित ज्ञान दर्शन तप आचरै तब चारित्र शुद्ध होय राग द्वेष भाव मिटि जाय तब निर्वाण पावै, यह मार्ग है ॥११॥

आगैं याहीकूं शीलप्रधानकरि नियमकरि कहै है;—

गाथा—सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाणदिट्ठचारित्ताणं ।

अपि ति ध्रुवं णिब्बाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥१२॥

संस्कृत—शीलं रक्षतां दर्शनशुद्धानां दृढचारित्राणाम् ।

अस्ति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥१२॥

अर्थ—जे पुरुष विषयनिविषै विरक्त है चित्त जिनिका ऐसे हैं अर शीलकूं राखते संते हैं अर दर्शनकरि शुद्ध हैं अर दृढ है चारित्र जिनिका ऐसे पुरुषनिकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं नियमतैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—जो विषयनितैं विरक्त होनां है सो ही शीलकी रक्षा है, ऐसैं जे शीलकी रक्षा करैं हैं तिनिहीकै सम्यग्दर्शन शुद्ध होय है अर चारित्र अतीचार रहित शुद्ध दृढ होय है ऐसे पुरुषनिकै नियमकरि निर्वाण होय है । अर जे विषयनि विषै आसक्त हैं तिनिकै शीलबिगडै तब दर्शन शुद्ध न होय चारित्र शिथिल होय तब निर्वाणभी न होय, ऐसैं निर्वाण मार्गमें शीलही प्रधान है ॥ १२ ॥

आगै कहै है जो कदाचित् कोई विषयनिसूं विरक्त न भया अर मार्ग विषयनितैं विरक्त होनैरूपही कहै है ताकूं मार्गकी प्राप्ति होयभी है, अर जो विषयसेवनेकूंही मार्ग कहै है तौ ताकै ज्ञानभी निरर्थक है;—

गाथा—विसएसु मोहिदाणं कष्टियं मगं यि इष्टदरिसीणं ।

उम्मगं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ॥१३॥

संस्कृत—विषयेषु मोहितानां कथितो मार्गोऽपि इष्टदर्शनां ।

उन्मार्ग दर्शनां ज्ञानमपि निरर्थकं तेषाम् ॥१३॥

अर्थ—जे पुरुष इष्ट मार्गके दिखावनेवाले ज्ञानी हैं अर विषयनितैं विमोहित हैं तौऊ तिनिकै मार्गकी प्राप्ति कही है, बहुरि जे उन्मार्गके दिखावनेवाले हैं तिनिका तौ ज्ञान पावनांभी निरर्थक है ॥

भावार्थ—पूर्वै कहाथा जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नांही है अर यह विशेष है जो ज्ञान होय अर विषयासक्त होय ज्ञान विगडै तब शील नांही । अब इहां ऐसैं कहा है जो—ज्ञान पाय कदाचित् चारित्रमोहके उदयतैं विषय न छूटै तौ जातैं तिनिमैं विमोहित रहै अर मार्गकी प्ररूपणा विषयनिका त्यागरूपही करै ताकै तौ मार्गकी प्राप्ति होयभी है बहुरि जो मार्गहीकूं कुमार्गरूप प्ररूपण करै विषय सेवनेकूं सुमार्ग बतावै तौ ताका तौ ज्ञान पावनां निरर्थकही है, ज्ञान पायभी मिथ्यामार्ग प्ररूपै ताकै ज्ञान काहेका ? ज्ञान मिथ्याज्ञान है । इहां आशय यह सूचै है जो—सम्यक्त्व सहित अविरत सम्यग्दृष्टी है सो तौ भला है जातैं सम्यग्दृष्टी कुमार्ग प्ररूपै नांही, आपकै चारित्रमोहका उदय प्रबल होय तेतैं विषय छूटै नांही तातैं अविरत है; अर, सम्यग्दृष्टी न होय अर ज्ञानभी बडा होय कछू आचारणभी करै विषयभी छोडै अर कुमार्ग प्ररूपै तौ भला नांही ताका ज्ञान अर विषय छोडनां निरर्थक है, ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

आगै कहै है जो उन्मार्गके प्ररूपण करनेवाले कुमतकुशास्त्रकी जे प्रशंसा करै हैं ते बहुत शास्त्र जानै हैं तौऊ शीलव्रतज्ञानकरि रहित तिनिकै आराधना नांही;—

गाथा—कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाई सत्थाई ।

शीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥१४॥

संस्कृत—कुमतकुश्रुतप्रशंसकाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।

शीलव्रतज्ञानरहिता न स्फुटं ते आराधका भवन्ति ॥१४॥

अर्थ—जे बहुत प्रकार शास्त्रानिकूं जानते संते हैं अर कुमत कुशास्त्रके प्रशंसा करनेवाले हैं ते शील अर व्रत अर ज्ञान इनिकारि रहित हैं ते इनिका आराधक नांही हैं ॥

भावार्थ—जे बहुत शास्त्रनिकूं जानि ज्ञान तौ बहुत जानै हैं अर कुमत कुशास्त्रनिकी प्रशंसा करै हैं तौ जानिये याकै कुमतसूं अर कुशास्त्रसूं राग है प्रीति है तब तिनिकी प्रशंसा करै है—तौ ये तौ मिथ्यात्वके चिह्न हैं, अर जहां मिथ्यात्व है तहां ज्ञान भी मिथ्या है अर विषयकषायनितै रहित होय ताकूं शील कहिये सो भी ताकै नांही है, अर व्रत भी ताकै नांही है, कदाचित् कौऊ व्रताचरण करै है तौऊ मिथ्याचारित्ररूप है; तातैं सो दर्शन ज्ञान चारित्रका आराधनेवाला नांही है, मिथ्यादृष्टी है ॥१४॥

आगै कहै है जो रूपसुंदरादिक सामग्री पावै अर शील रहित होय तौ ताका मनुष्यजन्म निरर्थक है;—

गाथा—रूपसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं ।

शीलगुणवज्जिदाणं गिरत्थयं माणुसं जम्म ॥१५॥

संस्कृत—रूपश्रीगर्वितानां यौवनलावण्यकान्तिकलितानाम् ।

शीलगुणवर्जितानां निरर्थकं मानुषं जन्म ॥१५॥

अर्थ—जे पुरुष यौवन अवस्था सहित हैं अर बहुतनिकूं प्रिय लागैं ऐसा लावण्य ताकारे सहित है अर शरीरकी कांति प्रभाकारे मंडित हैं ऐसे, अर सुन्दररूप लक्ष्मी संपदाकरि गर्वित हैं मदोन्मत्त हैं अर शील अर गुणनिकारि वर्जित हैं तिनिका मनुष्यजन्म निरर्थक है ॥

भावार्थ—मनुष्यजन्म पाय शीलकरि रहित हैं विषयनिर्मे आसक्त रहैं, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जे गुण तिनिकारि रहित हैं, अर यौवन अवस्थामैं शरीरकी लावण्यता कांतिरूप सुंदर धन संपदा पाय इनिका गर्वकरि मदोन्मत्त रहैं तौ तिनिकें मनुष्यजन्म निष्फल खोया; मनुष्यजन्ममें तौ सम्यग्दर्शनादिकका अंगीकार करनां अर शील संयम पालनेयोग्य था सो अंगीकार किया नाहीं तब निष्फलही गया कहिये । बहुरि ऐसा भी जना या है जो पहली गाथामैं कुमत्त कुशास्त्रकी प्रशंसा करनें वालेका ज्ञान निरर्थक कहाथा तैसैं इहां रूपादिकका मद करै तौ यह भी मिथ्या त्वका चिह्न है सो मद करै सो मिथ्यादृष्टी ही जाननां । तथा लक्ष्मी रूप यौवन कांतिकरि मंडित होय अर शीलरहित व्यभिचारी होय तौ ताकी लोकमें निंदाही होय है ॥

आगैं कहै है जो बहुत शास्त्रनिका ज्ञान होतैं भी शीलही उत्तम है;—

गाथा—वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु ।

वेदेऊण सुदेसु य तेव सुयं उत्तमं सीलं ॥१६॥

संस्कृत—व्याकरणछन्दोवैशेषिकव्यवहारन्यायशास्त्रेषु ।

विदित्वा श्रुतेषु च तेषु श्रुतं उत्तमं शीलम् ॥१६॥

अर्थ—व्याकरण छंद वैशेषिक व्यवहार न्यायशास्त्र ये शास्त्र बहुरि श्रुत कहिये जिनागम इनिविषैं तनि व्याकरणादिककूं अर श्रुत कहिये जिनागमकूं जानिकरिभी इनिविषैं शील होय सो ही उत्तम है ॥

भावार्थ—व्याकरणादिशास्त्र जानै अर जिनागमकृंभी जानै तौऊ तिनिमें शीलही उत्तम है शास्त्रनिकूं जानि अर विषयनिमें ही आसक्त है तौ तिनि शास्त्रनिका जाननां वृथा है उत्तम नांही ॥

आगैं कहै है जो—शील गुणकरि मंडित है ते देवनिकै भी बल्लभ हैं;—

गाथा—शीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण बल्लहा होंति ।

सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए ॥१७॥

संस्कृत—शीलगुणमंडितानां देवा भव्यानां बल्लभा भवन्ति ।

श्रुतपारगप्रचुराः णं दुःशीला अल्पकाः लोके ॥१७॥

अर्थ—जे भव्य प्राणी शील अर सम्यग्दर्शनादिक गुण अथवा शील सो ही गुण ताकरि मंडित हैं तिनिका देवभी बल्लभ होय है तिनिकी सेवा करनेवाले सहायी होय हैं । बहुति जे श्रुतपारग कहिये शास्त्रके पार पहुंचे हैं ग्यारह अंग ताई पढ़े हैं ऐसे बहुत हैं अर तिनिमें केई शीलगुणकरि रहित हैं दुःशील हैं विषय कषायनिमें आसक्त हैं तौ ते लोकविषै 'अल्पका' कहिये न्यून हैं ते मनुष्य लोकनिकै भी प्रिय न होय है तब देव कहातैं सहायी होय ॥

भावार्थ—शास्त्र बहुत जानै अर विषयासक्त होय तौ ताका कोई सहायी न होय, चोर अर अन्यायीकी लोकमें कोई सहाय न करै; अर शील गुणकरि मंडित होय अर ज्ञान थोडाभी होय तौ ताकै उपकारी सहायी देवभी होय हैं तब मनुष्य तौ सहायी होयही होय, शीलगुणवान सर्वकै प्यारा होय है ॥ १७ ॥

आगैं कहै है जिनिकै शील है सुशील है तिनिका मनुष्यभवमें जीवनां सफल है भला है;—

गाथा—सन्ने विय परिहीणा रूपविरूपा वि वदिदसुवया वि ।

शीलं जेसु सुशीलं सुजीविदं माणुसं तसि ॥१८॥

संस्कृत—सर्वेऽपि च परिहीनाः रूपविरूपा अपि पतित-

सुवयसोऽपि ।

शीलं येषु सुशीलं सुजीविदं मानुष्यं तेषाम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जे सर्व प्राणीनिमै हीन हैं कुलादिककरि न्यून हैं अर रूप-
करि विरूप हैं सुन्दर नांही हैं बहुरि पतितसुवयसः कहिये अवस्थाकरि
सुन्दर नांही हैं वृद्ध होय गये हैं अर जिनिविषै शील सुशील है स्वभाव
उत्तम है कषायादिककी तीव्र आसक्तता नांही है तिनिका मनुष्यपणां
सुजीवित है जीवनां भला है ॥

भावार्थ—लोकमै सर्वसामग्रीकरि जे न्यून हैं अर स्वभाव उत्तम है
विषयकषायनिमै आसक्त नांही हैं तौ ते उत्तमहीं हैं तिनिका मनुष्य-
भव सफल है तिनिका जीतव्य प्रशंसा योग्य है ॥ १९ ॥

आगैं कहै है जो—जे ते भले उत्तम कार्य हैं ते सर्व शीलके परि-
वार हैं;—

गाथा—जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।

सम्मदंसण णाणं तओ य शीलस्स परिवारो ॥१९॥

संस्कृत—जीवदया दमः सत्यं अचौर्यं ब्रह्मचर्यसंतोषौ ।

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं तपश्च शीलस्य परिवारः ॥१९॥

अर्थ—जीवदया इंद्रियनिका दमन सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य संतोष
सम्यग्दर्शन ज्ञान तप ये सर्व शीलके परिवार हैं ॥

भावार्थ—शील ऐसा स्वभावका तथा प्रकृतिका नाम प्रसिद्ध है
तहां मिथ्यात्वसहित कषायरूप ज्ञानकी परणति है सो तौ दुःशील है

याकूं संसारप्रकृति कहिये, बहुरि यह प्रकृति पलटै अर सम्यक् प्रकृति होय सो सुशील है याकूं मोक्षसन्मुख प्रकृति कहिये । ऐसैं सुशीलके जीवदयादिक गाथामैं कहे ते सर्वही परिवार है जातैं संसारप्रकृति पलटै तब संसारदेहसूं वैराग्य होय अर मोक्षसूं अनुराग होय तब सम्यग्दर्शनादिक परिणाम होय तब जेती प्रकृति होय सो मोक्षके सन्मुख होय, यही सुशील है सो जाकै संसारको ओड आवै है तब यह प्रकृति होय है अर यह प्रकृति न होय तेतैं संसारभ्रमण है ही, ऐसैं जाननां ॥ १९ ॥

आगैं शील है सो ही तप आदिक है ऐसैं शीलकी महिमा कहै है;—

गाथा—शीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धी य ।

शीलं विसयाण अरी शीलं मोक्खस्स सोवाणां ॥२०॥

संस्कृत—शीलं तपः विशुद्धं दर्शनशुद्धिश्च ज्ञानशुद्धिश्च ।

शीलं विषयाणामरिः शीलं मोक्षस्य सोपानम् ॥२०॥

अर्थ—शील है सो ही विशुद्ध निर्मल तप है, बहुरि शील है सो ही दर्शनकी शुद्धिता है, बहुरि शील है सो ही ज्ञानकी शुद्धता है, बहुरि शील है सो ही विषयनिका शत्रु है, बहुरि शील है सो ही मोक्षकी पैडी है ॥

भावार्थ—जीव भजीव पदार्थनिका ज्ञानकरि तामैंसूं मिथ्यात्व अर कषायनिका अभाव करनां सो सुशील है सो यह आत्माका ज्ञानस्वभाव है सो संसारप्रकृति मिटि मोक्षसन्मुख प्रकृति होय तब या शीलहीके तप आदिक सर्व नाम हैं—निर्मल तप शुद्ध दर्शन ज्ञान विषय कषायनिका भेटनां मोक्षकी पैडी ये सर्व शीलके नामके अर्थ हैं, ऐसा शीलका माहात्म्य वर्णन किया है बहुरि केवल महिमाही नाहीं है इनि सर्व भाषनिकै अविनाभावीपणां जनाया है ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो विषयरूप विष महा प्रबळ है;—

गाथा—जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोरणां ।

सन्वेसिपि विणासदि विसयविसं दारुणं होई ॥२१॥

संस्कृत—यथा विषयलुब्धः विषदः तथा स्थावरजंगमान्
घोरान् ।

सर्वान् अपि विनाशयति विषयविषं दारुणं भवति २१

अर्थ—जैसैं विषयनिका सेवनां विष है सो जे विषयनिकै विषैं लुब्धजीव हैं तिनिक्कू विषका देनेवाला है तैसैं ही जे घोर तीव्र स्थावर जंगम सर्वनिका विष है सो प्राणीनिका विनाश करै है तथापि तिनि सर्वनिका विषनिमें विषयनिका विष उत्कृष्ट है तीव्र है ॥

भावार्थ—जैसैं हस्ती मीन भ्रमर पतंग आदि जीव विषयनिकरि लुब्ध भये विषयनिके वश भये हते जाय हैं तैसैंही स्थावरका विष मोहरा सोमल आदिक अर जंगमका विष सर्प आदिकका विष इनिका भी विषकरि प्राणी हते जाय हैं परन्तु सर्व विषनिमें विषयनिका विष अतितीव्र ही है ॥२१॥

आगैं इसहीका समर्थनक्कू निषयनिका विषका तीव्रपणां कहै है जो—विषकी वेदनातैं तौ एकवार मरै है अर विषयनितैं संसारमें भ्रमैं हैं;—

गाथा—वारि एकस्मि यजम्मे सरिज विसवेयणाहदो जीवो ।

विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

संस्कृत—वारे एकस्मिन् च जन्मनि गच्छेत् विषवेदनाहतः जीवः
विषयविषपरिहता भ्रमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

अर्थ—विषकी वेदनाकरि हत्या जो जीव सो तौ एकजन्मविषैंही मरै है बहुरि विषयरूप विषकरि हते गये जीव हैं ते अविश्रुयकरि संसार-रूप बनविषैं भ्रमैं हैं ॥

भावार्थ—अन्य सर्पादिकके विषतैं विषयनिका विष प्रबल है इनकी आसक्ततातैं ऐसा कर्मबंध होय है जातैं बहुत जन्म मरण होय है ॥२२॥

आगैं कहै है जो विषयनिकी आसक्ततातैं चतुर्गतिमें दुःख ही पावैं हैं;—

गाथा—णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणएसु दुक्खाइं ।

देवएसु वि दोहगं लहंति विसयासता जीवा ॥ २३ ॥

संस्कृत—नरकेषु वेदनाः तिर्यक्षु मानुषेषु दुःखानि ।

देवेषु अपि दौर्भाग्यं लभंते विषयासक्ता जीवाः २३

अर्थ—विषयनिविषैं आसक्त जे जीव हैं ते नरकनिविषैं, अत्यंतवे-
दनाकूं पावैं हैं, अर तिर्यचनिविषैं तथा मनुष्यानिविषैं दुःखानिकूं पावैं,
बहुरि देवनिविषैं उपजैं तौ तहां भी दुर्भाग्यपणां पावैं नीच देव होय
ऐसैं चतुर्गतिनिविषैं दुःखही पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयासक्त जीवनिक्कूं कहूं ही सुख नांही है परलोकमें तौ
नरक आदिके दुःख पावैंही हैं अर या लोकमें भी इनिके सेवनेविषैं
आपदा कष्ट आवै है तथा सेवतैं आकुलता दुःखही है, यह जीव भ्रमतैं
सुख मानै है, सत्यार्थ ज्ञानी तौ विरक्तही होय है ॥ २३ ॥

आगैं कहै है जो—विषयनिके छोडनेमें भी कछू हानि नांही है;—

गाथा—तुसधम्मंतवलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि ।

तवसीलमंत कुसली खपंति विसयं विस व खलं ॥ २४ ॥

संस्कृत—तुषधमद्वलेन च यथा द्रव्यं न हि नराणां गच्छति ।

तपः शीलमंतः कुशलाः क्षिपंते विषयं विषमिव खलं ॥

अर्थ—जैसैं तुषनिके चलानेकरि उडावनेकरि मनुष्यनिको कछू
द्रव्य नांही जाय है तैसैं तप अर शीलवान् जे पुरुष हैं ते विषयनिकूं
खलकी ज्यों क्षेपैं हैं दूर भेजैं हैं ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी तप शीलसहित हैं तिनिकै इंद्रियनिके विषय खलकीज्यौं हैं जैसे साठेनिका रस काढिले तब खल घूंसे नीरस होय तब डारि देनं योग्यही होय तैसें विषयनिकूं जाननां, रस था सो तौ ज्ञानीनिनै जानि लिया तब विषयतौ खलवत् रहे तिनिके त्यागनेमें कहा हानि ! कछू भी नांही। धन्य हैं वे ज्ञानी—जिननै विषयनिकूं ज्ञेयमात्र जानि आसक्त न होय हैं। अर जे आसक्त होय हैं ते तौ अज्ञानी ही हैं जातैं विषय हैं ते तौ जडपदार्थ हैं सुख तौ तिनिके जानने से ज्ञानमें ही था, अज्ञानी आसक्त होय विषयनिमें सुख मान्या जैसे श्वान सूखा हाड चाबै तब हाडकी अणी मुख तालवामैं चुभै तब तालवा फाटि तामेंसूं खपिर चबै तब अज्ञानी श्वान जाणैं जो यह रस हाडमेंसूं नीसन्था है तब तिस हाडिकूं फेरि फेरि चाबै अर सुख मानै तैसें अज्ञानी विषयनिमें सुख मानि फेरि फेरि भोगवै है, अर ज्ञानीनिनै अपने ज्ञानहीमें सुख जान्या है तिनिकै विषयनिके छोडनेमें खेद नांही है, ऐसें जाननां ॥ २४ ॥

आगैं कहै है जो प्राणी शरीरके अवयव सर्व सुन्दर पावै तौऊ सर्व अंगनिमें शील है सो ही उत्तम है;—

गाथा—वट्टेसु य खंडेसु य भट्टेसु य विसालेसु अंगेसु ।

अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥२५॥

संस्कृत—वृत्तेषु च खंडेषु च भट्टेषु च विशालेषु अंगेषु ।

अंगेषु च प्राप्तेषु च सर्वेषु च उत्तमं शीलं ॥२५॥

अर्थ—प्राणीके देहविषैं केई अंग तौ वृत्त कहिये गोल सुघट सराहनें योग्य होय है, केई अंग खंड कहिये अर्द्धगोल सारिखे सराहनें योग्य होय हैं, केई अंग भट्ट कहिये सरल सूखे सराहनें योग्य होय हैं, अर केई अंग विशाल कहिये विस्तीर्ण चौड़े सराहनें योग्य होय हैं—ऐसें सर्वही

अंग यथास्थान सुन्दर पावते सतैंभी सर्व अंगानिमें यह शीलनामा अंग है सो उत्तम है, यह न होय तौ सर्वही अंग शोभा न पावै, यह प्रसिद्ध है ॥

भावार्थ—लोकविषै प्राणी सर्वांगसुन्दर होय अरु दुःशील होय तौ सर्व लोककै निंदाकरनें योग्य होय ऐसैं लोकमें भी शीलहीकी शोभा है तौ मोक्षमें भी शीलही प्रधान कहा है; जे ते सम्यग्दर्शनादिक मोक्षके अंग हैं ते शीलहीके परिवार हैं ऐसैं पहिले कह आयै हैं ॥

आगै कहै है—जो कुमतिकरि मूढ भये हैं ते विषयानिमें आसक्त हैं कुशीलहैं संसारमें भ्रमैं हैं;—

गाथा—पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं ।

संसारे भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं ॥२६॥

संस्कृत—पुरुषेणापि सहितेन कुसमयमूढैः विषयलोलेः ।

संसारे भ्रमितव्यं अरहटघरट्टं इव भूतैः ॥२६॥

अर्थ—जे कुसमय कहिये कुमति तिनिकरि मूढ हैं सो ही अज्ञानी हैं बहुरि ते विषयनिविषै लोलुपी हैं आसक्त हैं ते संसारविषै भ्रमैं हैं. कैसे भये भ्रमैं हैं—जैसैं अरहटविषै घड़ी भ्रमैं तैसैं भये भ्रमैं हैं तिनि- करि सहित अन्य पुरुषकै भी संसारविषै दुःखसहित भ्रमग होय है

भावार्थ—कुमती विषयासक्त मिथ्यादृष्टी आपतौ विषयानिक् मले मानि सेवैं हैं । केई कुमती ऐसेभी हैं जो ऐसैं कहैं हैं जो सुन्दर विषय सेवनेमें ब्रह्म प्रसन्न होय है यह परमेश्वरकी बड़ी भक्ति है ऐसैं कहिकरि अत्यंत आसक्त होय सेवैं हैं, ऐसा ही उपदेश अन्यकूं देकरि विषयनिमें लगावै है, ते आप तौ अरहटकी धडीकी ज्यों संसारमें भ्रमैं ही हैं तहां अनेकप्रकार दुःख भोगवैं हैं परन्तु अन्य पुरुषकूंभी तहां लगाय भ्रमावैं हैं तातैं यह विषय सेवनां दुःखहीकै अर्थि है दुःखहीका कारण है, ऐसैं

जबि कुमतीनिका प्रसंग न करनां, विषयासक्तपणां छोडनां यातैं सुशी-
लपणां होय है ॥ २६ ॥

आगे कहै है जो कर्मकी गांठि विषय सेयकरि आपही बांधी है ताकूं
तपश्चरणादिककरि आपही काटै है;—

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसंयरागरागेहिं ।

तां छिन्दति कयत्था तवसंजमसीलगुणेण ॥२७॥

संस्कृत—आत्मनि कर्मग्रंथिः या बद्धा विषयरागरागैः ।

तां छिन्दति कृतार्थाः तपः संयमशीलगुणेन ॥२७॥

अर्थ—जे विषयनिके रागरंगकरि आपही कर्मकी गांठि बांधी है ताकूं
कृतार्थ पुरुष उत्तम पुरुष तप संयम शील इनितैं भया जो पुण्य तपकरि
छेदैं हैं खोलैं हैं ॥

भावार्थ—जो कोई आप गांठि धुलाय बांधै ताकै खोलनेका विधान
भी आपही जानै, जैसें सुनार आदि कारीगर आभूषणादिककी संधिकै
टांका ऐसा झालै जो वह संधि अदृष्ट होय जाय तब तिस संधिकूं
टांकेका झालनेवालाही पहचानिकरि खोलै तैसें आत्मा अपनेही रागादिक
भावकरि कर्मनिकी गांठि बांधी है ताहि आपही भेदज्ञानकरि रागादिककै
अर आपकै जो भेद है तिस संधिकूं पहचानि तप संयम शीलरूप भाव-
रूप शस्त्रनिकरि तिस कर्मबंधकूं काटै, ऐसा जानि जे कृतार्थ पुरुष हैं
अपनें प्रयोजनके करनेवाले हैं ते इस शील गुणकूं अंगीकार करि आत्माकूं
कर्मतैं भिन्न करैं हैं, यह पुरुषार्थ पुरुषनिका कार्य है ॥ २७ ॥

आगे कहै है जो शीलकरि आत्मा सोभै है याकूं दृष्टान्तकरि
दिखावै है;—

माथा-उदधीव रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं ।

सोहेतो य संसीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥ २८ ॥

१ संस्कृत प्रतिमें—‘विषयरायमोहेहि’ ऐसा पाठ है छाया ‘विषय राम मोहैः’ है ॥

संस्कृत—उदधिरिव रत्नभृतः तपोविनयशीलदानरत्नानाम् ।
शोभते च शशीलः निर्वाणमनुत्तरं प्राप्तः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे समुद्र रत्ननिकरि भन्या है तौऊ जलसहित सोमै है तैसें यह आत्मा तप विनय शील दान इनि रत्ननिर्भै शीलसहित सोमै जातैं जो शीलसहित भया तानैं अनुत्तर कहिये जातैं परै और नाहीं ऐसा निर्वाणपदकूं पाया ॥

भावार्थ—जैसे समुद्रमें रत्न बहुत हैं तौऊ जऊहीतैं समुद्र नाम पावै है तैसें आत्मा अन्य गुणनिकरि सहित होय तौऊ शीलकरि निर्वाणपद पावै, ऐसैं जाननां ॥ २८ ॥

आगैं जे शीलवान पुरुष हैं ते ही मोक्ष पावैं हैं यह प्रसिद्धिकरि दिखावै है;—

गाथा—सुणहाण गइहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो ।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिजंता जणेहि सव्वेहिं ॥ २९ ॥
संस्कृत—शुनां गर्दभानां च गोपशुमहिलानां दृश्यते मोक्षः ।
ये शोधयन्ति चतुर्थं दृश्यतां जनैः सर्वैः ॥ २९ ॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—ये सर्व जन देखो—स्वान गर्दभ इनिमें बहुरि गऊ आदि पशु अरु स्त्री इनिमें काहूकै मोक्ष होनां दीखै है ! सो तौ दीख ता नाहीं, मोक्ष तौ चौथा पुरुषार्थ है यातैं जो चतुर्थ जो पुरुषार्थ ताहि सांगैं है हेरै है ताहीकै मोक्ष होनां देखिये है ॥

भावार्थ—धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पुरुषकेही प्रयोजन कहै हैं यह प्रसिद्ध है, याहीतैं इनिका नाम पुरुषार्थ है ऐसा प्रसिद्ध है । तहां इनिमें चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है ताकूं पुरुषही सोवै अरु पुरुषही ताकूं हेरि ताकी सिद्धि करै, अन्य स्वान गर्दभ बैल पशु स्त्री इनिमें मोक्षका सोधनां

प्रसिद्ध नांही जो होय तो मोक्षका पुरुषार्थ ऐसा नाम काहेकुं होय । इहां आशय ऐसा जो मोक्ष शीलतैं होय है, जे स्वान गर्दभ आदिक हैं ते तौ अज्ञानी हैं कुशीली हैं, तिनिका स्वभाव प्रकृतिही ऐसी है जो पलटि-करि मोक्ष होनैं योग्य तथा ताके सोधने योग्य नांही है, तातैं पुरुषकुं मोक्षका साधन शीलकुं जानि अंगीकार करनां; सम्यग्दर्शनादिक हैं शीलहीके परिवार पूवैं कहे ही हैं ऐसैं जाननां ॥ २९ ॥

आगैं कहै है जो शील बिना ज्ञानही करि मोक्ष नांही, याका उदाहरण कहैं हैं;—

गाथा—जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो ।

तो सो सम्मदुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं ३०

संस्कृत—यदि विषयलोलैः ज्ञानिभिः भवेत् साधितः मोक्षः ।

तर्हि सः सात्यकिपुत्रः दशपूर्विकः किं गतः नरकं ३०

अर्थ—जो विषयनिविषैं लोल कहिये लोलुप आसक्त अर ज्ञानसहित ऐसा ज्ञानीनिनैं मोक्ष साध्या होय तौ दर्शपूर्वका जाननैवाला रुद्र नरककुं क्यों गया ॥

भावार्थ—कोरा ज्ञानहीसूं मोक्ष काडूनैं साध्या कहिये तौ दश पूर्वका पाठी रुद्र नरक क्यों गया तातैं शीलबिना कोरा ज्ञानहीतैं मोक्ष नांही, रुद्र कुशील सेवनेवाला भया, मुनि पदतैं भ्रष्ट होय कुशील सेया तातैं नरकमैं गया, यह कथा पुराणनिनैं प्रसिद्ध है ॥ ३० ॥

आगैं कहै है शीलबिना ज्ञानहीतैं भावकी शुद्धिता न होय है;—

गाथा—जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिदिठो ।

दसबुद्धिषस्स भावो यणु किं पुणु णिम्मलो जादो ३१

संस्कृत—यदि ज्ञानेन विशुद्धः शीलेन विना बुधैर्निर्दिष्टः ।

दशपूर्विकस्य भावः च न किं पुनः निर्मलः जातः ३१

अर्थ—जो शीलविना ज्ञानहीकरि विसोह कहिये विशुद्ध भाव पड़ितो कष्टो होय तौ दश पूर्वका जाननेवाला जो रुद्र ताका भाव निर्मल क्यों न भया, तातैं जानिये है भाव निर्मल शीलहीतैं होय है ॥

भावार्थ—कोरा ज्ञान तौ ज्ञेयकूं जनावैही है तातैं मिथ्यात्व कषाय होय तब विपर्यय होय जाय तातैं मिथ्यात्वकषायका मिटनां सो ही शील है, ऐसैं शीलविना ज्ञानहीतैं मोक्ष सधै नांही, शीलविना मुनि होय तौऊ भ्रष्ट होय जाय है तातैं शीलकूं प्रधान जाननां ॥ ३१ ॥

आगैं कहै है जो नरकमैंभी शील होय जाय अर विषयनिकरि विरक्त होय तौ तहांतैं निकसिकरि तीर्थकरपद पावै है;—

गाथा—जाए विसयविरक्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा ।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्डमाणेण ॥३२॥

संस्कृत—यः विषयविरक्तः सः गमयति नरकवेदनाः प्रचुराः ।
तत् लभते अर्हत्पदं भणितं जिनवर्द्धमानेन ॥३२॥

अर्थ—जो विषयनितैं विरक्त है सो जीव नरकमैं बहुत वेदना है तांकूं भी गमावै है तहां भी अतिदुःखी न होय है तौ तहांतैं निकसि करि तीर्थकर होय है यह जिनवर्द्धमान भगवानने कहा है ॥

भावार्थ—जिनसिद्धांतमैं ऐसैं कहा है जो—तीसरी पृथ्वीतैं निकसि तीर्थकर होय है सो यह भी शीलहीका माहात्म्य है तहां सम्यक्त्व सहित होय विषयनितैं विरक्त भया भली भावना भावै तत्र नरक वेदनाभी अल्प होय अर तहांतैं निकसि अरहंतपद पाय मोक्ष पावै, ऐसा विषयनितैं विरक्त भाव सो ही शीलका माहात्म्य जानो, सिद्धांतमैं ऐसैं कहा है जो सम्यग्दृष्टीके ज्ञान अर वैराग्यकी शक्ति नियमकरि होय है सो वैराग्यशक्ति है सो ही शीलका एकदेश है, ऐसैं जाननां ॥ ३२ ॥

आगे या कथनकूं संकोच है;—

गाथा—एवं बहुष्यारं जिणेहि पञ्चखणाणदरसीहि ।

शीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहि ३३

संस्कृत—एवं बहुप्रकारं जिनैः प्रत्यक्षज्ञानदर्शिभिः ।

शीलेन च मोक्षपदं अक्षातीतं च लोकज्ञानैः ॥३३॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार बहुत प्रकार जिनदेवनैं कहा है जो—शीलकरि मोक्षपद है, कैसा है मोक्षपद—अक्षा-
तीत है, इंद्रियनिकरि रहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख जामैं पाइये है । बहुरि
कहनेवाले जिनदेव कैसे हैं—प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन जिनकै पाइये है बहुरि
लोकका जिनकै ज्ञान है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञ देवनैं ऐसैं कहा है जो शीलकरि अतीन्द्रिय ज्ञान
सुख रूप मोक्षपद पाइये है सो भव्यजीव या शीलकूं अंगीकार करो,
ऐसा उपदेशका आशय सूचै है, बहुत कहां ताई कहिये एताही बहुत
प्रकार कहा जानो ॥ ३३ ॥

आगे कहै है जो इस शीलकरि निर्वाण होय ताकूं बहुत प्रकार
वर्णन कीजिये सो कैसे ताका कहनां ऐसैं है;—

गाथा—सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयार मप्पाणं ।

जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्म ॥३४॥

संस्कृत—सम्यक्त्वज्ञानदर्शनतपोवीर्यपंचाचाराः आत्मनाम् ।

ज्वलनोऽपि पवनसहितः दहंति पुरातनं कर्म ॥३४॥

अर्थ—सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन तप वीर्य ये पंच आचार हैं सो आत्माका
आश्रय पायकरि पुरातन कर्मनिकूं दग्ध करैं हैं, जैसे अग्नि है सो पवन
सहित होय तब पुराणे सूखे इंधनकूं दग्ध करै तैसें ॥

भावार्थ—इहां सम्यक्त्व आदि पंच आचारतौ अग्निस्थानीय हैं अर आत्माका शुद्ध स्वभाव है ताकूं शील कहिये सो यह आत्माका स्वभाव पवनस्थानीय है सो पंच आचार रूप पवनका सहाय पाय पुरातन कर्म-बंधकूं दग्धकरि आत्माकूं शुद्ध करैं ऐसैं शीलही प्रधान है । पांच आचारमें चारित्र कहा है अर इहां सम्यक्त्व कहनेमें चारित्रही जाननां विरोध न जाननां ॥ ३४ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं अष्ट कर्मनिक् जिनिनैं दग्ध किये ते सिद्ध भये हैं;—

गाथा—णिहृद्वद्वकम्मा विसयविरत्ता जिदिदिया धीरा ।

तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धि गदि पत्ता ॥३५॥

संस्कृत—निर्दग्धाष्टकर्माणः विषयविरक्ता जितेंद्रिया धीराः ।

तपोविनयशीलसहिताः सिद्धाः सिद्धि गतिं प्राप्ताः ॥३५॥

अर्थ—जो पुरुष जीते हैं इंद्रिय जिनूनैं याहीतैं विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि धीर हैं परीषदादि उपसर्ग आये चिगै नांही हैं, बहुरि तप विनय शील इनिकारि सहित हैं ते दूरि किये हैं अष्ट कर्म जिनूनैं ऐसे होय सिद्धिगति जो मोक्ष ताकूं प्राप्त भये हैं, ते सिद्ध ऐसा नाम कहावैं है ॥

भावार्थ—इहां भी जितेंद्रिय विषयविरक्तता ये विशेषण शीलहीकी प्रधानता दिखावैं हैं ॥ ३५ ॥

आगैं कहै है जो लावण्य अर शील युक्त है सो मुनि सराहनें योग्य होय है;—

गाथा—लावण्णसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स ।

सो सीलो स महप्पा भमित्थ गुणवित्थरं भविय ॥३६॥

संस्कृत—लावण्यशीलकुशलः जन्ममहीरुहः यस्य श्रमणस्य ।

सः शीलः सम्महात्मा भ्रमेत् गुणविस्तारः भव्ये ॥३६॥

अर्थ—जिस मुनिका जन्मरूप वृक्ष है सो लावण्य कहिये अन्यकूं प्रियलागे ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन वचन कायकी चेष्टा सुन्दर अर शील कहिये अंतरंग मिथ्यात्व विषयकरि रहित परोपकारी स्वभाव इनि दोऊनिविषै प्रवीण निपुण होय सो मुनि शीलवान् है महात्मा है ताके गुणनिका विस्तार लोकविषै भ्रमै है फैलै है ॥

भावार्थ—ऐसे मुनिका गुण लोकमें विस्तै है सर्व लोककै प्रशंसा योग्य होय है इहां भी शीलहीकी महिमा जाननी, अर वृक्षका स्वरूप कहा जैसै वृक्षकै शाखा पत्र पुष्प फल सुन्दर होय अर छायादिककरि रागद्वेष रहित सर्व लोकका समान उपकार करै तिस वृक्षकी महिमा सर्व लोक करै तैसै मुनिभी ऐसा होय सो सर्वकै महिमा करने योग्य होय है ॥ ३६ ॥

आगे कहै है जो ऐसा होय सो जिनमार्गविषै रत्नत्रयकी प्राप्तिरूप बोधि पावै है;—

गाथा—णाणं ज्ञाणं जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं ।

सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं ॥३७॥

संस्कृत—ज्ञानं ध्यानं योगः दर्शनशुद्धिश्च वीर्यायत्ताः ।

सम्यक्त्वदर्शनेन च लभंते जिनशासने बोधिं ॥३७॥

अर्थ—ज्ञान ध्यान योग दर्शनकी शुद्धता ये तौ वीर्यकै आधीन हैं अर सम्यग्दर्शनकरि जिनशासनकै विषै बोधिकूं पावै हैं, रत्नत्रयकी प्राप्ति होय है ॥

१ शुद्धित संस्कृत प्रतिमें ' वीरियायत्तं ' ऐसा पाठ है जिसकी छाया ' वीर्यत्वं ' है ॥

भावार्थ—ज्ञान कहिये पदार्थनिकुं विशेषकरि जाननां, ध्यान कहिये स्वरूपविषै एकाग्र चित्त होनां, योग कहिये समाधि लगावनां, सम्यग्दर्शनकूं निरतिचार शुद्ध करनां, येतौ अपनां वीर्य जो शक्ति ताकै आधीन हैं जेता बनै तेता होय अर सम्यग्दर्शनकरि बोधि जो रत्नत्रय ताकी प्राप्ति होय, याके होतैं विशेष ध्यानादिक भी यथा शक्ति होयही है अर शक्ति भी यातैं बधै है । ऐसैं कहनेमें भी शीलहीका माहात्म्य जाननां, रत्नत्रय है सो ही आत्माका स्वभाव है ताकूं शीलभी कहिये ॥ ३७ ॥

आगैं कहै है जो—यह प्राप्ति जिनवचनतैं होय है;—

गाथा—जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तपोधना धीरा ।

शीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति ॥३८॥

संस्कृत—जिनवचनगृहीतसारा विषयविरक्ताः तपोधना धीराः ।

शीलसलिलेन स्नाताः ते सिद्धालयसुखं यांति ॥३८॥

अर्थ—जिनवचनकरि ग्रहण किया है सार जिनिनैं बहुरि विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि तपही है धन जिनिकै, बहुरि धीर हैं ऐसे भये संते मुनि शीलरूप जलकरि न्हायें शुद्ध भये ते सिद्धालय जो सिद्धनिके वसनेका मन्दिर ताके सुखानिकुं पावैं हैं ॥

भावार्थ—जे जिनवचनकरि वस्तुका यथार्थ स्वरूप जानि ताका सार जो अपनां शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति ताका ग्रहण करैं हैं ते इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त होय तप अंगीकार करैं हैं मुनि होय हैं, तहां धीरवीर होय परीषह उपसर्ग आये चिगैं नांही तब शील जो स्वरूपकी प्राप्ति की पूर्णतारूप चौरासी लाख उत्तरगुणकी पूर्णता सो ही भया निर्मल जल ताकरि स्नान करि सर्व कर्ममलकूं धोय सिद्ध भये, सो मोक्षमंदिरविषै तिष्ठि करि तहां परमानंद अविनाशी अतीन्द्रिय अब्याबाध सुखकूं भोगवैं

हैं, यह शीलका माहात्म्य है। ऐसा शील जिनवचनतैं पाइये है जिना-
गमका निरन्तर अभ्यास करनां यह उत्तम है ॥ ३८ ॥

आगैं अंतसमयमें सल्लेखना कही है तहां दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि
प्यारि आराधनाका उपदेश है सो ये शील हीतैं प्रगट होय हैं, ताकूं
प्रगटकरि कहैं हैं;—

गाथा—सर्वगुणक्षीणकम्मा सुहृदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।

पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणा पयडा ॥ ३९ ॥

संस्कृत—सर्वगुणक्षीणकर्माणः सुखदुःखविवर्जिताः मनोविशुद्धाः

प्रस्फोटितकर्मरजसः भवंति आराधनाः प्रकटाः ॥ ३९ ॥

अर्थ—सर्व गुण जे मूलगुण उत्तरगुण तिनिकरि क्षीण भये हैं कर्म
जामैं, बहुरि सुख दुःखकरि विवर्जित हैं, बहुरि मन है विशुद्ध जामैं,
बहुरि उडाये हैं कर्मरूप रज जानैं ऐसी आराधना प्रगट होय है ॥

भावार्थ—पहलैं तौ सम्यग्दर्शनसहित मूलगुण उत्तरगुणनिकरि कर्म-
निकी निर्जरा होनेतैं कर्मकी स्थिति अनुभाग क्षीण होय है, पीछैं विष-
यनिकै द्वारै किछु सुख दुःख होय था ताकरि रहित होय है, पीछैं
ध्यानविषै तिष्ठि श्रेणी चढै तब उपयोग विशुद्ध होय कषायनिका उदय
अव्यक्त होय तब दुःख सुखकी वेदना मिटै, बहुरि पीछैं मन विशुद्ध
होय क्षयोपशम ज्ञानकै द्वारै किछु ज्ञेयतैं ज्ञेयान्तर होनेका विकल्प होय
है सो मिटिकरि एकत्ववितर्क अविचारनामा शुक्लध्यान बारमां गुणस्थानकै
अंत होय है यह मनका विकल्प मिटि विशुद्ध होनां है, बहुरि पीछैं
घातिकर्मका नाश होय अनंत चतुष्टय प्रकट होय है यह कर्मरजका
उडना है; ऐसैं आराधनाकी संपूर्णता प्रकट होनां है। जे चरम शरीरी
हैं तिनिकै तौ ऐसैं आराधना प्रकट होय मुक्तिकी प्राप्ति होय है। बहुरि
अन्यकै आराधनाका एकदेश होय अंतमें तिसकूं आराधानकरि स्वर्गविषै

प्राप्त होय, तहां सागरांपर्यंत सुख भोगि तहांतैं चय मनुष्य होय आरा-
धनाकूं संपूर्ण करि मोक्ष प्राप्त होय है, ऐसैं जाननां, यह जिनवचनका
अर शीलका माहात्म्य है ॥ ३९ ॥

आगैं ग्रंथकूं पूर्ण करैं हैं तहां ऐसैं कहैं हैं जो—ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है
यह सर्वजनप्रसिद्ध है सो ज्ञान तौ ऐसा होय ताकूं कहिये है;—

गाथा—अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं ।

शीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ॥४०॥

संस्कृत—अर्हति शुभभक्तिः सम्यक्त्वं दर्शनेन सुविशुद्धं ।

शीलं विषयविरागः ज्ञानं पुनः कीदृशं भणितं ॥४०॥

अर्थ—अरहंतविषैं भली भक्ति है सो तौ सम्यक्त्व है, सो कैसा
है—सम्यग्दर्शनकरि विशुद्धहैं तत्त्वार्थनिका निश्चय व्यवहारस्वरूप श्रद्धान
अर बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगंबररूपका धारण तथा ताका श्रद्धान ऐसा
दर्शनकरि विशुद्ध अतीचार रहित निर्मल है ऐसा तौ अरहंतभक्तिरूप
सम्यक्त्व है, बहुरि शील है सो विषयनितैं विरक्त होना है बहुरि ज्ञान
भी यह ही है और यातैं न्यारा ज्ञान कैसा कइया है? सम्यक्त्व शील
विना तौ ज्ञान मिथ्याज्ञानरूप अज्ञान है ॥

भावार्थ—यह सर्व मतनिमें प्रसिद्ध है जो ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है अर
ज्ञान होय है सो शास्त्रनितैं होय है । तहां आचार्य कहै है जो—हम
तौ ताकूं ज्ञान कहैं हैं जो सम्यक्त्व अर शील सहित होय, यह जिना-
गममें कही है, यातैं न्यारा ज्ञान कैसा है यातैं न्यारा ज्ञानकूं तौ हम
ज्ञान कहैं नांही, इनि विना तौ अज्ञानही है, अर सम्यक्त्व शील होय
सो जिनागमतैं होय । तहां जाकरि सम्यक्त्व शील भये तिसकी भक्ति
न होय तौ सम्यक्त्व कैसैं कहिये, जाके वचनतैं यह पाइये ताकी भक्ति होय

तब जानिये याकै श्रद्धा भई, बहुरि सम्यक्त्व होय तब विषयनिर्तै विरक्त होय ही होय जो विरक्त न होय तौ संसार मोक्षका स्वरूप कहा जान्या ? ऐसैं सम्यक्त्व शील भये ज्ञान सम्यक्ज्ञान नाम पावै है । ऐसैं इस सम्यक्त्व शीलके संबंध तैं ज्ञानकी तथा शास्त्रकी बडाई है । ऐसैं यह जिनगमहै सो संसारतैं निवृत्तिकरि मोक्षप्राप्त करनेवाला है, सो जयवंत होहु । बहुरि यह सम्यक्त्वसहित ज्ञानकी महिमा है सो ही अंतमंगल जाननां ॥ ४० ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत शीलपाहुड ग्रंथ समाप्त भया ॥

याका संक्षेप तौ कहते आये जो—शील नाम स्वभावका है सो आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञान दर्शनमयी चेतनास्वरूप है सो अनादिकर्मके संयोगतैं विभावरूप परिणमै है ताके विशेष मिथ्यात्व कषाय आदि अनेक हैं तिनिकूं राग द्वेष मोह भी कहिये तिनिके भेद संक्षेपकरि चौरासीलाख किये हैं, विस्तारकरि असंख्यात अनंत होय हैं तिनिकूं कुशील कहिये, तिनिका अभावरूप संक्षेपकरि चौरासीलाख उत्तरगण हैं तिनिकूं शील कहैं हैं; यह तौ सामान्य परद्रव्यके संबंधकी अपेक्षा शील कुशीलका अर्थ है । बहुरि प्रसिद्ध व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रीके संगकी अपेक्षा कुशीलके अठारह हजार भेद कहे हैं तिनिका अभाव ते शीलके अठरा हजार भेद हैं, तिनिकूं जिन आगम तैं जानि पालनैं । लोकमैं भी शीलकी महिमा प्रसिद्ध है जे पालैं हैं ते स्वर्ग मोक्षके सुख पावैं हैं तिनिकूं हमारा नमस्कार है ते हमारै भी शीलकी प्राप्ति करो, यह प्रार्थना है ॥

छप्पय ।

आन वस्तुके संग राखि जिनभाव भंग करि,
वरतै ताहि कुशीलभाव भाखे कुरंग धरि ।

ताहि तजै मुनिराय पाय निज शुद्धरूप जल,
 घोय कर्मरज होय सिद्धि पावै सुख अविचल ॥
 यह ब्रह्म शील सुब्रह्ममय व्यवहारै तिथतज नमै ।
 जो पालै सबविधि तिनि नमूं पाऊं जिन भव न जनम मै
 दोहा ।

नमूं पंचपद ब्रह्ममय मंगलरूप अनूप ।
 उत्तम शरण सदा लहूं फिरि न परूं भवकूप ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि प्रणीत शीलपादुडकी
 जयपुरनिवासि पं. जयचन्द्रजी छारसे-
 देशभाषासमयवचनिका समाप्त ॥ ८ ॥

वचनिकाकारकी प्रशस्ति ।

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाग्रंथ पाहुडग्रंथ हैं तिनमें ये छुड हैं तिनिकी यह देशभाषामय वचनिका लिखी है । तहां छह छुडकी तौ टीका टिप्पण हैं तिनमें टीका तौ श्रुतसागरकृत है अर टिप्पण पहलैं काहू औरनैं किया है तिनमें केई गाथा तथा अर्थ अन्व-
कार हैं तहां भैरै विचारमें आया तिनिका आश्रयभी लिया है अर जैसें
भोक्कू प्रतिभास्या तैसैं लिख्या है । अर लिंगपाहुड अर शीलपाहुड
उ पाहुडनिकी टीका टिप्पण मिल्या नांही तातैं गाथाका अर्थ
प्रतिभासमें आया तैसैं लिख्या है । अर श्रुतसागरकृत टीका षड्-
की है तामें ग्रंथांतरकी साखि आदि कथन बहुत है सो तिस
की यह वचनिका नांही है, गाथाका अर्थ मात्र वचनिका करि
भावार्थमें मेरी प्रतिभासमें आया तिस अनुसार लेय अर्थ लिख्या है । अर
अंकृत व्याकरण आदिका ज्ञान मोनैं विशेष है नांही तातैं काहू व्याकर-
तथा आगमतैं शब्द अर अर्थ अपभ्रंश भया होय तहां बुद्धिमान
त मूलग्रंथ विचारि शुद्ध करि वांचियो, भोक्कू अल्पबुद्धि जानि हास्य
करियो, क्षमा करियो, सत्पुरुषनिका स्वभाव उत्तम होय है, दोष
क्षमा ही करैं हैं ।

बहुनि इहां कोई कहै—तुम्हारी बुद्धि अल्प है तौ ऐसे महानग्रंथकी
का क्यों करी ? ताकूँ ऐसैं कहनां जो इस कालमें मोतैं भी मंद-
बहुत हैं तिनिके समझनैंके आर्थ करी है यामें सम्यग्दर्शनका दृढ
प्रधानकरि वर्णन है तातैं अल्पबुद्धी भी वांचैं पढ़ैं अर्थका धारण
तिनिके जिनमतका श्रद्धान दृढ होय, यह प्रयोजन जानि जैसें
प्रतिभासमें आया तैसैं लिखा है । अर जे बड़े बुद्धिमान हैं ते
लग्रंथकू वांचि पढ़िही श्रद्धान दृढ करैगे, भैरै कछु स्याति लाभ पूजाका

तौ प्रयोजन है नांही धर्मानुरागतै यह वचनिका लिखी है, तातैं बुद्धिमानिकै क्षमाही करनेयोग्य है ।

अर इस ग्रंथकी गाथाकी संख्या ऐसै है:—प्रथम दर्शनपाहुडकी गाथा ३६ । सूत्रपाहुडकी गाथा २७ । चारित्रपाहुडकी गाथा ४५ । बोधपाहुडकी गाथा ६१ । भावपाहुडकी गाथा १६५ । मोक्षपाहुडकी गाथा १०६ । लिंगपाहुडकी गाथा २२ । शीलपाहुडकी गाथा ४० । एवं पाहुड आठकी गाथाकी संख्या ५०२ हैं ।

छप्पय ।

जिनदर्शन निर्ग्रन्थरूप तत्त्वारथ धारन,

सूतर जिनके वचन सार चारित व्रत पारन ।

बोध जैनका जानि आनका सरन निवारन,

भाव आत्मा बुद्ध मांनि भावन शिव कारन ॥

फुनि मोक्ष कर्मका नाश है लिंग सुधारन तजि कुनय ।

घरि शील स्वभाव संवारनां आठ पाहुडका फल सुजय ॥

दोहा ।

मई वचनिका यह जहां सुनो तास संक्षेप ।

भव्यजीव संगति भली भेटै कुकरमलेप ॥ २ ॥

जयपुर पुर सूत्रस वसै तहां राज जगतेस ।

ताके न्याय प्रतापतैं सुखी डुढाहर देश ॥ ३ ॥

जैनधर्म जयवंत जग किछु जयपुरमें लेस ।

तामधि जिनमंदिर घणे तिनिको भलो निवेश ॥ ४ ॥

तिनिमें तेरापंथको मंदिर सुंदर एव ।

धर्मध्यान तामैं सदा जैनी करै सुसेव ॥ ५ ॥

पंडित तिनिमैं बहुत हैं मैं भी इक जयचंद ।
 प्रेच्यां सबकै मन कियो करन वचनिका मंद ॥ ६ ॥
 कुन्दकुन्द मुनिराजकृत प्राकृत गाथा सार ।
 पाहुड अष्ट उदार लखि करी वचनिका तार ॥ ७ ॥
 इहां जिते पंडित हुते तिनिनैं सोधी येह ।
 अक्षर अर्थ सुवांचि पढ़ि नहि राख्यो संदेह ॥ ८ ॥
 तौऊ कछु प्रमादतैं बुद्धिमंद परभाव ।
 हीनाधिक कलु अर्थ है सोधो बुध सतभाव ॥ ९ ॥
 मंगलरूप जिनेंद्रकूं नमस्कार मम होहु ।
 विघ्न टलै शुभबंध है यह कारन है मोहु ॥ १० ॥
 संवत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय ।
 अस्त भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय ॥ ११ ॥

इति वचनिकाकारप्रशस्ति ।

जयतु जिनशासनम् ।

शुभमिति ।



